हमारा समाज

लेखक

श्री सन्तराम, बी. ए.

नालन्दा-प्रकाशन, बम्बई

नालन्दा पब्लिकेशन कम्पनी,

रेसकोर्स रोड, बड़ोदा

विषय-सूची

सम्पूर्ण पृष्ठ सं० २७६

मैंने यह पुस्तक क्यों लिखी

किसी राष्ट्र की सच्ची शक्ति उतनी उसकी विपुल वाहिनियों, विध्वंस-कारिणी मशीनगनों, और बम्ब बरसाने वाले लड़ाकू हवाईजहाज़ों में नहीं जितनी कि उसके भीतरी सामाजिक संगठन में रहती है। जो राष्ट्र भीतर से थोथा और फटा हुआ है, जिस की जनता एकता के सूत्र में बँधी हुई नहीं है, उसकी रक्षा टैङ्क और मशीनगनें तो क्या परमाणु बम्ब भी नहीं कर सकते। ऐसा राष्ट्र तब तक ही सुरक्षित रहता है जब तक कोई दूसरा प्रबल राष्ट्र उस पर आक्रमण नहीं करता। बाहर से प्रबल आक्रमण होते ही वह राष्ट्र अपनी रक्षा करने में असमर्थ हो जाता है। हिन्दू-समाज में जन्म मूलक ऊँच नीच की दरारें पड़ी हुई थीं, इसकी एकता का सूत्र भङ्ग हो चुका था, इसलिए जब उत्तर-पश्चिम से मुट्ठी भर उजड्ड, असभ्य और अशिक्षित मुसलमानों ने भारत पर आक्रमण किया तो न हमारे रण-बाँकुरे राजपूतों का शौर्य, न वेदज्ञ ब्राह्मणों का पाण्डित्य और न व्यापार-कुशल वैश्यों की अमित धनराशि ही भारत की रक्षा कर सकी। ग़ज़नी के महमूद ने एक बार नहीं सत्रह बार इस देश पर आक्रमण किया, पर हिन्दू-राष्ट्र उसका मुँह मोड़ने में एक बार भी समर्थ न हो सका। उस समय हिन्दुओं के पास गोला-बारूद, तोप-तलवार और धन-जन की कोई कमी न थी। इसलिए मानना पड़ता है कि यदि किसी राष्ट्र में बंधुता एवं एकता का अभाव हो, तो उसकी जन-संख्या बहुत अधिक होने पर भी वह दुर्बल ही रहता है।

पुराने और लंबे रोगी को प्रकृति माता स्वस्थ एवं नीरोग होने के अवसर बार-बार दिया करती है। उस अवसर से लाभ उठाकर यदि वह रोगी अपने अपथ्य को छोड़ दे तो वह चंगा हो जाता है। उसका वह रोग उसके शरीर की सफ़ाई का काम देता है। पर यदि वह लंबे रोग द्वारा शारीरिक सफ़ाई के बाद भी अपथ्य जारी रखता है तो वह बार-बार रुग्ण होकर अन्त में मृत्यु का ग्रास बन जाता है।

दीर्घ कालीन दासता के पश्चात जैसे अब भारत को स्वतंत्रता मिली है, वैसे ही अवसर इसे पहले भी कई बार मिलते रहे हैं। सर विलियम हण्टर लिखते हैं कि अँगरेज़ों ने भारत का राज्य मुसलमानों से नहीं, वरन् दो हिन्दू संघों से लिया था। इनमें से पंजाब सिखों के पास था और दिल्ली मरहठों के पास।

प्रकृति ने सिख-काल में, शिवाजी के समय में और सन् १८५७ के स्वातंत्र्य-युद्ध में भारत को स्वतंत्र होने के अवसर दिए थे। पर अपनी सदोष समाज-रचना के कारण हम उन सुयोगों से लाभ उठाने में असमर्थ रहे। फलतः हाथ में आई हुई स्वतंत्रता हाथ से निकल गई। आज की स्वतंत्रता भी उतनी हमारे अपने पुरुषार्थ एवं बलिदानों का फल नहीं, जितना कि अन्तरराष्ट्रिय परिस्थिति का। यह स्वतंत्रता हमें ही नहीं, पाकिस्तान, लंका, और ब्रह्मा आदि और भी कई देशों को मिली है। यदि हमने अपनी समाज-व्यवस्था का सुधार न किया तो यह स्वतंत्रता हमारे निकट बैठी न रहेगी। हमें देखना चाहिए कि पहले भी हम कभी स्वतंत्र थे; हमारी वह स्वतंत्रता जिन कारणों से नष्ट हुई थी क्या वे कारण अब दूर हो चुके है? यदि वे कारण पूर्ववत् वर्तमान है तो चिरकाल तक हमारे स्वतंत्र बने रहने की आशा कैसे की जा सकती है? रोग का निदान जब तक ठीक न हो तब तक उसका ठीक उपचार भी नहीं हो सकता। जोश के साथ होश का होना भी आवश्यक है। महात्मा टालस्टाय ने ठीक ही कहा है कि हम कितना मार्ग चल चुके है, यह बात उतनी महत्वपूर्ण नहीं जितनी कि यह बात कि हम किस दिशा में चल रहे हैं। कराची की ओर मुँह किए सौ मील प्रति दिन चल कर भी आप कलकत्ता नहीं पहुँच सकते। पर कलकत्ते के मार्ग पर दस मील प्रति दिन चलकर भी आप एक दिन अवश्य गन्तव्य स्थान पर पहुँच जायँगे।

अब तक भारत के रोग का ग़लत उपचार होता रहा है। भीतर के सामाजिक दोषों को दूर करके सब देश-वासियों को बंधुता और एकता के सूत्र में पिरोने पर ध्यान ही नहीं दिया गया। देश की रक्षा के लिए सारा बल शस्त्रास्त्र को बढ़ाने और क्षत्रियों को उकसाने पर ही लगता रहा है। इस ग़लत उपचार का परिणाम यह हुआ है कि गत १३०० वर्षों से, जब से ७ वीं शताब्दी में मुहम्मद बिन क़ासिम ने सिंध पर आक्रमण किया आज तक, हमारा पग पीछे और पीछे ही हटता आ रहा है। नवीं शताब्दी में काबुल में पाल वंश के हिन्दू राजे राज्य करते थे। पर आज अमृतसर के आगे भी हिन्दू का बच्चा देख नहीं पड़ता। यह पश्चाद्गति है या प्रगति? इस का कारण क्या है? कोई मनुष्य या तो नीरोग होता है या रुग्ण। यह नहीं हो सकता कि वह एक तिहाई नीरोग हो और दो तिहाई रोगी। इसी प्रकार राष्ट्र भी या तो सारे का सारा स्वतंत्र होगा या सारे का सारा परतंत्र। यह नहीं हो सकता कि उसके

कुछ लोग तो स्वतंत्र रहें और शेष सब परतंत्र। यदि शूद्र गुलाम और परतंत्र होगा तो द्विज भी स्वामी और स्वाधीन न रह सकेगा।

सामज-शास्त्र का एक नियम है कि जब दो मनुष्य आपस में खान-पान और व्याह-शादी करने से इंकार करते हैं तो उनमें एक-दूसरे को ऊँचा-नीचा समझने का भाव उत्पन्न हो जाता है। इस कुत्सित भाव के जागृत होते ही उन की बंधुता और एकता नष्ट होकर फूट का प्रादुर्भाव हो जाता है। हिन्दुओं का जातिभेद हिन्दुओं और अहिन्दुओं के बीच ही नहीं, वरन् हिन्दुओं की अपनी असंख्य छोटी-छोटी जातियों और उपजातियों के बीच भी रोटी-बेटी व्यवहार नहीं होने देता। इस से उन में बंधुभाव का अभाव है। बनिया, बनिए को और जाट, जाट को ही अपना भाई समझता और चुनाव में वोट देता है। जातिभेद के कारण इन सब जातियों और उपजातियों के राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक स्वार्थों का साझा नहीं रहा। जो बात ब्राह्मण के लिए हितकर है वही कहार के लिए अहितकर है। इस से सब भारतीय एक राष्ट्र न रहकर नाना राष्ट्र बन रहे हैं।

फूट और उपद्रव का कारण उतना धर्म या संप्रदाय नहीं जितना कि जातिभेद है। सिख ब्राह्मण, पौराणिक ब्राह्मण, आर्य समाजी ब्राह्मण और देवसमाजी ब्राह्मण विविध धर्म-विश्वास रखते हुए भी एक दूसरे को आत्मीय समझते हैं, क्योंकि उनका परस्पर बेटी-व्यवहार होता है। इसके विपरीत एक नाई आर्यसमाजी और सरा बनिया आर्यसमाजी धर्म-विश्वास से एक होते हुए भी आपस में बंधुभाव का अनुभव नहीं करते, क्योंकि जातिभेद के कारण उनका आपसमें बेटी-व्यवहार नहीं। यदि जातिभेद का पचड़ा न हो तो घर में कुरान और मुहम्मद का माननेवाला भी उसी प्रकार मुहम्मदी हिन्दू रह सके जैसे मूर्तिपूजक, निराकारवादी शैव, और शक्ति आदि सब हिन्दू हैं। देखिये, अकबर से लेकर औरङ्गजेब वरन् बहादुर शाह तक किसी भी मुग़ल सम्राट का ख़तना नहीं हुआ था। फिर भी वे मुसलमान कहलाते थे। मुग़ल वंश में यह अंध विश्वास फैल रहा था कि ख़तना कराने से उनका राज्य नष्ट हो जायगा; हुमायूँ का ख़तना हुआ था, इसलिए उसे मारा मारा फिरना पड़ा। मुग़ल-वंश में सबसे पहले बहादुर शाह के बडे बेटे फ़ख़रुद्दीन का ख़तना हुआ था। इसके झट ही बाद सन् १८५७ के विद्रोह में बहादुरशाह पकड़ा जा कर रंगून भेज दिया गया। इसी प्रकार शोलापुर की साली, लिङ्गायत और विष्णोई आदि अनेक जातियाँ अपने शव

जलाती नहीं, गाड़ती हैं; फिर भी वे हिन्दू हैं। भारत की राष्ट्रीय एकता में उतनी हिन्दू सभा और मुसलिम लीग जैसी साम्प्रदायिक संस्थाएँ बाधक नहीं, जितनी कि ब्राह्मण सभा, जाट सभा, और अग्रवाल सभा जैसी जाति-बिरादरी की सभाएँ बाधक हैं।

राजनीतिक स्वतंत्रता की आवश्यकता इसलिए होती है कि मनुष्य को सामाजिक स्वतंत्रता हो; मनुष्य, दूसरों की स्वतंत्रता में बाधक न हो कर, स्वेच्छानुसार खा-पी सके, पहन-ओढ़ सके, चल-फिर सके, मिल-जुल और ब्याह-शादी कर सके। यदि सामाजिक स्वतंत्रता नहीं, तो राजनीतिक स्वतंत्रता का कोई अर्थ ही नहीं रह जाता। सामाजिक जीवन को सुखमय बनाने के लिए ही सब प्रकार की स्वतंत्रताओं की आवश्यकता होती है। इसलिए सामाजिक समता और सामाजिक स्वतंत्रता ही हमारा मुख्य उद्देश्य होना चाहिए। राजनीतिक स्वतंत्रता तो उनमें सहायक होने से ही वाञ्छनीय है।

हमारे नेता भारत को एक ऐसा देश देखना चाहते है जिसमें सब धर्मों और मतों के लोग प्रेम-पूर्वक रह सकें; जहाँ धर्म एक व्यक्तिगत विश्वास हो, समाज और राष्ट्र के साथ इसका कोई संबंध न हो; जहां धर्मान्तर के साथ मनुष्य को समाजान्तर न करना पडे। उन की यह कामना बड़ी शुभ है। इस के बिना सब भारतवासी एक सुदृढ़ राष्ट्र का रूप धारण नहीं कर सकते। पर जातिभेद की वर्तमानता में उन की यह कामना कभी पूरी नहीं हो सकती। ऊँच-नीच-मूलक जातिभेद जब हिन्दुओं की विभिन्न जातियों और उपजातियों को ही मिलकर एक सुदृढ़ राष्ट्र नहीं बनने देता, तो मुसलमानों, ईसाइयों, यहूदियों और पारसियों को सामाजिक रूप से पचाकर एक राष्ट्र बनाना कैसे संभव हो सकता है ?

संसार में ऐसे देश है जहाँ विभिन्न भाषाएँ बोली जाती हैं, ऐसे देश हैं जहाँ विभिन्न धर्मों के अनुयायी बसते है, ऐसे देश हैं जहाँ के अधिवासी अशिक्षित है और फिर भी वे देश स्वतंत्र है। पर आपको समस्त भूमण्डल में एक भी देश ऐसा न मिलेगा जहां के अधिवासी एक दूसरे को जन्म के कारण ऊँच-नीच समझकर आपस में खान-पान और ब्याह-शादी करने से इंकार करते हों और फिर भी वह देश स्वतंत्र हो। प्रकृति भारत-वासियों के लिए अपने अटल नियम को बदल नहीं लेगी।

जैसा राजा वैसी प्रजा, यह एक पुरानी कहावत है। स्वेच्छाचारी राजाओं की अवस्था में यह बात ठीक भी थी। यदि संयोग से कोई राजा अच्छा

हमारा समाज
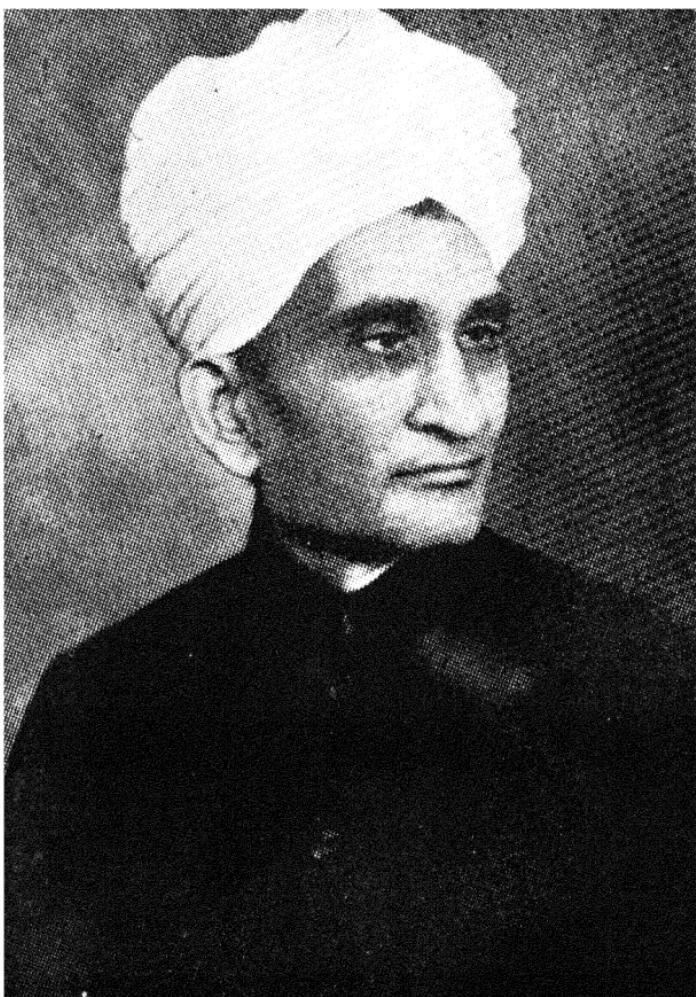
श्री सन्तराम बी० ए०

निकला तो वह अपनी प्रजा को भी अच्छा बना देता था, और यदि दुर्भाग्य से किसी राजा के घर में किसी दुष्ट पुत्र का जन्म हो गया तो वह राजसिंहासन पर बैठकर अपनी प्रजा को भी दुष्ट और लंपट बना देता था। पर अब प्रायः समस्त संसार में कहीं भी स्वेच्छाचारी राजा नहीं। पहले तो किसी को राजा बनाने की प्रथा ही उठ गई है, दूसरे यदि कहीं कोई राजा है भी तो वह केवल वैधानिक राजा है, स्वेच्छाचारी शासक नहीं। अब लोकतंत्र का युग है। भारत में भी लोकराज की स्थापना हुई है। लोकराज में "जैसा राजा वैसी प्रजा" की कहावत का उलटा होता है। इस में 'जैसी सरकार वैसी जनता' नहीं, वरन् 'जैसी जनता वैसी सरकार' होती है। यदि किसी देश की जनता सदाचारी, न्यायप्रिय, ईमानदार और समता एवं बंधुभाव-संपन्न है तो वहाँ की सरकार भी वैसी ही होगी। इस के विपरीत यदि वहाँ की जनता दुराचारी, अन्यायी, जन्म से ऊँच-नीच माननेवाली, मूढ़ विश्वासी, शुभाशुभ शकुन माननेवाली है तो वहाँ की सरकार में भी ये दुर्गुण अवश्य रहेंगे। कारण यह कि प्रजातंत्र शासन पद्धति में प्रजा ही अपने प्रतिनिधि चुनकर धारा सभाओं और विधान-परिषदों में भेजती है। वह स्वभावतः उन्हीं व्यक्तियों को अपना प्रतिनिधि चुनती है जो उनमें लोकप्रिय होते हैं। और कोई सदाचारी, न्यायप्रिय, घूँस न खानेवाला, और जन्ममूलक ऊँच-नीच को न माननेवाला मनुष्य घूंस खानेवालों और जात-पाँत को माननेवालों में लोकप्रिय नहीं हो सकता। गंदी और दुर्गुणी जनता के प्रतिनिधि भी गन्दे और दुर्गुणी होते हैं। इसीलिए कहा जाता है कि प्रजा को वैसी ही सरकार मिलती है जैसी सरकार की कि वह प्रजा पात्र होती है। यदि प्रजा निकृष्ट कोटि की होगी तो बहुत निकृष्ट कोटि के लोग ही न्यायान्याय और सत्यासत्य का विचार छोड़कर उसे प्रसन्न कर सकेंगे और वही उनके वोट प्राप्त करके प्रधान मंत्री और राष्ट्रपति बनेंगे। ऐसा मंत्रि मण्डल जनता में अप्रिय होने और राजसत्ता खो बैठने के भय से जनता को सुधारने या उसके चरित्र को ऊँचा उठाने के लिए कभी कोई कार्य नहीं कर सकेगा। इस लिए सरकार के द्वारा जनता के सुधार की आशा छोड़कर जनता का सुधार करके देश में अच्छी सरकार प्रतिष्ठित करने का प्रयत्न होना चाहिए। जब जनता के विचार उत्तम होंगे तो उनकी सरकार भी उत्तम ही होगी।

संसार में विचार एक महान शक्ति है। इसके सामने परमाणु शक्ति कुछ चीज़ नहीं। आप एक विशेष प्रकार के विचारों का प्रचार कर दीजिए। लोग

आपस में लड़ने-भिड़ने लगेंगे, रक्त की नदियाँ वह निकलेंगी, नगर उजड़ जायँगे, व्यभिचार फैल जायगा, रणचण्डी अट्टहास करने लगेगी। इस के विपरीत दूसरे प्रकार की विचार-धारा प्रचलित कर दीजिए। संसार सुख-शान्ति की पुनीत सुरसरी में स्नान करने लगेगा, लोग देश और जाति को भूलकर भाई-भाई की तरह गले मिलने लगेंगे। इस समय संसार के दूसरे राष्ट्र जहाँ शस्त्रास्त्रकी सहायता से विजय प्राप्त करने का यत्न करते है, वहाँ रूस बिना युद्ध किए, केवल विशेष प्रकार के विचार फैलाकर विजय प्राप्त कर रहा है। उस ने चीन में अपने विचार फैला कर बहुत से चीनियों को कम्यूनिस्ट बना दिया है। वे कम्यूनिस्ट अब आप ही अपने दूसरे देश-बंधुओं के साथ लड़-भिड़ कर रूस के पक्ष में कार्य कर रहे है। यही दशा मलाया, ब्रह्मा, यूनान और जर्मनी प्रभृति कई दूसरे देशों की है। भारत में भी रूसी विचारों द्वारा प्रभावित कम्यूनिस्ट यत्र-तत्र उपद्रव मचाने से नहीं चूकते।

भारत में जितना बड़ा राज्य, महाराजा अशोक का हुआ है, उतना बड़ा ब्रिटिश भारत भी नहीं था। वह अराकान से लेकर हिन्दूकुश पर्वत तक फैला हुआ था। अशोक ने इतना बड़ा प्रदेश शस्त्रास्त्र के बल से नहीं, वरन् धर्म के बल से जीता था। उस ने प्रचार द्वारा जनता के विचार बदल दिए थे। अपनी धर्म-विजय के लिए उस ने अपने सारे साम्राज्य में पाषाण-स्तम्भ गड़वाकर उन पर सदाचार और नीति की बातें खुदवाई थीं। उसके प्रचार का प्रभाव यह था कि यद्यपि उस समय भी आज ही के सदृश भारत की सीमाएँ खुली पड़ी थीं, तो भी किसी विदेशी शत्रु को इस देश पर आक्रमण करने का साहस नहीं होता था। अशोक के धर्मोपदेश से जाति-भेद दब गया था और समूचे राष्ट्र में बंधुता और एकता का स्वर्गीय भाव जाग उठा था। इस से राष्ट्र इतना सुदृढ और सबल बन गया था कि किसी को उसकी ओर आँख उठा कर देखने का भी साहस न होता था। यह स्वर्णिम काल इस देश में कोई बारह सौ वर्ष तक रहा।

कहने का तात्पर्य यह कि विचार संसार को पलट सकता है। इसलिए यदि हम भारत को सुख-समृद्धिशाली देखना चाहते हैं तो हमें यहाँ की प्रजा के विचारों को बदलकर सुधार करना आवश्यक है। कोई सरकार डण्डे के बल से यह कार्य नहीं कर सकती। यह काम प्रचार द्वारा ही संभव हो सकता है, और पुस्तकें प्रचार का एक बहुत उत्तम साधन हैं।

किसी देश में लोकतंत्र शासन-पद्धति को सफल बनाने के लिए पहले वहाँ के अधिवासियों को लोकतंत्री बनाना आवश्यक होता है। लोकतंत्री समाज के लिए ही लोकतंत्र राज्य उपयुक्त होता है। जाति-भेद लोकतंत्र का बिलकुल उलट है। लोकतंत्र जन्म से सब को बराबर मानता है। पर जाति-भेद जन्म से ही किसी को ऊंचा और किसी को नीचा समझता है। ऐसी दशा में लोक-तंत्र और जाति-भेद दोनों इकट्ठे नहीं रह सकते। इसलिए भारत में सच्चा लोकराज प्रतिष्ठित करनेके लिए शिक्षा द्वारा जनता के जाति–भेद संबंधी भ्रान्त विचारोंको बदलना आवश्यक है। यदि जनता को पेट भरने के लिए अन्न और तन ढँकने के लिए वस्त्र देकर ही उपकृत करने का यत्न किया जायगा, तो इसका परिणाम कोई अच्छा नहीं होगा। इस से वह पालतू गाय के सदृश हो जायगी। उसे जो भी शासक अच्छा खाने-पहनने को देगा वह उसी को दूध देने और उसी के अधीन होकर रहने लगेगी। उसमें अपना शासक आप होने का, प्रजा से राजा होने का पुनीत भाव जागृत न होगा। वह सदा परमुखापेक्षी और पराश्रजीवी ही बनी रहेगी। गज़नीके महमूद या अहमदशाह अब्दाली ने भारत पर इस कारण विजय नहीं पाई थी कि हम उस समय भूखे-नंगे थे, वरन् हम इसलिये हारे थे कि हम में एक दूसरी बहुत बड़ी चीज़ का अभाव था, और वह चीज़ थी बंधुता और समता से उत्पन्न होनेवाली एकता। इसी एकता का अभाव इस समय भी हमारे दुःखों का मूल कारण बन रहा है, और जातिभेद को बनाए रखकर हम यह राष्ट्रीय एकता कदापि उत्पन्न नहीं कर सकते।

जातिभेद से होनेवाली सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक हानियोंका अनुभव करके १० मार्गशीर्ष संवत् १९७९ विक्रमी अर्थात्-नवम्बर सन् १९२२ ई. को, कुछ मित्रों के सहयोग से, मैंने लाहौर में जातपाँत तोड़क मण्डल नाम की एक संस्था स्थापित की थी। तब से मैं मण्डल के मंत्री, प्रधान और संस्था की मुख पत्रिका "क्रान्ति" के संपादक के रूप में देश में से जातिभेद को मिटाकर समता, बंधुता और स्वतंत्रता का प्रचार करता रहा हूँ। मेरे जीवन का सर्वोत्तम भाग इसी कार्य में व्यतीत हुआ है। इस पुस्तक के लिखने में भी मेरा उद्देश्य भारत में एक ऐसी विचार–धारा प्रचलित करना है जो सब देश–वासियों को एकता और बंधुता के सुदृढ़ सूत्र में संगठित करके एक शक्तिशाली एवं दुर्भेद्य राष्ट्र का रूप दे सके।

हिन्दुओं के धर्म में कोई दोष नहीं। इन का उच्च तत्वज्ञान, इन का उत्कृष्ट ब्रह्मवाद और इनकी शान्तिदायिनी संस्कृति आज भी संसार के बडे से बडे दार्शनिक को आकर्षित करती है। दोष है हमारी समाज-रचना में। हमारी

जात-पाँत एक भारी दुर्गुण है, जो हम में अनेक दूसरे सद्‌गुणों के रहते भी, हमें दिन पर दिन नीचे लिए जा रहा है। इस के विपरीत मुस्लिम प्रभृति दूसरे समाजों में समता और बंधुता का एक ऐसा बहुमूल्य सद्‌गुण है जो उन में अगणित दुर्गुण रहते भी उनको बराबर उबार रहा है। हमारे इस दोष के दूर होते ही हम उन्नति के पथ पर अग्रसर होने लगेंगे, ऐसी मुझे पूर्ण आशा है।

जातिभेद को हिन्दुओं की एक सामाजिक बुराई समझकर सरकार का इस की उपेक्षा करना भारी भूल होगा। यह किसी एक जाति या संप्रदाय का रोग नहीं। यह तो समूचे राष्ट्र की भीषण व्याधि है। जिस बात का प्रभाव सारे राष्ट्र पर पडे वह राष्ट्रीय कहलायगी, न कि किसी संप्रदाय की। बाल-विवाह, विधवा-विवाह निषेध, सती, स्त्री-शिक्षा का विरोध इत्यादि बुराइयाँ ऐसी हैं जिन का प्रभाव विशेष व्यक्तियों या जन–समूहों तक सीमित रहता है। इसलिए वे किसी समाज विशेष की बुराइयाँ समझी जा सकती है। पर जिस व्याधि ने समूचे राष्ट्र का विध्वंस कर डाला हो, जिसने उसे स्वतंत्र से परतंत्र बना दिया हो, जिसने भाई को भाई से अलग कर दिया हो, और अन्ततः जिस ने देश के बटवारे तक की नौबत ला दी हो, यदि वह राष्ट्रीय व्याधि नहीं तो मालूम नहीं राष्ट्रीय किसे कहा जायगा ?

हमारे पवित्र धर्म ग्रन्थ वेद का उपदेश है—

सं गच्छध्वं सं वदध्वं सं वो मनांसि जानताम्। ऋ० १०–१९१–२

समानी प्रपा सहवोन्नभागः समाने योक्त्रे सह वो युनज्मि ॥

सम्यञ्चोऽग्निं सपर्यतारा नाभिमिवाभितः ॥ अ० ३–३०–६

अर्थात्–हे मनुष्यो, मिलकर चलो, मिलकर बोलो, तुम सब का मन एक हो, तुम्हारा खान-पान इकठ्ठा हो, मै तुम को एकता के सूत्र में बाँधता हूँ। जिस प्रकार रथ की नाभि में आरे जुडे रहते हैं, उसी प्रकार एक परमेश्वर की पूजा में तुम सब इकट्ठे मिले रहो।

पर बंधुता और एकता तबतक संभव नहीं होती जबतक सामाजिक समता न हो। समता ही वह पुनीत सद्‌गुण है जो देशवासियों में बंधुभाव उत्पन्नकर सकता है। जिस राष्ट्र में बंधुभाव है वहाँ अक्षय सुख-समृद्धि निवास करती है। जिन लोगों का आपस में प्रेम है उन्हें कोई भी दूसरा राष्ट्र अपना दास नहीं बना सकता। वहाँ धन-जन-बल की सदा वृद्धि होती है

उड़िया कवि मधुसूदन राव ने भारतमाता के अतीत गौरव और वैभव का स्मरण कराते हुए कहा है—

एही की से पुण्य भूमि भुवन-विदिता,
सुविस्तीर्ण रंगभूमि आर्य गौरवर ?
एही की से भारत, यार महिमा-संगीत,
गम्भीर झंकारे पूर्ण दिग्विगन्तर ?
एही की से सुमनोग्ग आशा-सरोवर,
यार ज्ञानामृत पाने कृतार्थ धरणी ?
यार तेजे विभूषित देश-देशान्तर ?
एही की से वसुधार समुज्वल मणि ?
एही की से अमृतमयी मृत्युंजय सन्तान-जननी ?

भावार्थ—क्या यह वही भुवन-विदिता पुण्य-भूमि है ? क्या यह वही आर्य-गौरव की सुविस्तीर्ण रंगभूमि है ? क्या यह वही भारत है जिस के महिमा संगीत की गम्भीर झंकार से दिग्दिगन्त परिपूर्ण था ? क्या यह वही सुमनोग आशा-सगेवर है, जिसका ज्ञानामृत पीकर धरणी कृतार्थ हुई थी ? जिसके तेज से देश-देशान्तर विभूषित था ? क्या यह वही वसुधा की समुज्ज्वल मणि है ? क्या यह वही मृत्युंजय सन्तान की अमृतमयी जननी है ?

जगदीश्वर कृपा करें कि हम भारत-सन्तान एकबार फिर कवि के प्रश्न के उत्तर में निःसंकोच भाव से कह सकें—**हाँ यह वही महिमामयी भारत माता है !**

अन्त में प्रभु से प्रार्थना है कि मेरा संदेश इस पुस्तक के द्वारा भारत के घर-घर में पहुँचकर देश-बंधुओं के हृदय में स्थान पावे ।

अपुत्राः पुत्रिणः सन्तु,
पुत्रिणः सन्तु पौत्रिणः,
अधनाः सधनाः सन्तु,
जीवन्तु शरदः शतम् ।

जिनको पुत्र नहीं वे पुत्रवान् हों, जो पुत्रवान है उनको पौत्र हों। जो निर्धन है उनको धन की प्राप्ति हो। सब लोग सौ वर्ष की पूर्ण आयु पाएं। देश सुख-समृद्धिशाली हो। सर्वत्र प्रेम और शान्ति का ही राज्य हो !

होशियारपुर
संवत् २००५ विक्रमी
दीपावली

सन्तराम

सहायक पुस्तक–सूची

अर्थात्

उन पुस्तकों के नाम जिनसे इस पुस्तक में सहायता ली गई है और जिनके प्रमाण इसमें उद्धृत हैं—

१ ऋग्वेद
२ मज्झिम निकाय (बौद्ध ग्रंथ)
३ निरुक्त
४ यजुर्वेद
५ अथर्व वेद
६ श्रीमद्भागवत पुराण
७ महाभारत
८ वायु पुराण
९ भविष्य महा पुराण
१० विष्णु पुराण
११ पद्म पुराण
१२ बृहदारण्यक उपनिषद्
१३ अष्टाध्यायी (पाणिनि)
१४ देवी भागवत पुराण
१५ लिङ्ग पुराण
१६ शिव पुराण
१७ विजातीय विवाह मीमांसा— " परमेष्ठीदास जैन " कृत
१८ उत्तर पुराण
१९ पुण्याश्रव कथा कोष
२० हरिवंश पुराण
२१ श्रेणिक चरित्र
२२ क्षत्र चूडामणि
२३ नागकुमार चरित्र
२४ The Original Home of Aryans—by D. S. Triveda Annal of the Bhandarkar Oriental Research institute Vol. XX.
२५ अत्रि स्मृति
२६ जाति कथा
२७ Who were the Shudras ?— Dr. B. R. Ambedkar.
२८ यजुर्वेद का स्वाध्याय— श्रीपाद दामोदर सातवलेकर
२९ पातञ्जल महाभाष्य
३० भारतवर्ष में जातिभेद— आचार्य क्षितिमोहन सेन
३१ लघु पाराशर
३२ बृहत् नारदीय पुराण
३३ ब्रह्म पुराण
३४ कृष्ण यजुर्वेद

३५ काठक संहिता

३६ महाभारत मीमांसा

३७ छान्दोग्योपनिषद्

३८ शतपथ ब्राह्मण

३९ कौशीतकि उपनिषद्

४० केनोपनिषद्

४१ हिन्दी शब्द–सागर

४२ रामायण—तुलसीकृत

४३ मीमांसा तंत्रवार्तिक—कुमारिल भट्ट

४४ जैन कल्पसूत्र

४५ बौद्धकालीन भारत

४६ गरुड पुराण

४७ पाराशर स्मृति

४८ नारायण सार संग्रह

४९ कन्दली—श्रीधराचार्य

५० क्षत्रिय–सागर

५१ राजतरङ्गिणी—कल्हण

५२ मनुस्मृति

५३ अष्टाध्यायी महाभाष्य—पतञ्जलि

५४ गौतम धर्मसूत्र

५५ ब्रह्मसूत्र, शांकर भाष्य

५६ अत्रिस्मृति

५७ वसिष्ठ धर्मसूत्र

५८ संवर्त संहिता

५९ विष्णु स्मृति

६० " सीता "–श्री योगेशचन्द्र चौधरी। अनुवादः श्री राधामोहन काव्यतीर्थ

६१ विनय–पिटक

६२ दिग्घ निकाय

६३ स्कन्द पुराण

६४ सूक्ष्म वेदान्त ग्रन्थ

६५ सौर पुराण

६६ प्रभास क्षेत्र माहात्म्य

६७ शंकर दिग्विजय

६८ वज्रसूचिकोपनिषद्

६९ महात्मा बसवेश्वर के वचन

७० हिस्टरी आफ़ कास्ट—केतकर

७१ रीलिजन आफ़ दि वेदाज़—ब्लूम फ़ील्ड

७२ औशनस स्मृति

७३ भारत में बायबिल-जकालियट

७४ Annihilation of Caste–Dr. B. R. Ambedkar.

७५ वैदिक संपत्ति–रघुनन्दन शर्मा

७६ Census report of India.

७७ What the Castes are—Wilson.

७८ माधव शतप्रश्न कल्पलतिका

७९ Indian Ethnology—Campbell.

८० Tribes and Castes of the N. W. P. & Oudh.

८१ Glossary of Castes & Tribes of the Punjab.

८२ वाल्मिकि रामायण
८३ हिन्दुओं की अवनति की मीमांसा
८४ मत्स्य पुराण
८५ सनाढ्य संहिता
८६ जाति–भास्कर–ज्वाला-प्रसाद मिश्र
८७ जाति–अन्वेषण–श्रोत्रिय छोटेलाल
८८ अरोडवंश इतिहास
८९ जाति–कोष
९० पंजाब कथाएँ—सर रिचर्ड टेम्पल
९१ जाति-विवेक—गोपीनाथ
९२ पंजाब की अछूत जातियाँ—डेन्जल इबटसन और श्री. विलियम
९३ Hindoo Exogamy—Karandikar M. A.
९४ धर्म–सिंधु
९५ पद्मचन्द्रकोष–श्री गणेशदत्त शास्त्री
९६ अग्नि–पुराण
९७ मिताक्षरा
९८ नित्यकर्म प्रयोगमाला—श्री. चतुर्थीलाल शर्मा
९९ उद्वाह तत्त्व
१०० याज्ञवल्क्य की व्याख्या–विश्वरूप
१०१ पराशर माधव–पराशर—
१०२ भोजप्रबंध–बल्लाल
१०३ ह्यूमन स्पीशीज़्–ए. डी. काटरीफ़ीजस
१०४ जेनेटिक्स एण्ड यूजेनिक्स—कैसल
१०५ वर्क, वेल्थ एण्ड हैपिनेस—एच्. जी. वेल्ज़्
१०६ बायोलाजिकल बेसिज आफ़् ह्यूमन नेचर—
१०७ Outspoken Essays—Dean Inge.
१०८ Heredity in relation to Eugenics-Devan Port.
१०९ हरेडटरी जीनियस–गाल्टन
११० गाल्टन का जीवन चरित–पीटर सन
१११ एथिक्स एण्ड सम वर्ल्ड प्राबलम्स्–मेक डूगल
११२ नैशनल वेल फेअर एण्ड डीके-मेक डूगल
११३ स्टडी आफ़् ब्रिटिश जीनीयस-एलिस
११४ Social Recay & Regeneration-Austin & Freeman.
११५ Heredity & Eugenics Gates.
११६ अत्रि संहिता
११७ देवल–स्मृति

हमारा समाज

महात्मा मुन्शीराम जी

(स्वामी श्रद्धानन्दजी)

समर्पण

अपने युग के सब से पहले और सब से बडे
सुधारक

महात्मा मुन्शीराम जी-स्वामी श्रद्धानन्द जी

की सेवा में

सन्तराम

पहला परिच्छेद

जाति-भेद का लक्षण

जिन दिनों मै लाहौर में रहता था, मेरे पड़ोस में श्री. रविदत्त नाम के एक गौड़ ब्राह्मण गृहस्थ रहते थे। एक दिन की बात है, मै उनके निकट बैठा था। संयोग से जात-पॅात पर बात चलपड़ी। मैंने पूछा, जात-पाँत के संबंध में आपका क्या मत है? इस पर वे बोले, मेरे मत का एक मनोरंजक इतिहास है, आप सुनना पसंद करें तो सुनाऊँ। मै ने उत्तर दिया—मेरा तो यह मनभाता विषय है। इसे सुनने में मुझ से बढ़कर प्रसन्नता किसको होगी? इसपर वे बोले—

प्रथम यूरोपीय महायुद्ध के समय मै भी लड़ाई में गया था। मेरी पलटन इटली में थी। मुझे रोटी बनाने के लिए एक भारतीय नौकर मिला हुआ था। वह अपढ़ था। मै ही उसकी चिट्ठी-पत्री लिखा और पढ़ा करता था। एक दिन उसके पिता की चिट्ठी आई। वह पढ़ाने के लिए मेरे पास लाया। चिट्ठी पर भेजने वाले का नाम "नत्थू भंगी" देखकर मै चौंक पड़ा। मैंने उससे पूछा, तुम कौन जाति हो? वह चुप रहा। मैंने बिगड़ कर कहा, तुम भंगी होकर मुझे खाना खिलाते रहे हो। तुमने मेरा धर्म भ्रष्ट कर दिया; मै मेजर साहिब से तुम्हारी शिकायत करता हूँ।

जिस पलटन के साथ मै लगा हुआ था, वह संयोग से इँग्लेण्ड के विश्वविद्यालयों के विद्यार्थियों की थी। उस के सब के सब सिपाही वहाँ के कालेजों के छात्र ही थे। उनके अफ़सर भी प्रोफेसर आदि ही थे। मैंने मेजर के पास शिकायत करदी कि इस नौकर ने मेरा धर्म भ्रष्ट कर दिया है। उसने पूछा—कैसे? मैने कहा—इसने मुझसे अपनी जाति छिपाए रक्खी है और मुझे भोजन बना कर खिलाता रहा है।

मेजर ने आश्चर्य से कहा—भोजन खिलाने से आपका धर्म कैसे भ्रष्ट हो गया!

मैं—जी, यह भंगी है और मैं ब्राह्मण। इसके हाथ का बना भोजन करने से मेरी जाति चली गई है और धर्म डूब गया है।

मेजर—(आश्चर्य से) वह क्यों?

मैं—जी, यह भंगी टट्टी उठाता है।

मेजर—तब क्या हुआ? हम सब इस पलटन में बारी-बारी से सात-सात दिन टट्टी साफ़ करने का काम किया करते हैं। टट्टी साफ़ करने से धर्म कैसे डूब गया? जाओ, तुम्हारी यह शिकायत व्यर्थ है।

इस पर मैं बहुत चकराया और मेजर साहिब को समझाने का बार-बार यत्न करने लगा। पर मेरे लाख शिर पटकने पर भी उनकी समझ में कुछ न आया कि भंगी के हाथ का बना भोजन करने से मेरा धर्म कैसे डूब गया है, और मेरी जाति कैसे चली गई है। तब वे तंग आकर मुझे एक दूसरे अफ़सर के पास ले गये। वह अफ़सर भारत में कुछ वर्ष पादरी रह चुका था। उसने मुझसे पूछा कि क्या आप भारतीय हिन्दू हैं? मैंने कहा-जी हाँ। इस पर वह बोला-ठीक है, मैं समझ गया, आप लोग दूसरी जाति वालों का नहीं खाते।

इस पर मेजर ने मेरे उस भंगी रसोइए को कोई हलका सा दण्ड दे दिया। इस के बाद वह भूतपूर्व पादरी मेरे पास आया और एकान्त में ले जाकर मुझ से कहने लगा—देखो, तुम उस रसोइए को दण्ड दिलाने में सफल तो अवश्य हो गये हो, पर याद रक्खो, तुमने मनुष्यता का अपमान किया है, तुम भगवान के दरबार में फटकारे जाओगे!

उस पादरी के उन शब्दों ने मेरे मर्मस्थल पर आघात किया। मुझे अपने उस दुष्कर्म पर भारी पश्चात्ताप हो आया। मैं सोचने लगा कि वह रसोइया भी मेरे समान ही मनुष्य है। उसके हाथ का खाना खाने से मेरे शरीर में कोई विकार उत्पन्न नहीं हुआ। अब भी वह वही मनुष्य है जो उस समय था जब कि उसकी जाति का मुझे ज्ञान न हुआ था। बस; जात-पाँत की कल्पना अलीक है। तब से मैं जात-पाँत का विचार बिलकुल मन से निकाल चुका हूँ। मुझे किसी भी स्वच्छ व्यक्ति के यहाँ खान-पान करने में अब कोई संकोच नहीं।

हिन्दुओं का जाति भेद सचमुच कल्पित, अस्वाभाविक और भ्रममूलक है। इस की कोई ठीक-ठीक परिभाषा करना, इसे किसी विदेशी को समझा सकना

बड़ा कठिन है। यदि हम जाति भेद को एक रोग मान लें तो इस के बडे बडे बाह्य लक्षण ये है—स्पर्श—बंदी, व्यवसाय—बंदी, रोटी—बंदी और बेटी-बंदी। अर्थात् जिस व्यक्ति या जन—समूह में जाति-भेद पाया जाता है वह कुछ लोगों को छूने से इन्कार कर देता है, वह कुछ व्यवसाय अपने लिए निषिद्ध मान लेता है, वह थोडे से लोगों के सिवा शेष सबके साथ रोटी—बेटी—व्यवहार करने से इन्कार करने लगता है। वह एक मैले से मैले मनुष्य को छू लेगा, उसके हाथ का बना खा लेगा, पर दूसरे साफ़—सुथरे मनुष्य को न छुएगा और न उसका बना भोजन ग्रहण करेगा। वह एक सजातीय कुरूप, अपढ़ और दुराचारी लड़के को अपनी सुन्दरी एवं सुशिक्षिता लड़की दे देगा, पर दूसरे सुशिक्षित, सदाचारी और सुन्दर युवक को देने से इनकार कर देगा। वह चोरी करेगा, जुआ खेलेगा, भीख मांग लेगा पर ईमानदारी और परिश्रम से किसी के जूठे बर्तन साफ़ कर, टोकरी ढो कर या जूते सी कर पेट पालने को तैयार न होगा। इस स्पर्श—बंदी, व्यवसाय—बंदी, रोटी—बंदी और बेटी—बंदी का कोई वैज्ञानिक या युक्तिसंगत कारण उसके पास नहीं रहता। उसे केवल भ्रम रहता है कि इन बंदियों को तोड़ने से मेरी जाति चली जायगी और मेरा धर्म डूब जायगा। जाति भेद को मानने वाला एक छोटे से मनुष्य—समूह को ही अपना सारा संसार मान बैठता है। उसी के भीतर उसका खान—पान, रहन—सहन, ब्याह—शादी और जीवन—मरण होता रहता है। उसी छोटे से समूह के लोग उस के दुःख—सुख में भाग लेते हैं। मालवीय ब्राह्मण के शव को मालवीय के सिवा कोई दूसरा ब्राह्मण भी नहीं उठा सकता।

जाति-भेद हिन्दू—समाज की एक विशेष बात है। दूसरे देशों में, धनी-निर्धन शिक्षित—अशिक्षित, स्वामी—सेवक, पूंजीपति—श्रमजीवी, किसान, अध्यापक, ग्रामीण और नागरिक के वर्ग है। पर वे भारत में पाये जानेवाले जाति-भेद से सर्वथा भिन्न है। जात-पांत केवल सामाजिक बँाट का ही सिद्धान्त नहीं, वरन् जीवन की एक व्यापक पद्धति है। इस का हिन्दू के खान-पान और ब्याह—शादी के साथ ही नहीं, उसकी शिक्षा—दीक्षा, मेल-जोल यहाँ तक कि ईश्वराराधन की रीति के साथ भी घनिष्ठ संबंध है। सामाजिक पद्धतियाँ परिवर्तनशील होती है, पर जात-पाँत कभी नहीं बदलती। आज जात-पाँत एक पद्धति नहीं, वरन् एक धर्म बनगई हुई है। इसका पालन न करने से व्यक्ति को दण्ड मिलता है।

दूसरा परिच्छेद

जाति-भेद का आरम्भ

कहते है, किसी मनुष्य की छाती में बाण लग गया। उस से वह आहत हो कर चिल्लाता हुआ धरती पर गिर पड़ा। कुछ लोग दौड़कर उसके निकट पहुँचे। वे उस बाण को खींच कर घाव में से निकाल डालना चाहते थे। पर उस आहत व्यक्ति ने उन को ऐसा करने से रोक दिया। वह बोला, मैं यह बाण तबतक न निकालने दूंगा जबतक मुझे यह न बता दिया जायगा कि यह किधर से आया, किसने चलाया, यह किस पेड़ की लकड़ी से और कब बना, किसने इसे बनाया और इस मे जो लोहा लगा है वह किस खान से निकाला गया था और उसे किस लोहार ने ढाल कर बाण की अणि तैयार की थी। उन लोगों ने उसे बहुतेरा समझाया कि तुम पीड़ा से व्याकुल हो रहे हो, इन बातों के जानने से तुम्हारा दुःख कैसे दूर होगा? बाण किसी ने भी और कभी भी बनाया हो, तुम्हारी पीडा तो उसे निकालने से ही शान्त होगी। पर उस ने अपनी हट न छोड़ी।

कुछ ऐसी ही बात उन हिन्दुओं की है जो जाति भेद के कुप्रभावों को देखते हुए भी उसे तबतक छोड़ने को तैयार नहीं जबतक उन को यह न बता दिया जाय कि यह किस ऋषि ने बनाई थी, कब बनाई थी और क्यों बनाई थी। कुछ ऐसे भी लोग है जो कहते है कि चाहे इस समय जाति-भेद हानिकारक हो गया हो पर प्राचीन काल में इसने हमें बहुत काम दिया है, इसलिए इसे बनाए रखना चाहिए। इन लोगों की बात भी वैसी ही है, जैसे कोई कहे; क्योंकि किसी समय रायगढ़ का दुर्ग महाराष्ट्र की राजशक्ति का एक आधार-स्तम्भ था, इस लिए आज चाहे वह टूट-फूट गया है और विमानों के आक्रमणो से सेना की रक्षा नहीं कर सकता, तो भी उसे ही राजधानी बनाना चाहिए। यद्यपि उपर्युक्त दोनों बाते व्यर्थ और

हास्यजनक हैं, तो भी ऐसे लोगों की संसार में कमी नहीं है। इसलिए उनके सन्तोष के लिए हम जाति-भेद की उत्पत्ति के संबंध में कुछ बातें संक्षेप में आगे लिखते हैं।

हिन्दुओं में इस समय कई सहस्र जातियाँ और उपजातियाँ हैं। पर ये सब चातुर्वर्ण्य विभाग की ही स्वाभाविक दुष्परिणाम हैं। आर्यों की सब से प्राचीन पुस्तक ऋग्वेद है। उस में कहीं भी ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य को वर्ण नहीं कहा गया है। अर्थात् वेद में किसी जगह भी ब्राह्मण वर्ण, क्षत्रिय वर्ण या वैश्य वर्ण लिखा नहीं मिलता। इन तीनों को बहुत बाद में स्मृतियों ने ही "वर्ण" का नाम दिया है। वेद मे वर्ण शब्द मिलता अवश्य है। पर इस का प्रयोग केवल "आर्य" और "दास" के साथ हुआ है।* जैसे—

यो दासं वर्णमधरं गुहाऽकः। ऋ. २. १२. ४.

अर्थात्—जो दास वर्ण को नीचे गुफा में डालता है।

हत्वी दस्यून् प्रार्यं वर्णमावत्। ऋ. ३. ३४. ९.

अर्थात्—दस्युओं को मारकर आर्य वर्ण की पूरी-पूरी रक्षा करता है।

इतना ही नहीं, वेद में वर्णों की संख्या भी चार कहीं नहीं बताई। उस में "चातुर्वर्ण्य" भी लिखा नहीं मिलता। हाँ "दो वर्ण" अवश्य कहा गया है। जैसे—

उभौ वर्णावृषिरुग्रः पुपोष। ऋ. १. १७९. ६.

अर्थात्—उग्र ऋषिने "दोनों वर्णों" को पुष्ट किया।

कुछ लोग ऋग्वेद के दसवें मण्डल का निम्न लिखित मंत्र—

ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद्बाहू राजन्यःकृतः।
ऊरू तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्यां शूद्रोअजायत ॥ ९०,१२ ॥

पेश करके कहते हैं कि वेद में चार वर्ण हैं। पर इस मंत्र का अर्थ तो केवल इतना ही है कि उस (प्रजापति) के मुख ब्राह्मण, बाहु क्षत्रिय, ऊरू वैश्य

---

* बौद्धों के ग्रंथ मज्झिम निकाय ९३ मे भी लिखा है—"हे आश्वलायन, क्या तुमने सुना है कि यवन, कम्बोज और दूसरे सीमान्त देशों में दो ही वर्ण होते हैं—आर्य और दास। आर्य दास हो सकता है और दास भी आर्य हो सकता है।"

थे और पैरों से शूद्र उत्पन्न हुए। इस मंत्र में वर्ण शब्द कहीं है ही नहीं। ऐतिहासिक पण्डितों का मत है कि ऋग्वेद का दसवॉ मण्डल अपेक्षाकृत अर्वाचीन है। इसके अतिरिक्त उव्वट और महीधर आदि भाष्यकारों ने इस में समाज का नहीं, यज्ञ का वर्णन माना है।

इस में संदेह नहीं कि वेद में मनुष्य-समाज कहीं-कहीं दो भागों में बँटी मिलती है (जैसे कि आर्य और शूद्र[1] या आर्य और दास[2] या दस्यु[3]) कहीं चार में, कहीं पॉच[4] में, कहीं छः[5] में और कहीं बीसियों[6] जातियों में। पर वेद वर्ण केवल उपर्युक्त को ही कहता है। कुछ लोगों की धारणा है कि "पंचजनाः" का अर्थ, निरुक्त के अनुसार चार वर्ण और पाँचवाँ निषाद है।

इस संबंध में एक बात का स्मरण रखना चाहिए। निरुक्तकार यास्क वैदिक काल के बहुत काल पीछे हुआ है। उसे निश्चित रूप से पता न था कि यह शब्द वैदिक काल मे किन अर्थों में प्रयुक्त होता था। इसलिये उसने इस विषय में भिन्न-भिन्न प्रचलित मत दे दिए हैं। निरुक्त का पाठ इस प्रकार है—

गन्धर्वाः पितरो देवा असुरा रक्षांसीत्येके

चत्वारो वर्णाः, निषादः पंचमः इत्यौपमन्यवः। (निरुक्त ३-८)

अर्थात्—पंचजन के संबंध में अनेक मत है। कुछ लोग कहते है कि गंधर्व,

---

१. **तयाऽहं सर्वं पश्यामि यश्च शूद्र उतार्यः।** (अथर्व ४-२०-४)
अर्थात्-मैं सब को देखता हूँ जो शूद्र है और जो आर्य है।

२. **त्वं ताँइन्द्रोभयाँअमित्रान् दासावृत्राण्यार्या च शूर।** (ऋ. ६-३३-३)
अर्थात्-हे शूर इन्द्र, रुकावट डालने वाले दोनों प्रकार के शत्रुओं को, दास और आर्य्य को, तू ने मारा।

३. **न यो रर आर्यं नाम दस्यवे** (ऋ. १०-४९-३)
अर्थात्-जिसने आर्य नाम दस्यु को नहीं दिया।

४. जैसा कि वेद के "पंचजनाः" "पंचकृष्टयः" और "पंचमानव" आदि शब्दों से प्रकट है।

५. यजु २९-२

६. यजु अध्याय ३० मंत्र ५-६।

पितर, देव, असुर और राक्षस ये पाँच पंचजन है, पर औपमन्यवाचार्य का मत है कि चार वर्ण और पँाचवॅा निषाद, ये पंचजन है।

आदिकाल में चार वर्णों की बँाट नहीं थी। यह विभाजन पीछे से किया गया, इस के प्रमाण महाभारत और पुराणों मे भी मिलते है। उन में से कुछ आगे दिये जाते है :—

एक एव पुरा वेद: प्रणवः सर्ववाङ्मयः।
देवो नारायणो नान्य एकोऽग्निर्वर्ण एव च॥ ४॥

श्रीमद्भागवत पुराण, स्कंध ९।१४

श्रीधर स्वामी इसका अर्थ यह करते है कि पहले सर्ववाङ्मय प्रणव (ओंकार) ही एकमात्र वेद था। एकमात्र देवता नारायण थे और कोई नहीं। एकमात्र लौकिक अग्नि ही अग्नि और एकमात्र हंस ही एक वर्ण था। पुराण में कहा है कि प्रारंभ में मनुष्य की एकमात्र जाति हंस * थी। महाभारत कहता है—

एक वर्णमिदं पूर्वं विश्वमासीद् युधिष्ठिर।
कर्म क्रिया विभेदेन चातुर्वर्ण्यं प्रतिष्ठितम्॥

अर्थात्–हे युधिष्ठिर, इस जगत मे पहले एक ही वर्ण था। गुण–कर्म के विभाग से पीछे से चार वर्ण स्थापित किए गये।

वही महाभारत फिर कहता है—

न विशेषोऽस्ति वर्णानां सर्वं ब्राह्ममिदं जगत्।
ब्रह्मणा पूर्वसृष्टं हि कर्मभिर्वर्णतां गतम्॥

अर्थात्—वर्णों में कोई भी वर्ण किसी प्रकार की विशेषता नहीं रखता, क्योंकि यह संपूर्ण जगत ब्रह्ममय है। पहले सबको ब्रह्मा ने ही उत्पन्न किया है। पीछे कर्मों के भेद से वर्णों की उत्पत्ति हुई।

फिर वायुपुराण × कहता है—

---

* आदौ कृतयुगे वर्णो नृणां हंस इतिस्मृतम्।

× अप्रवृत्तिः कृतयुगे कर्मणोः शुभपापयोः।
वर्णाश्रमव्यवस्थाश्च तदाऽऽसन्न संकरः॥ (शेष आगे के पृष्ठ पर)

" सत्ययुग में कर्मभेद, वर्णभेद और आश्रमभेद न था। त्रेतायुग में मनुष्यों की प्रकृतियाँ कुछ भिन्न-भिन्न होने लगीं। कर्म-वर्ण-आश्रम-भेद आरम्भ हुए। तदनुसार शान्त, शुष्मी, कर्मी और दुःखी ऐसे नाम पडे। द्वापर और कलि में प्रकृति-भेद और भी अभिव्यक्त हुआ। तदनुसार क्षत्रिय, ब्राह्मण, वैश्य और शूद्र नाम पडे।"

महाभारत के शान्तिपर्व, मोक्षधर्म ४२।१८८ में इस प्रकार लिखा है—

प्रश्न—हे भृगु मुनि, काम, क्रोध, लोभ, भय, चिन्ता, क्षुधा और श्रम आदि बातें हम सब में एक सी हैं, तब वर्ण का भेद क्यों मानते हैं? पसीना, भूख, शौच, कफ, पित्त, और रक्त सबके शरीर में रहते हैं। तब एक वर्ण दूसरे वर्ण से अलग क्यो माना जाता है?

उत्तर—इस पर भृगु ऋषि बोले—(पहले) एक ब्राह्मण ही वर्ण था। इसलिए (इस समय दिखाई देनेवाले भिन्न-भिन्न) वर्णों में कोई विशेष अन्तर नहीं। पहले पहल ब्रह्मा के द्वारा उत्पन्न किए हुए एक ही वर्ण के लोग विभिन्न कर्मो के कारण भिन्न-भिन्न वर्णो को प्राप्त हुए है।

फिर भविष्य महापुराण के ब्रह्मपर्व, अध्याय ४२ में लिखा है—

" यदि एक पिता के चार पुत्र है तो उन चारों की एक ही जाति होनी चाहिए। इसी प्रकार सब लोगों का पिता एक परमेश्वर ही है। इसलिए मनुष्य-समाज में जाति भेद है ही नहीं। जिस प्रकार गूलर के पेड़ में अगला भाग, मध्य का भाग, और जड़ का भाग; तीनों में एक ही वर्ण और आकार के फल लगते हैं, उसी प्रकार एक विराट् पुरुष परमेश्वर के मुख, बाहु, पेट और पैर से उत्पन्न हुए मनुष्यो मे (स्वाभाविक) जाति भेद कैसे माना जा सकता है।"

भविष्य पुराण (अध्याय ४) कहता है—

त्रेतायुगे त्वविकलः कर्मारम्भः प्रसिध्यति
वर्णानां प्रविभागाश्च त्रेतायां तु प्रकीर्त्तिताः।
शान्ताश्च शुष्मिणश्चैव कर्मिणो दुखिनस्तथा॥
ततः प्रवर्त्तमानास्ते त्रेतायां जज्ञिरे पुनः।

वायुपुराण ८, ३३, ४९, ५७, आदि अध्याय।

तस्मान्न गोऽश्ववत् किंचिज्जातिभेदोस्ति देहिनाम्
कार्यभेदनिमित्तेन संकेतः कृत्रिमः कृतः ।

अर्थात्–मनुष्यों में गाय और घोडे जैसा कोई जाति भेद नहीं । यह काम के भेद के लिए बनावटी संकेत किये गये है ।

इतना ही नहीं, विष्णु पुराण (अंश ४,८,१) कहता है—

गृत्समदस्य शौनकश्चातुर्वर्ण्य प्रवर्त्तयिताऽभूत् ।

अर्थात्–गृत्समद के पुत्र शौनक ने चातुर्वर्ण्य व्यवस्था प्रवर्त्तित की ।

इसी पुराण में दूसरी जगह कहा गया है—

भार्गस्य भार्गभूमिः अतश्चातुर्वर्ण्य प्रवृत्तिः । (चतुर्थ अंश) ८,९

अर्थात्–भार्ग से भार्गभूमि उत्पन्न हुए, उन से चातुर्वर्ण्य प्रवर्त्तित हुआ ।

महर्षि जैमिनि का कहना है कि सृष्टि के आदि में पहले चतुर्मुख (ब्रह्मा) ने ब्राह्मण ही बनाए । फिर दूसरे वर्ण उन्हीं ब्राह्मणों के वंश मे अलग–अलग उत्पन्न हुए—

ससर्ज ब्राह्मणानग्रे सृष्ट्यादौ स चतुर्मुखः
सर्वे वर्णाः पृथक् पश्चात् तेषां वंशेषु जज्ञिरे

(पद्म पुराण, उत्कल खण्ड, ३८,४४)

हरिवंश पुराण में भी कहा है—

पुत्रो गृत्समदस्यापि शुनको यस्य शौनकाः ।
ब्राह्मणाः क्षत्रियाश्चैव वैश्याः शूद्रास्तथैव च ।

(२९ अध्याय १५,१९,२०)

अर्थात्- गृत्समद के पुत्र शुनक हुए । शुनक से शौनक कहलानेवाले ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र बहुत से पुत्र उत्पन्न हुए ।

इस के विपरीत बृहदारण्यक उपनिषद् कहती है कि पहले क्षत्रिय उत्पन्न हुए । उन्हीं के वंशज बाद को दूसरे वर्ण हुए । उपनिषद् के शब्द है—

" ब्रह्म वा इदमग्र आसीद् एकमेव तदेकं सन्नव्यभवत् तच्छ्रे—
योरूपमत्यसृजत क्षत्रम् " । (१,४,११)

प्रारम्भ मे वर्ण भेद न होने का पता इस बात से भी लगता है कि उपनिषद्, रामायण और महाभारत आदि प्राचीन ग्रन्थो में किसी भी नाम के साथ शर्मा, वर्मा और गुप्त आदि वर्ण–सूचक शब्द लगे नहीं मिलते ।

महाभारत में कृतवर्मा और महाभाष्य में इन्द्रवर्मा नाम मिलता है। पर वहाँ "वर्मा" वर्ण व्यवस्था का द्योतक नहीं, वरन् वह नाम है जैसे—आजकल श्रीराम में "श्री" रामजीदास में "जी" और भगवानदास में "भगवान" नाम का ही अंश है। वेद मे "शर्म मे यच्छ" अनेक स्थानों पर मिलता है। पर वहाँ "शर्म" नपुंसकलिंगी है, पुल्लिङ्वाची "शर्मा" वेद में कहीं भी नहीं। "सुशर्मा" शब्द में भी वही "सु–शर्म" है; पुल्लिङ्गवाची शर्मा कहीं नहीं। सुष्टु शृणाति इति सुशर्मा राजा विशेषः (दयानन्द) अर्थात् जो दुष्टोंको दण्ड दे (मारे) वही सुशर्मा राजा है। यहाँ सुशर्मा ब्राह्मण नहीं है क्षत्रिय है। देवशर्मा, विष्णुशर्मा और भद्रशर्मा आदि नामों में "शर्मा" शब्द नहीं, वरन् शर्म है। वही संस्कृत व्याकरण के नियम से दीर्घ हो कर शर्मा बन गया है। "शर्मासि मे शर्म यच्छ" में भी शर्मा+ असि नहीं, वरन् शर्म+ असि ही है। न ही यह बात है कि शर्मन्+ असि था जिस में न का लोप असिद्ध है। इस लिए दीर्घ न हो सकेगा। कारण कि यह सूत्र है—"न लोपः सुप्स्वर संज्ञातुग्विधिषु कृति। अष्टा० ८,२,२।

ऐसा जान पड़ता है कि आदि काल मे मनुष्य–समाज गंगोत्री के निकट गंगा–जल के समान निर्मल था। लोग सात्विक, सरल, सदाचारी और शुद्ध–हृदय थे। पहले मनुष्यो की संख्या बहुत कम थी और खान–पान की सामग्री प्रचुर थी। लोग फल–फूल खाकर, सहज में पेट भर लेते थे। कालान्तर मे यह समाज वैसा शुद्ध, निर्व्याज और सरल न रह सका। तब अपनी–अपनी प्रकृति, रुचि और योग्यता के अनुसार लोग विभिन्न कार्य करने लगे। जैसे आज कल नाना प्रकार के व्यवसाय देखने में आते है, वैसे उस समय न थे। उस समय कुछ लोग गाय आदि पशु चराते थे, कुछ शत्रुओं से समाज की रक्षा करते थे और कुछ बालकों को लिखाते-पढ़ाते थे। इस प्रकार ये सब लोग मिलकर एक दूसरे की आवश्यकताओं को पूरा करते थे। जो लोग खेती-बाड़ी करते और पशु चराते थे उनको उस समय की भाषा में वैश्य कहा जाता था। जो शत्रुओं से लड़ते–भिड़ते थे वे क्षत्रिय कहलाते थे और जो पठन-पाठन का काम करते थे उनका नाम ब्राह्मण था। कहने का तात्पर्य यह कि ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य की यह बॉट जन्म पर नहीं, काम पर थी। वर्तमान हिन्दू-समाज में जो वर्ण–भेद है वह काम की बाँट नहीं काम करनेवालों की बॉट है। इस में

व्यक्ति की योग्यता का विचार न करके केवल जन्म से किसी को ब्राह्मण का काम और किसी को भंगी का काम करने पर वाध्य किया जाता है। इसलिए उस पुरातन काल से यह बिलकुल उलटा है। जैसे-यूरोप और अमेरिका में कोई अध्यापक, कोई सैनिक और कोई व्यापारी है और वह जन्म से नहीं। वैसे ही उस काल में ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य आदि सांकेतिक नाम थे। काम की बाँट होने पर भी उन लोगों में ऊँच-नीच का कोई भाव उत्पन्न न हुआ था। अतएव वेद कहता है—

अज्येष्ठासो अकनिष्ठास एते संभ्रातरो वावृधुः सौभगाय।

ऋग्वेद ५-६०-५

अर्थात्-तुममें न कोई उच्च है और न ही कोई नीच। तुम सब भाई हो। इसलिए भाइयों की भाँति अपने अपने भाग में उन्नतिशील बनो।

विभिन्न काम करने वाले लोग एक ही घर में इकट्ठे रहते थे। वेद कहता है—

कारुरहं ततो भिषगुपलप्रक्षिणी नना।
नानाधियो वसूयवोऽनु गा इव तस्थिमेन्द्रायेन्दो परिस्रव।

(ऋग्वेद ९-११२-३)

अर्थात्—मै एक कवि हूँ, मेरा पिता वैद्य है, मेरी माता चक्की से अनाज पीसती है। विभिन्न व्यवसायों में लगकर हम लोग धन और आनन्द खोजते है, जिस प्रकार गौएँ मैदानों में अपना-अपना भोजन खोजती है।

आज के हिन्दू-समाज में विभिन्न वर्णों और जातियों के लोग परस्पर रोटी-बेटी-व्यवहार नहीं करते। इस से उनका धर्म डूब जाता है और उनकी जाति चली जाती है। पर उस पुरातन काल में ऐसी बात न थी। व्यवसाय के कारण विभिन्न नामों से पुकारे जाने पर भी वे आपस में बेटी-व्यवहार करते थे। ऐसे विवाहों के कुछ उदाहरण आगे दिये जाते है। पहले अनुलोम अर्थात् कथित ऊँचें वर्ण के पुरुष का कथित नीच वर्ण की स्त्री के साथ विवाह लीजिए:—

१. शुक्राचार्य ब्राह्मण ने राजा प्रियव्रत क्षत्रिय की पुत्री उर्जस्वती से विवाह किया

२. शृङ्गी ब्राह्मण ने राजा लोमपाद की पुत्री (और राजा दशरथ की गोद ली हुई पुत्री) शान्ता से विवाह किया।

३. यमदग्नि ब्राह्मण ने सूर्यवंशी राजा प्रसेनजित की कन्या रेणुका से विवाह किया। इन्हीं के पुत्र परशुराम थे।

४. ऋचीक ब्राह्मण ने राजा गाधि क्षत्रिय की कन्या सत्यवती से विवाह किया।

५. पिप्पलाद ब्राह्मण ने क्षत्रिया पद्मा से विवाह किया। (शिवपुराण, उत्तरार्द्ध, अध्याय ३०)

६. अगस्त्य ब्राह्मण ने क्षत्रिया लोपामुद्रा से विवाह किया।

७. दयिक्व ब्राह्मण ने राजा जानश्रुति क्षत्रिय की कन्या से।

८. सौभरि ब्राह्मण ने राजा मांधाता क्षत्रिय की कन्या से।

९. विश्वामित्र ने देवलोक की अप्सरा मेनका से शकुन्तला उत्पन्न की। शकुन्तला का विवाह राजा दुष्यन्त से हुआ। उन का पुत्र भरत हुआ। इसी भरत के नाम पर इस देश का नाम भरतखण्ड पड़ा। (देवीभागवत पुराण, स्कंध ४)

१०. भीमसेन ने हिडम्बा नाम की राक्षसी से विवाह किया। उनका पुत्र घटोत्कच हुआ।

अब प्रतिलोम अर्थात् कथित नीच वर्ण के पुरुष के उच्च वर्ण की स्त्री के साथ विवाह के उदाहरण सुनिए:—

१. राजा प्रियव्रत क्षत्रिय ने विश्वकर्मा ब्राह्मण की बेटी बर्हिष्मती से विवाह किया।

वायु पुराण अध्याय २८ मे लिखा है कि कर्दम ऋषि की कन्या काम्या (विष्णु पुराण मे इस का नाम कन्या लिखा है) राजा प्रियव्रत (क्षत्रिय) को ब्याही गई। काम्या से प्रियव्रत के दस पुत्र और दो पुत्रियाँ हुई। इन्हों-ने क्षत्रिय वंश का विस्तार किया।

२. राजा नीप क्षत्रिय ने शुक्राचार्य ब्राह्मण की पुत्री कृत्वी से विवाह करके ब्रह्मदत्त को जन्म दिया (भागवत पुराण स्कंध ९।२१) इसी कुल मे मुद्गल उत्पन्न हुआ जिस के नाम पर ब्राह्मणों का मौद्गल्य गोत्र चला।

३. राजा ययाति क्षत्रिय ने शुक्राचार्य ब्राह्मण की पुत्री देवयानी से विवाह किया। इन के पाँच पुत्र हुए।

४. प्रमत्ता ब्राह्मणी का विवाह एक नाई के साथ हुआ। इन के पुत्र मतङ्ग महामुनि थे। (महाभारत, अनुशासन पर्व, अध्याय २२)

५. कर्दम ऋषि की कन्या अरुन्धती और वेश्या* के पुत्र वसिष्ठ मुनि का विवाह हुआ। इनके पुत्र का नाम शक्तृ या शक्ति था। इस का विवाह चाण्डाल कन्या अदृश्यन्ती से हुआ। इन का पुत्र पराशर था। देखो लिङ्गपुराण, पूर्वार्द्ध, अध्याय ६३ और शिवपुराण पूर्वार्द्ध खण्ड १ अध्याय १३)। पराशर ने धीवर कन्या सत्यवती से वेदव्यास को उत्पन्न किया। वेदव्यास से कौरव और पाण्डव हुए।

यह सूची और भी लंबी की जा सकती है। श्रीयुत् परमेष्ठीदास जैन, 'न्यायतीर्थ' ने अपने "विजातीय विवाह मीमांसा" नामक ग्रन्थ में जैन साहित्य से भी आन्तर्वर्णीय विवाहों के बहुत से उदाहरण दिए हैं। उन में से कुछ आगे उद्धृत किए जाते हैं:—

१. राजा श्रेणिक (क्षत्रिय) ने ब्राह्मण-कन्या नन्दश्री से विवाह किया था और उस से अभय कुमार नाम का पुत्र उत्पन्न हुआ था।—भवतो विप्र कन्यायां सुतोऽभूदभयाह्वयः)। (उत्तर पुराण, पर्व ७४, श्लोक ४२३-२९)

२. राजा श्रेणिक (क्षत्रिय) ने अपनी पुत्री धन्यकुमार वैश्य को दी थी। (पुण्याश्रव कथा कोष)।

३. राजा जयसेन (क्षत्रिय) ने अपनी पुत्री पृथ्वी सुन्दरी प्रीतिंकर (वैश्य) को दी थी। (उत्तर पुराण, पर्व ७६, श्लोक ३४६-४७)

४. भविष्यदत्त (वैश्य) ने अरिंजय (क्षत्रिय) राजा की पुत्री भविष्यानुरूपा से विवाह किया था और हस्तिनापुर के राजा भूपाल की कन्या स्वरूपा (क्षत्रिया) को भी ब्याहा था। (पुण्याश्रव कथा कोष)

---

* **उतासि मैत्रावरुणो वसिष्ठोर्वश्या ब्रह्मन् मनसोऽधि जातः।**

(ऋ० ७।३३।११)

अर्थात्—मित्रावरुण के औरस और स्वर्ग की अप्सरा उर्वशी के गर्भ से वसिष्ठ का जन्म हुआ।

गणिका-गर्भ-सम्भूतो वसिष्ठश्च महामुनिः
तपसा ब्राह्मणो जातः संस्कारस्तत्र कारणम्।

भविष्यपुराण, १,४२,४९

५. चारुदत्त (वैश्य) की पुत्री गन्धर्वसेना वसुदेव (क्षत्रिय) को ब्याही थी। (हरिवंश पुराण)

६. उपाध्याय (ब्राह्मण) सुग्रीव और यशोग्रीव ने भी अपनी दो कन्याएँ वसुदेव कुमार (क्षत्रिय) को ब्याही थीं। (हरिवंश पुराण)

७. महाराजा उपश्रेणिक (क्षत्रिय) ने भील-कन्या तिलकवती से विवाह किया और उस से उत्पन्न पुत्र चिलार्ती राज्याधिकारी हुआ। (श्रेणिक-चरित्र)

८. अग्निभूत स्वयं ब्राह्मण था। पर उसकी एक स्त्री ब्राह्मणी थी और एक वैश्य थी। यथा:—

विप्रस्तत्राग्निभूताख्यस्तस्यैका ब्राह्मणी प्रिया।
परा वैश्य सुता, सूनुर्ब्राह्मण्यां शिवभूतिभाक्।
दुहिता चित्रसेनाऽऽख्या विट्सुतायामजायत।

(उत्तरपुराण पर्व ७५, श्लोक ७१-७२)

९. अग्निभूत की वैश्य पत्नी से चित्रसेना कन्या हुई और वह देवशर्मा ब्राह्मण से ब्याही गई। (उत्तर पुराण, पर्व ७५ श्लोक ७३)

१०. राजा धनपति (क्षत्रिय) की कन्या पद्मा को जीवंधर कुमार (वैश्य) ने ब्याहा था। (क्षत्रचूड़ामणि, लम्ब ५, श्लोक ४२—४९)

११. नागकुमार ने तो वेश्या-पुत्रियों से भी विवाह किया था। फिर भी उन्होंने दिगम्बर मुनि की दीक्षा ग्रहण की थी (नाग कुमार चरित्र) इतना होने पर भी वे जैनियों के पूज्य रह सके।

१२. जीवंधर कुमार क्षत्रिय थे। उन्हों ने वैश्रवणदत्त वैश्य की पुत्री सुरमजरी से विवाह किया था (उत्तर पुराण, पर्व ७५ श्लोक ३४८—३७२)। इसी प्रकार कुमारदत्त वैश्य की कन्या गुणमाला का भी विवाह जीवंधर स्वामी के साथ हुआ था। (उत्तर० पर्व ७५)। इस के अतिरिक्त जीवंधर ने धनपति (क्षत्रिय) राजा की कन्या पद्मोत्तमा को विवाहा था।

और लीजिये—चन्द्रगुप्त ने एक ब्राह्मण-कन्या से विवाह किया। उस से अशोक के पिता का जन्म हुआ। अशोक ने भी जाति भेद को तोड़ कर विवाह किया। उस का एक वैश्य-कन्या से विवाह हुआ। हर्ष ब्राह्मण था। पर उसने अपनी लड़की एक क्षत्रिय से ब्याह दी। विक्रमादित्य का यज्ञाचार्य व्याधकर्मा एक व्याध की सन्तान था जिस का विवाह एक ब्राह्मणी से हुआ था। कृष्णभट्ट ब्राह्मण था।

पर उसका प्रेम एक चाण्डाल-कन्या से हो गया। इसी ने "मातङ्ग पन्थ" चलाया।

यही नहीं कि पूर्वकाल में आन्तर्वर्णीय-विवाहो पर कोई रुकावट न थी, वरन् एक वर्ण का मनुष्य यदि दूसरे वर्ण का व्यवसाय करता था तो उसे बुरा नहीं समझा जाता था। अतएव हम देखते है कि द्रोणाचार्य और कृपाचार्य दोनों ब्राह्मण थे, पर वे महाभारत के युद्ध में लडे थे, यद्यपि लड़ना ब्राह्मण का नहीं, वरन् क्षत्रिय का काम माना गया है। इसी प्रकार, कर्ण सूतपुत्र कहलाते थे। सूत का काम लड़ाई में लड़ना नहीं। पर दुर्योधन ने कर्ण को अपना सेनापति बनाया था। विदुर दासी-पुत्र होकर भी राज-मंत्री का कार्य करते थे। स्वयं श्रीकृष्ण क्षत्रिय थे। पर उन्होने गीता का धर्मोपदेश किया, जो कि क्षत्रिय का नहीं, वरन् ब्राह्मण का काम है। हम देखते है, इस व्यवसाय-बंदी को तोड़ने के लिए कभी किसी ने इन लोगों की निन्दा नहीं की।

जान पड़ता है कि महाभारत-काल में ही कई पोथियाँ और धर्मशास्त्र ऐसे बन गये थे जो आन्तर्वर्णीय विवाहो का निषेध करते थे। ऐसी दशा में जनता के लिए बड़ी कठिनाई हो गई होगी कि किसकी व्यवस्था मानें और किसकी न मानें। इस उलझन को सुलझाने के लिए ही महाभारत मे कहा गया है—
* "तर्क अनिश्चित है, श्रुतियों का आपस में मतभेद है, कोई भी एक ऐसा स्मृतिकार ऋषि नहीं जिस का मत प्रमाण माना जाता हो। धर्म का तत्त्व गहरी गुफ़ा में छिपा है; इस लिए वही पंथ ठीक है, जिस से कोई एक महापुरुष चला है।"

हम ने ऊपर एक नहीं, अनेक ऐसे महाजनों के नाम दे दिए हैं जिन्होंने जाति-भेद को तोड़ा था।

---

* **तर्कोऽप्रतिष्ठः श्रुतयो विभिन्ना नैको ऋषिर्यस्य मतं प्रमाणम्।**
धर्मस्य तत्त्वं निहितं गुहायां महाजनो येन गतः स पंथाः॥
महाभारत वनपर्व अध्याय ३१३, श्लोक १७

तीसरा परिच्छेद

शूद्र कौन है ?

अब तक हम ने ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य की ही चर्चा की है। हम ने बताया है कि विभिन्न प्रकार के व्यवसाय करने से एक ही वंश के लोग अध्यापक (ब्राह्मण) सैनिक (क्षत्रिय) और वणिक् (वैश्य) कहलाने लगे थे। पर शूद्रो के संबंध मे विद्वानों का मत भेद है। कुछ लोगोंका कहना है कि आर्य लोग बाहर से भारत में आए थे और उन्होंने यहाँ के जिन आदि-वासियो को जीत कर अपना दास या सेवक बनाया उन्हीं का नाम शूद्र है। उनका यह भी कहना है कि आर्य लोग गोरे और शूद्र काले रंग के थे। पर यह मत अब खण्डित हो चुका है। अब अधिकांश विद्वान् आर्यों को बाहर से आया आक्रमणकारी नहीं मानते। वेद में किसी ऐसी घटना का उल्लेख नहीं मिलता जो आर्यों के बाहर से भारत में आने को प्रमाणित करती हो।

प्रो० पी० टी० श्रीनिवास आयंगर[1] लिखते है:—

" जिन मन्त्रों मे आर्य, दास और दस्यु शब्द आए है उनकी सावधानी से परीक्षा करने पर पता लगता है कि ये शब्द वंश के नहीं वरन् धर्म-मत के द्योतक है। ये शब्द सब से अधिक ऋग्वेद संहिता में मिलते है। वहाँ "आर्य" शब्द मन्त्रों में ३४ बार आया है। इन मंत्रों में सब मिला कर १,५३,९७२ शब्द है। इस शब्द का इतनी थोड़ी बार आना ही इस बात का प्रमाण है कि जो जातियाँ अपने को आर्य कहती थीं वे आक्रमणकारी नहीं थीं जिन्होने देश को जीत कर लोगों का नाश कर दिया हो। कारण यह कि आक्रमण करने वाली जाति स्वभावतः ही अपनी सफलताओं की निरन्तर डींग हाँका करती है।"

---

१. माधवाचार्य के भाष्य सहित यजुर्वेद।

इसी प्रकार प्रोफेसर डी० एस० त्रिवेद[1] कहते है कि "वेद मे नदियों को 'मेरी गंगा, मेरी यमुना और मेरी सरस्वती' कहकर संबोधन किया गया है। कोई भी विदेशी, नदी को ऐसे परिचित और प्रेम-भरे ढंग से संबोधन नहीं करता। जबतक कि बहुत दिन वहाँ रहने से उसमें उसके प्रति प्रेम न उत्पन्न हो गया हो।"

आर्य और शूद्र का भेद शरीर की रंगत के कारण भी नहीं माना जा सकता। कारण यह कि राम और कृष्ण जैसे आर्यों के अनेक महापुरुष गोरे नहीं, श्याम वर्ण के थे।

वेद में अनेक स्थानों पर "आर्य" को दास, दस्यु और शूद्र का प्रतियोगी कहा है। ऋग्वेद[2] एक जगह कहता है—हे इन्द्र, आर्यों को पहचान और उनको जो दस्यु है। व्रतहीनों को शासन मे रखकर यजमान के वश मे ला। इसी प्रकार दूसरी[3] जगह कहा है—हे इन्द्र, जो हमें मारना या दास बनाना चाहता है, वह चाहे दास हो और चाहे आर्य, उसके शस्त्र को हम से दूर-परे हटा दे। तीसरी[4] जगह कहा है—हे धर्मात्माओं के पति, रुकावट डालनेवाले आर्यों और रुकावट डालनेवाले दासों को मारो, हमारे शत्रुओं को परे हटाओ।

इसी प्रकार अथर्व वेद (४-२०-४) में कहा है—उस ओषधि को सहस्रों नेत्रोंवाले देव ने मेरे दाहिने हाथ पर रखा है। उस से मै सब को देखता हूँ, चाहे वह शूद्र है और चाहे आर्य।

1. The Original Home of Aryans–by D. S. Triveda—Annual of the Bhandarkar Oriental Research Institnde Vol. XX. P. 62.

२. **विजानीह्यार्यान् ये च दस्यवो।**
बर्हिष्मते रन्धया शासदव्रतान्। ऋग्वेद १-५१-८

३. **अन्तर्यच्छ जिघांसतो, वज्रमिन्द्राभिदासतः।**
दासस्य वा मघवन्नार्यस्यवा, सनुतर्यवया वधम्।
ऋग्वेद १०-१०२-३

४. **हतो वृत्राण्यार्या, हतो दासानि सत्पती।**
हतोविश्वा अपद्विषः। ऋ. ६-६०-६

फिर वही वेद दूसरी जगह कहता है—मुझे देवताओं में प्यारा बना, मुझे राजाओं मे प्यारा बना। चाहे शूद्र हो या आर्य, उन सब का मुझे प्यारा बना।[1]

इस से स्पष्ट है कि आर्य और शूद्र आपस मे प्रतियोगी हैं। अर्थात् जो आर्य है वह शूद्र नहीं।

ऋग्वेद में एक जगह कहा है—अपनी भुजा में वज्र लिए और अपने बल पर भरोसा किए वह दासो के दुर्गों को तोड़ता हुआ विचरता है। हे वज्रिन्, पहचानता हुआ तू दस्यु के लिए शस्त्र को फेंक। हे इन्द्र, आर्यों के विजय और यश को बढ़ा।[2]

पर इन से यह स्पष्ट नहीं कि शूद्र, दास या दस्यु और आर्य का यह भेद वंशगत या जातिगत था। इनका भेद सांस्कृतिक और आचारगत ही जान पड़ता है। अन्यथा "**कृण्वन्तो विश्वमार्यम्**" (ऋ० ९-६३-५) अर्थात् सारे विश्व को आर्य बनाने का जो उपदेश वेद देता है वह साध्य नहीं हो सकता। हीन-चरित्र मनुष्य को तो सच्चरित्र बनाया जा सकता है पर एक मंगोल जाति के मनुष्य को यहूदी या आर्य जाति का नहीं बनाया जा सकता। आर्य उन लोगो को कहते थे जो सामाजिक नियमो का पालन करते और वैदिक धर्म के अनुयायी थे। इन के विपरीत दास, दस्यु और शूद्र वे लोग जान पड़ते है जो सामाजिक नियमों का पालन नहीं करते थे, जो अव्रती या वेद-विरोधी थे। महाभारत आदि परवर्ती ग्रन्थ भी इसी बात का समर्थन करते है।

महाभारत के शान्ति पर्व में भरद्वाज के प्रश्न का उत्तर देते हुए भृगु ने कहा था कि ब्राह्मणों का वर्ण (रंग) सफेद है, क्षत्रियो का लाल, वैश्यो का पीला

---

१ प्रियं मा कृणु देवेषु, प्रियं राजसु मा कृणु।
प्रियं सर्वस्य पश्यत उत शूद्र उतार्ये।

अथर्व १९-६२-१

पदपाठ में इस मंत्र का "आर्यः आर्याय, आर्ये" पाठ स्पष्ट कर दिया है।

२. स जातुभर्मा श्रद्दधान ओजः पुरो विभिन्दन्नचरद् वि दासीः।
विद्वान् वज्रिन् दस्यवे हेतिमस्य, आर्यं सहोवर्धया द्युम्नमिन्द्र।

ऋ. १-१०३-३

और शूद्रों का काला। इसपर भरद्वाज ने कहा कि यदि रंगत में ही वर्ण है तब तो सभी वर्णों मे वर्ण-सकर पाये जाते है। अर्थात् बहुतेरे ब्राह्मण काले है, बहुतेरे शूद्र गोरे है, अनेक क्षत्रियो का रंग पीला है और बहुतेरे वैश्य लाल रंग के है। इस पर भृगु ने उत्तर दिया[1]—

एक वर्ण की दूसरे वर्ण से कोई विशेषता नहीं। जगत में ब्रह्मा ने पहले सब ब्राह्मण ही बनाए थे। बाद को वे ब्राह्मण विभिन्न कर्म करने के कारण विभिन्न वर्ण के कहलाने लगे। जो ब्राह्मण काम और भोग मे लिप्त, तेज तबियत, क्रोधी, साहसी, और अपना ब्राह्मण का कर्म त्याग करके राजसी लाल रग के बन गये, वे क्षत्रिय कहलाने लगे। इसी प्रकार जो ब्राह्मण गो आदि का पालन और खेती-बाड़ी करने लगे वे अपने ब्राह्मण धर्म का त्याग करके पीले रंगवाले ब्राह्मण वैश्य कहलाने लगे। इसी प्रकार जो ब्राह्मण हिंसक, झूठे और लोभी बन गये और सब प्रकार के काम करके रोटी कमाने लगे, वे शौच या स्वच्छता को छोड़नेवाले काले रंग के ब्राह्मण शूद्र कहलाने लगे। इन कर्मों से ब्राह्मण ही अलग-अलग वर्ण के बन गये। इस लिए उनके लिए यज्ञ-क्रिया और धर्म का निषेध नहीं। इन चारों वर्णों का वेद

---

१. नविशेषोऽस्ति वर्णानां सर्वं ब्राह्ममिदं जगत्।
ब्रह्मणा पूर्वसृष्टंहि कर्मभिर्वर्णतां गतम्॥ १०॥
कामभोगप्रियास्तीक्ष्णाः क्रोधनाः प्रिय-साहसाः।
त्यक्तस्वधर्मा रक्तांगास्ते द्विजाः क्षत्रतां गताः॥ ११॥
गोभ्योवृत्ति समास्थाय पीताः कृष्युपजीविनः।
स्वधर्मान्नानुतिष्ठन्ति ते द्विजाः वैश्यतां गताः॥ १२॥
हिंसानृतप्रियाः लुब्धाः सर्वकर्मोपजीविनः।
कृष्णाः शौचपरिभ्रष्टास्ते द्विजाः शूद्रतां गताः॥ १३॥
इत्येतै : कर्मभिर्व्यस्ताः द्विजा वर्णान्तरं गताः।
धर्मो यज्ञक्रिया तेषांनित्यं न प्रतिषिध्यते॥ १४॥
इत्येते चतुरो वर्णा येषां ब्राह्मी सरस्वती।
विहिता ब्रह्मणा पूर्वं लोभादज्ञानतां गता॥ १५॥

में अधिकार है। ब्रह्मा का यही पूर्व विधान है। लोभ के कारण ही लोगों में अज्ञान छा गया है।

महाभारत (शान्तिपर्व, अध्याय १८९) में भरद्वाज भृगु से पूछते है कि ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र कैसे होते है। इस पर भृगु ने उत्तर दिया है—

जो व्यक्ति विधिपूर्वक सुसंस्कृत, पवित्र–साफ, वेद के अध्ययन मे लगा हुआ, षट्कर्मवाला, सदाचारी, विद्याशाली, गुरुप्रिय, नित्यव्रती और सत्यपरायण है वही ब्राह्मण है। जिस मे सत्य, दान, मैत्री, आनृशंस्य, लज्जा, क्षमा, और तप है वही ब्राह्मण है। इसी सिलसिले में भृगु आगे कहते है कि जो नित्य सब तरह की वस्तुएँ खाता है, जो अशुचि (मैला) है, जो सब प्रकार के अच्छे-बुरे कर्म करता है, जो वेद को छोड़ कर आचार–हीन हो गया है, वही शूद्र है।[1]

इतना ही नहीं, भृगु यह भी कहते है कि यदि ऊपर कहे ब्राह्मण के लक्षण शूद्र के यहाँ उत्पन्न हुए बालक मे पाए जायँ तो वह बालक शूद्र नहीं कहला सकता और यदि ये लक्षण जन्म के ब्राह्मण मे न हो तो वह ब्राह्मण नहीं।[2]

इसी प्रकार वनपर्व मे कहा है कि जिन्हों ने क्रोध और मोह छोड़ दिया है उन्हें देवता लोग ब्राह्मण कहते है। जो जितेन्द्रिय है, धर्मपरायण है, पवित्र है, स्वाध्याय मे लगे है, जिन्होंने काम और क्रोध को जीत लिया है उन्हें देवता लोग ब्राह्मण कहते है (अध्याय २०५।३३–३६)।

इसी वनपर्व मे युधिष्ठिर कहते है कि चरित्र से ही मनुष्य ब्राह्मण बनता है। अच्छे चरित्र से सभी लोग ब्राह्मण हो सकते है; शूद्र के घर जन्म लेने वाले व्यक्ति का भी चरित्र यदि अच्छा है तो वह ब्राह्मणत्व प्राप्त करता है।[3]

---

१. सर्वभक्ष-रतिर्नित्यं सर्वकर्मकरोऽशुचिः।
त्यक्तवेदस्त्वनाचारः स वै शूद्र इति स्मृतिः। शान्ति पर्व।

२. शूद्रे चैतद्भवेल्लक्ष्यं द्विजे चैतन्न विद्यते।
न वै शूद्रो भवेच्छूद्रो ब्राह्मणो ब्राह्मणो न च।

३. सर्वोऽयं ब्राह्मणो लोके वृत्तेन तु विधीयते।
वृत्ते स्थितस्तु शूद्रोऽपि ब्राह्मणत्वं नियच्छति। अनु० १४३, ५१

सदाचार और कर्म से ही शूद्र[1] ब्राह्मण होता है और वैश्य क्षत्रिय होता है। सत्कर्म के फल से आगम-संपन्न शूद्र संस्कृत हो कर द्विजत्व प्राप्त करता है।[2] ब्राह्मण भी बुरे चरित्र और सर्व-संकर भोजन करने से ब्राह्मणत्व से गिर कर शूद्र[3] हो जाता है। धर्म[4] की सहायता से शूद्र भी ब्राह्मण होता है और धर्म से गिर कर ब्राह्मण भी शूद्र हो जाता है। कुल या वीर्य से कोई ब्राह्मण नहीं होता। चाण्डाल में भी यदि वृत्त हो तो हे युधिष्ठिर, वह ब्राह्मण है[5]। मनु भी एक जगह कहता है कि शूद्र ब्राह्मण बन सकता है और ब्राह्मण शूद्र।[6] अत्रि स्मृति कहती है—शराब और मांस बेचनेवाला ब्राह्मण शूद्र कहलाता है।[7]

ऐसे ही और भी अनेक प्रमाण मिलते है। जो पाठक इस विषय में अधिक प्रमाण देखना चाहे वे श्रीमत् स्वामी समाविप्रकाश आरण्य (बहरपुर जिला फ़रीद-पुर) की बंगला पुस्तक " जातिकथा " देखे। इन से पता लगता है कि शूद्र कोई जाति या वंशगत नाम न था। वरन् विशेष कर्म करनेवाले या विशेष गुण और स्वभाव के मनुष्य को ही शूद्र कहा जाता था। विद्वद्वर डा. भीमराव अम्बेडकर अपनी अँगरेजी पुस्तक " शूद्र कौन थे " मे निम्न लिखित परिणामों पर पहुँचे है—

---

१. एभिस्तुकर्मभिर्देवि शुभैराचरितैस्तथा।
शूद्रो ब्राह्मणतां याति वैश्यः क्षत्रियतां व्रजेत्॥ अनु० १४४, २६

२. एतैः कर्मफलैर्देवि न्यूनजातिकुलोद्भवः।
शूद्रोऽप्यागमसंपन्नो द्विजो भवति संस्कृतः। अनु० ४६

३. ब्राह्मणोवाऽप्यसद्वृत्तः सर्वं संकर भोजनः।
ब्राह्मण्यं स समुत्सृज्य शूद्रो भवति तादृशः। ४४

४. ब्राह्मणो वा च्युतो धर्माद्यथा शूद्रत्वमश्नुते। अनु० ५९

५. न कुलेन न जात्या च क्रियाभिर्ब्राह्मणो भवेत।
चाण्डालोऽपि हि वृत्तस्थो ब्राह्मणः स युधिष्ठिर॥ महाभारत

६. शूद्रोब्राह्मणतामेतिब्राह्मणश्चैति शूद्रताम्।
क्षत्रियाज्जातमेवं तु विद्याद्वैश्यात्तथैव च॥ मनु. १०-६५

७. विक्रेता मधुमांसानां स विप्रः शूद्र उच्यते। श्लोक ३७७

(१) शूद्र सूर्यवंशी आर्य थे ।

(२) एक समय था जब आर्यों में केवल तीन ही वर्ण थे, अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य ।

(३) शूद्र कोई अलग वर्ण न था । वे भारतीय आर्य समाज मे क्षत्रिय वर्ण के ही एक भाग माने जाते थे ।

(४) शूद्र राजाओं और ब्राह्मणों मे निरन्तर झगड़ा रहता था । इसमें ब्राह्मणों को अत्याचार और अपमान सहन करने पड़ते थे ।

(५) इन अत्याचारों और कष्टों के कारण ब्राह्मणों मे शूद्रों के प्रति घृणा उत्पन्न हो गई । इससे ब्राह्मणों ने शूद्रो का उपनयन कराने से इनकार कर दिया ।

(६) उपनयन न होने से शूद्र, जो मूलतः क्षत्रिय थे, सामाजिक रूप से पतित हो गये और उनका पद वैश्यों से भी नीचे चला गया । इस प्रकार उन का चौथा वर्ण हो गया ।

शूद्र के गुण-कर्म के संबंध मे भी सब विद्वानों का एक मत नहीं । आर्य समाज के कुछ विद्वान् उसे शूद्र समझते है जो लिखाने-पढ़ाने पर भी कुछ न सीख सके । जो मूर्ख और भोंदू हो, जो केवल शारीरिक श्रम कर सके । जो बौद्धिक कार्य के अयोग्य हो । कांगड़ी गुरुकुल के स्वर्गीय आचार्य रामदेव जी का यही मत था । इस के विपरीत कुछ विद्वान् लोहार, बढ़ई, कुम्भकार आदि शिल्पियों को भी शूद्र कहते है ।[1] इतना ही नहीं, कुछ लोग—" **शुक्षिप्रं उन्दति** " और " **तपसे शूद्रं** " के प्रमाण से उसे शूद्र कहते है जो शीघ्र पसीने से गीला होता है, अर्थात् जो कठिन श्रम करता है ।

मनुस्मृति आदि में ब्राह्मण के लिए शूद्र राजा[2] के राज्य में रहने का जो निषेध है, उस से यह प्रमाणित होता है कि " शूद्र " लोग राजा भी होते थे । मनु के समय में शूद्रों के यहाँ दास[3] या. गुलाम होते थे । शूद्रों में कुछ लोग

१. यजुर्वेद का स्वाध्याय, अध्याय ३०, पुरुषमेध–प्रकरण, पृष्ठ १६७, लेखक श्रीपाद दामोदर सातवलेकर ।
और मनु. ४–२१५ और मनु ३–६३

२. **न शूद्र राज्ये निवसेन्नाधार्मिक जनावृते ॥** मनु. ४—६१

३. **दास्यां वा दासदास्यां वा यः शूद्रस्य सुतो भवेत्** । मनु. ९—१७९

अच्छे धनवान् भी थे। क्योंकि मनु कहता है कि क्षत्रिय अपनी आपत्ति को भुजा के पराक्रम से, वैश्य तथा शूद्र धन देकर और ब्राह्मण होम करके दूर करें।[1]

ऊपर दिए प्रमाणों से यद्यपि पता लगता है कि "शूद्र" किसी अलग जाति का नाम नहीं था, वरन् गुण, कर्म, स्वभाव के कारण कोई व्यक्ति ब्राह्मण और कोई शूद्र कहलाता था, तो भी अनेक स्थलों पर ऐसे भी वचन मिलते हैं जिनसे झलकता है कि शूद्र कोई पृथक् जाति थी। उदाहरणार्थ अष्टाध्यायी अध्याय ४, पाद १, सूत्र ४ मे "शूद्रा" का अर्थ—एक शूद्रस्त्री और "शूद्री" का अर्थ शूद्र की स्त्री मिलता है। महाभाष्यकार[2] के समय मे भी ब्राह्मण को बनाने वाला तप, वेद और योनि (जन्म) तीनों को माना जाता था। आचार्य क्षितिमोहन सेन[3] लिखते है कि "कलकत्ते के छपे हुए महाभारत के नवे अध्याय मे बहुत-सी नदियों और जनपदों के नाम है। उस जगह आभीरादि के पश्चात् भीर-दरद, काश्मीरादि के साथ 'शूद्र' का भी उल्लेख है—**शूद्रभीराश्च दरदा: काश्मीरा: पशुभि: सह** (भीष्मपर्व ९।६७)। द्रोणपर्व मे शिवियों और शूरसेनों के साथ शूद्रों का भी उल्लेख है—**शिवय: शूरसेनाश्च मलयै.सह** (६,६)। इसी प्रकार पुराणों में अनेक स्थानों पर आभीर आदि के साथ 'शूद्र' का भी उल्लेख पाया जाता है।"

---

१. **क्षत्रियो बाहुवीर्येण तरेदापद्मात्मन: ॥**
धनेन वैश्यशूद्रौ तु जपहोमैर्द्विजोत्तम: ॥ मनु ११।३४

२. **सर्वे एते शब्दा: गुणसमुदायेषु वर्तन्ते, ब्राह्मण: क्षत्रियो, वैश्य: शूद्र: इति।**
आतश्च गुणसमुदाये एवं ह्याह—तप: श्रुतं च योनिश्च एतद् ब्राह्मणकारणम्।
तप: श्रुताभ्यां यो हीनो जाति ब्राह्मण एव स:॥ यथा गौर; शुच्याचार:, पिङ्गल, कपिलकेश: इत्येतान् अपि अभ्यन्तरान् ब्राह्मण्ये गुणान् कुर्वन्तीति।
पातञ्जल महाभाष्य, ५-१-११५ (तेन तुल्यं क्रियावेद्वति:)

३. "भारतवर्ष में जातिभेद," पृष्ठ २०-२१। प्रकाशक, अभिनव भारती ग्रन्थमाला, १७१-ए, हरिसन रोड, कलकत्ता।

इस से टपकता है कि भीर, दरद, आदि की भांति शूद्र भी कोई अलग मानव-श्रेणी रही होगी। बाद को ये सब आर्यों में अन्तर्भूत हो गईं।

इस गड़बड़ का कारण यह जान पड़ता है कि स्मृतियाँ और शास्त्र, जिस रूप में ये इस समय मिलते हैं, उस रूप में वे एक समय में नहीं लिखे गये थे। मूल लेखक ने अपने ग्रन्थ में जो कुछ लिखा, बाद को उस में दूसरे लोग मिलावट करते गये। कहते हैं, महाभारत मूल केवल चार सहस्र श्लोकों का था। पर आज उस में चार लाख से भी अधिक श्लोक हैं। प्राचीन काल में प्रिण्टिङ्ग प्रेस नहीं था। पुस्तकें हाथ से लिखी जाती थीं। इसलिए उनमें मिलावट करना बहुत सरल था। कहने का तात्पर्य यह कि हमारी स्मृतियाँ और धर्म-शास्त्र किसी एक समय की सामाजिक व्यवस्था का चित्र नहीं, वरन् इन में विभिन्न कालों के रीति-रिवाजों और सामाजिक नियमों का वर्णन है। यदि मनुस्मृति को ही देखा जाय तो उस में भी अनेक परस्पर विरोधी बाते मिलती हैं। एक जगह मांस-मदिरा[1] के सेवन को पाप बताया है तो दूसरी जगह उस मे कोई दोष[2] नहीं माना। एक जगह ब्राह्मण गुण-कर्म से माना है तो दूसरी जगह जन्म[3] से। एक ही लेखक दो परस्पर विरोधी बाते नहीं कह सकता। इसलिए मानना पड़ेगा कि मनुस्मृति किसी एक समय में, किसी एक व्यक्ति ने नहीं लिखी, वरन् विभिन्न कालों के लोग अपने-अपने समय में उस में

---

१. **वर्जयेन्मधु मांसं च**। मनु. २। १७७ और

न कृत्वा प्राणिनां हिंसां मांसमुत्पद्यते क्वचित्।
नच प्रणिवधः स्वर्ग्यस्तस्मान्मांसं विवर्जयेत्॥ मनु. ५-४८

अर्थात्-प्राणियों की हिंसा किए बिना मांस नहीं मिल सकता और प्राणियों को मारने से कभी स्वर्ग नहीं मिलता। इस लिए मांस न खाए।

२. **न मांसभक्षणे दोषो न मद्ये न च मैथुने।**
प्रवृत्तिरेषा भूतानां निवृत्तिस्तु महाफला॥ मनु० ५-५६

३. **उत्तमांगोद्भवाद् ज्यैष्ठ्याद्ब्रह्मणश्चैवधारणात्**
सर्वस्यैवास्यसर्गस्य धर्मतो ब्राह्मणः प्रभुः॥ मनु० १-९३ और ९९

श्लोक डालते रहे हैं। मनु स्वयं भी कहता है कि युगों के निकृष्ट होने के अनुसार मनुष्यों के धर्म सत्ययुग में और हैं, त्रेता में और, द्वापर में दूसरे और कलियुग के और। इतना ही नहीं, वरन् यहाँ तक भी कहा गया है कि मनु-स्मृति कलियुग[1] के लिए नहीं-वह सत्य युग के लिए है। त्रेता युग के लिए गौतम स्मृति, द्वापर के लिए शाङ्ख लिखित और कलियुग के लिए पाराशर स्मृति[2] है।

---

१. अन्ये कृतयुगे धर्मास्त्रेतायां द्वापरे परे।
अन्ये कलियुगे नृणां युगह्रासानुरूपतः। मनु. १-८५

२. कृते तु मानवः धर्मास्त्रेतायां गौतमः स्मृताः।
द्वापरे शाङ्खलिखिताः कलौ पाराशरा स्मृताः॥
(लघु पाराशर, अध्याय १, श्लोक २३-२४)

चौथा परिच्छेद

शास्त्र–मर्यादा

एक गुरू जी विद्यार्थियों को पढ़ाया करते थे। एक दिन यह सोचकर कि विद्याधर सब शास्त्र पढ़ चुका है, सुन्दर है, बलिष्ठ है, गुरु जी ने अपनी सुशिक्षिता इकलौती बेटी इन्दिरा उसे ब्याह दी। गुरु जी धनवान थे, इसलिए विद्याधर को घर पर ही रख लिया।

एक दिन उन्होंनें प्रेम से कहा–बेटा, कुछ काम किया करो, निकम्मे बैठे रहना अच्छा नहीं; शास्त्राज्ञा है—**उद्योग: खलु कर्त्तव्य:** ।

दूसरे दिन सवेरे गुरू जी देव-दर्शन कर घर लौटे तो क्या देखा कि विद्याधर कुदाल लेकर घर की नींव खोद रहा है।

पूछा—"क्या कर रहे हो?"

उत्तर मिला—"उद्योग।"

"ऐसे उद्योग से तो तुम्हारा कुछ न करना ही अच्छा है।" गुरू जी ने अपना माथा ठोंका।

सुहागरात आई। इन्दिरा शृङ्गार कर के सोने के कमरे में पहुँची। विद्याधर ठाट से पलंग पर बैठा था। इन्दिरा के सौन्दर्य पर मुग्ध होकर सोचने लगा कि शास्त्र–वचनानुसार रूपवती भार्या शत्रु होती है—**भार्या रूपवती शत्रु:** । इसलिए पहले इसे कुरूपा बनाकर शत्रु के बजाय मित्र बना लेना चाहिए। नाक से ही मुख–मण्डल की सुन्दरता होती है—**नासिका मुखमण्डनम्** । इसी को साफ़ कर देना ठीक होगा।

परन्तु नाक को काटने के लिए शस्त्र कहाँ से आए? पान की तशतरी में सरौंता था। वही लेकर वह इन्दिरा की नाक काटने दौड़ा। इन्दिरा चिल्ला उठी। घर के लोग दौडे आए। गुरू जी के क्रोध की सीमा न रही। उन्होंने तुरन्त धक्के मारकर विद्याधर को घर से निकाल दिया।

विद्याधर घंटों द्वार पर खड़ा रहा। सोचता था कि शास्त्रों में लिखा है-पाँच के साथ यात्रा करनी चाहिए—**पञ्चभिः सह गन्तव्यम्**। अकेले-दुकेले पथिक तो कई आए-गये, पर एक साथ पाँच कोई न मिले। थोड़ी देर में एक शव लिए चार मनुष्य जा रहे थे। उन्हीं के साथ विद्याधर हो लिया।

श्मशान में पहुँचा तो भूख लग आई। चलते समय गुरु जी ने दया करके कुछ पाथेय दे रक्खा था। पर उसे अकेले कैसे खाता? शास्त्र में लिखा है कि इष्ट-मित्रोंके साथ भोजन करना चाहिए—**इष्टैश्च सह भुज्यताम्**।

वह शव को उठानेवालों से खाने के लिए आग्रह करने लगा। वे बिगड़कर मारने के लिए दौड़ पडे। लाचार होकर मसान के कुत्तों को ही मित्र बनाने की उसने ठानी। शास्त्र में लिखा है कि किसी के साथ सात पग चलने से ही मित्रता हो जाती है—**पदेन सप्तपदे मैत्री**। उसने कुत्तों को अपने साथ सात पगा चला लिया और उनके साथ कलेवा किया।

श्मशान की नदी छिछली थी। उस पार से ऊँट पर सरकारी डाक लादे हरकारे आरहे थे। विद्याधर ने ऊँट कभी देखा न था। सोचने लगा—यह कौन जीव है? शास्त्र में लिखा है, धर्म की चाल तेज़ होती है—**धर्मस्य त्वरिता गतिः**। अवश्य ये धर्मराज है। तब इन्हें इष्ट वस्तु अर्पण करनी चाहिए। शास्त्रमें लिखा है—**इष्टं धर्मेण योजयेत्**। पर यहाँ अपने इष्ट मित्र तो केवल कुत्ते हैं।

विद्याधर ने एक कुत्ते की टाँग पकड़ कर उसे ऊँट पर उछाल दिया। कुत्ता ऊँट की गर्दन में लटक गया। ऊँट भड़का। डाक बिखर गई। हरकारे विद्याधर को पकड़कर राजा के पास ले चले। उसने पूछा—"कहाँ लिए जा रहे हो?" हरकारों ने उत्तर दिया—"राजा के पास।"

विद्याधर को शास्त्र का वचन स्मरण हो आया कि खाली हाथ राजा के पास नहीं जाना चाहिए—**रिक्तपाणिर्न पश्येत् राजानम्**। मार्ग में एक बकरी का बच्चा फुदक रहा था। लपक कर उसे बग़ल मे दबा लिया। मेमने को लिए हुए राजा के निकट पहुँचने पर विद्याधर ने राजा को सब बीती घटना सुनाई और शास्त्र की दुहाई दी।

विद्याधर का भोला भाला मुखमण्डल देखकर राजा और राज-सभासद सब हँसते-हँसते लोट-पोट होगये। राजा ने विद्याधर को भोंदू समझ कर छोड़

दिया और घर पहुँचाने की आज्ञा देते हुए कहा—" यह पढ़ा है, पर गुना नहीं* ।"

जाति-भेद के विषय में भी जो लोग अपनी बुद्धि से काम न लेकर केवल शास्त्र-वचन के सहारे रहते है उनको दशा भी ठीक विद्याधर की जैसी ही होती है। शास्त्र के किसी एक वचन को लेकर पल्ले बाँध लेना और देश-काल का विचार न करके उसका पालन करना कभी हितकर नहीं होसकता।

महाभारत कहता है—

" कोई धर्म, क्या छोटा क्या मोटा, बिना हेतु के, बिना कारण के, नहीं बनता। इसलिए हेतु को समझकर धर्म करना चाहिए। हेतु से रहित, रस से रहित, लोक यात्रा नहीं करनी चाहिए। कोई धर्म आत्यन्तिक सब देश काल और अवस्थाके लिए उपयोगी नहीं है। प्रत्येक धर्म अवस्था पर आश्रित है। अवस्था-भेद से धर्म-भेद होता है।"

फिर मनु कहता है—

" जो मनुष्य धर्म की शुद्धि चाहता है, और चाहता है कि मेरे धर्माचरण में, कर्तव्य पालनमें, भूल न हो, उसको तीन चीजें, (तीन प्रमाण) अर्थात् प्रत्यक्ष, अनुमान, और विविध प्रकार के शास्त्रों को भली भांति जानना चाहिए।"

मनु का टीकाकार कुल्लूक भट्ट अपनी टीका (१२।११३) में कहता है—

केवलं शास्त्रमाश्रित्य न कर्तव्यो ।
युक्तिहीन विनिर्णयः, विचारे तु धर्महानिः प्रजायते ॥

अर्थात्-केवल किसी एक शास्त्र की पोथी पर भरोसा कर के जो धर्म का निर्णय करेगा वह भूल मे पडेगा, धर्म की हानि करेगा।

हमने पिछले परिच्छेद में बताया था कि मनु आदि स्मृतियॉ और महाभारत प्रभृति ग्रन्थ किसी एक व्यक्ति और किसी एक काल के लिखे हुए नहीं। मनु-स्मृति को आदि युग की कृति माना नहीं जा सकता। इसमे बहुत-सी ऐसी जातियों के नाम मिलते है जिनका वेदों में पता नहीं चलता। फिर मनु की ये जातियाँ भी केवल मध्य भारत में पाई जाती हैं। इसलिए ऐतिहासिक पण्डितों का मत है कि यह पुस्तक राजा पुष्यमित्र के समय में मध्य-भारत में बनी थी।

---

* " गृहस्थ "—काशी में, श्री गोविन्द शास्त्री दुगवेकर।

महाभारत में अनेक ऐसी प्रथाओं का उल्लेख है जो किसी समय अच्छी समझी जाती होंगी पर आज उन पर चलने का साहस कट्टर से कट्टर सनातनी हिन्दू भी नहीं कर सकता। ऐसी प्रथाओं के कुछ उदाहरण आगे दिये जाते हैं।

जैसे आजकल स्त्री-पुरुष का नियम पूर्वक सभा-मण्डप में विवाह होता है और किसी दूसरे पुरुष का उस विवाहिता स्त्री से संबंध रखना निषिद्ध एवं पाप समझा जाता है, वैसी बात आदि काल मे न थी। इससे अनेक बार, साँडों की भाँति, पुरुषों की आपस में लड़ाइयाँ हो जाती थीं। इससे सामाजिक जीवन अशान्त रहता था। इसी बुराई को दूर करने के लिए विवाह की प्रथा बनाई गई। इसके बनानेवाले उद्दालक मुनि के पुत्र श्वेतकेतु थे।

श्वेतकेतु के संबंधमें कथा है कि एक दिन श्वेतकेतु ऋषि अपनी माता के पास बैठे थे। उनके पिता भी वहीं पर थे। इसी बीच एक ब्राह्मण आकर उनकी माता का हाथ पकड़ कर कहने लगा—" युवती, तुम मेरे साथ चलो "। अब वह ब्राह्मण मानो, बल पूर्वक श्वेतकेतु की माता को लेकर चल दिया। इससे श्वेतकेतु को बड़ा क्रोध आया। श्वेतकेतु को कुपित देखकर उनके पिता उद्दालक ने कहा—*" बेटा, क्रोध न करो। अत्यन्त प्राचीन काल से यह धर्म चला आ रहा है। संसार में सभी वर्णों की स्त्रियाँ इस विषय में स्वाधीन हैं। सब मनुष्य अपने वर्ण की स्त्रियों से गाय-बैल के समान आचरण करते है। जो जिससे चाहे विहार कर सकता है।"

उद्दालक ने इस प्रकार पुत्र को समझाया। परन्तु श्वेतकेतु ने उस धर्म का अनुमोदन न किया। कुपित श्वेतकेतु ने स्त्री और पुरुष के लिए यह सामाजिक नियम बना दिया कि एक स्त्री एक ही पुरुष की होकर रहे।

अब सोचने की बात यह है कि यदि किसी पुरानी प्रथा को हानिकारक पाकर श्वेतकेतु बंद कर सकते है और इसमें कोई सनातन धर्म नहीं डूबा, तो इस युग के हम लोग जाति-भेद को अनिष्टकर पाकर क्यों बंद नहीं कर सकते।

*** मा तात कोपं कार्षीस्त्वमेष धर्मः सनातनः**
अनावृता हि सर्वेषां वर्णानामंगनाः भुवि।
यथा गावः स्थितास्तान् स्वे स्वे वर्णे तथा प्रजाः।

महाभारत, आदिपर्व, अध्याय १२३ श्लोक १३-१४

दूसरा उदाहरण, एक स्त्री के अनेक पति होने की प्रथा है। द्रौपदी[1] के पति पाँच पाण्डव थे। इसी प्रकार जटिला गौतमी[2] के सात पति थे और वार्क्षी[3] नाम की एक मुनि-कन्या ने प्रचेतस नामवाले दश भाइयों से विवाह किया था। शिमला प्रान्त के कनौर प्रदेश में अबतक भी यह प्रथा है कि सब भाइयों की एक ही पत्नी होती है।

ऊपर के उदाहरणों से स्पष्ट है कि नेत्र मूँद कर किसी धर्म-शास्त्र और स्मृति की बात पर चलने का आग्रह करना मूर्खता है। प्राचीन काल के रीति-रिवाजों में से जो-जो हमें इस युग में हितकर जान पड़ें उनसे लाभ उठाना चाहिए और जो अनुपयुक्त हों उनका परित्याग करने में कुछ भी संकोच न होना चाहिए। विवाहादि के रीति-रिवाज और अनुष्ठान सनातन धर्म नहीं। सच्चा सनातन धर्म क्या है, यह हम किसी अगले परिच्छेद में बतायेंगे।

और देखिए—

"समुद्र-यात्रा, विद्यार्थी का कमण्डलु धारण करना, लंबे सफ़र पर जाना, जहाँ से लौट कर आनेकी सम्भावना कम हो; गोमेध, सुरापान, अग्निहोत्र में हवि को चाटना, विवाहिता स्त्री को ग्रहण करना, द्विज होते हुए अपने से भिन्न वर्ण की लड़की से विवाह करना, देवर से सन्तान उत्पन्न करना, वानप्रस्थ होजाना, अक्षतयोनि विवाहिता लड़की फिर किसी दूसरे को दे देना, आचार और स्वाध्याय की अपेक्षा रखते हुए पतितों से संकोच करना, हड्डियों को इकट्ठा करने के बाद

युधिष्ठिर उवाच—

१. **सर्वेषां धर्मतः कृष्णा महिषी नो भविष्यति।**
आनुपूर्व्येण सर्वेषां गृह्णातु ज्वलने करान्।

महाभारत—आदिपर्व, अध्याय १९४

२. **श्रूयते हि पुराणेऽपि जटिलानाम गौतमी।**
ऋषीनध्यासितवती सप्त धर्मभृतांवरान्॥

महाभारत, आदिपर्व, अध्याय १९९

३. **तथैव मुनिजा वार्क्षी तपोभि र्भावितात्मना।**
संगताभूद्दश भ्रातृनेकनाम्नः प्रचेतसः॥

महाभारत, आदिपर्व, अध्याय १९९

अंगों को छूना, थोड़ा-सा भी अपराध होने पर ब्राह्मण को मार डालना, पापियों से संसर्ग, मधुपर्क में पशुबध, दत्तक और औरस पुत्र के अतिरिक्त दूसरे लड़कों के साथ पुत्र का सा व्यवहार करना, ब्राह्मणों का मदिरा बेचना और हिंसा करना, देर तक ब्रह्मचर्य धारण करना, नरमेध और पशुमेध यज्ञ करना, ये सब धर्म कलियुग में वर्जित है, ऐसा विद्वान् लोग कहते है "। †

क्या इससे प्रकट नहीं होता कि ये सब बातें पहले युगों में प्रचलित थीं ?

---

† समुद्र-यात्रा स्वीकारः कमण्डलु विधारणम् ।
महाप्रस्थान-गमने गो-पशुश्च सुराग्रहः ॥
अग्निहोत्र हविषश्च लेहो लीढा परिग्रहः ।
असवर्णासु कन्यासु विवाहश्च द्विजातिषु ॥
देवरेण सुतोत्पत्तिर्वानप्रस्थाश्रमग्रहः ।
दत्ताक्षतायाःकन्यायाः पुनर्दानं परस्य च ॥
वृत्तस्वाध्याय सापेक्षमघः संकोचं तथा
अस्थि संचयनादूर्ध्वमङ्गस्पर्शनमेव च ॥
प्रायश्चित्ताभिधानञ्च विप्राणां मारणं तथा ।
संसर्ग-दोष पापेषु मधुपर्के पशोर्वधः ॥
दत्तौरसेतरेषान्तु पुत्रत्वेन परिग्रहः ।
शामित्रं चैव विप्राणां सोम-विक्रयणं तथा ॥
दीर्घकालं ब्रह्मचर्यं नरमेधाश्वमेधकौ ।
कलौयुगेत्विमान्धर्मान्वर्ज्यानाहुर्मनीषिणः ॥

बृहत् नारदीय-पुराण ।

पाँचवाँ परिच्छेद

ब्राह्मणी सत्ता का इतिहास

हम पीछे लिख आये है कि सत्ययुग मे कोई वर्ण-भेद और आश्रम-भेद न था और इसलिए वर्णसंकरता का प्रश्न ही उत्पन्न न होता था। कालान्तर में ब्राह्मण और क्षत्रिय दो भिन्न-भिन्न वर्ण प्रकट हुए। पर तब भी वे आजकल की भाँति जन्म से नहीं, वरन् गुण-कर्म से या चरित्रगत थे। ब्राह्मण कहलानेवाला व्यक्ति क्षत्रिय बन सकता था और क्षत्रिय कहलाने वाला ब्राह्मण। इस प्रकार वर्ण-परिवर्तन करने वाले अनेक लोगों के नाम पुराणों में मिलते है। उन में से कुछ नाम आगे दिए जाते है। भविष्य महापुराण, ब्राह्मपर्व, अध्याय ४२ में लिखा है—

"व्यास आदि मुनि आचार से अच्छे थे। इसलिए गर्भाधान आदि संस्कार न होने पर भी सब लोग उन्हें पूज्य समझते थे और वे अच्छे ब्राह्मण बन गये। इस प्रकार नीचकुल में उत्पन्न होकर भी उच्चवर्ण में पहुँचने वाले बहुत है। उन मे से कुछ इस प्रकार है। कैवर्त (कहार) स्त्री से व्यासजी का जन्म है। श्वपाक (चाण्डाल) स्त्री से पराशर मुनि का। शुकी से शुक, अलूकी से कणाद और हिरणी से शृङ्ग ऋषि हुए। गणिका (वेश्या) से वसिष्ठ हुए। मुनियों में श्रेष्ठ मन्दपाल मुनि लाविका से हुए। मण्डुकी से माण्डव्य हुए। पर तप के प्रताप से वे सब ब्राह्मण बन गये।"

वायुपुराण (९१।११५-११७) में भी ऐसे महात्माओं की एक सूची मिलती है जिन का जन्म यद्यपि क्षत्रिय वंश में हुआ पर तपोबल से वे ब्राह्मण बन गये—विश्वामित्र, मांधाता, संकृति, कपि, पुरुकुत्स, सत्य, अनूहवान्, ऋथू, आर्ष्टिषेण, अजमीढ़, कक्षीव, शिंजय, रथीतर, विष्णुवृद्ध, इत्यादि। इसी प्रकार राजा गृत्समद के पुत्र शौनक थे। शौनक के वंश में चारों ही वर्ण के लोग उत्पन्न हुए (वायुपुराण ९२।४-५) वहाँ स्पष्ट कहा है कि शौनक और

आर्ष्टिषेण क्षत्रिय कुल में उत्पन्न हुए ब्राह्मण है (वही ६)। दिव्य भरद्वाज ब्राह्मण से क्षत्रिय हो गये (वायु पुराण ९९ । १५७)। गार्ग्र का जन्म क्षत्रिय वंश मे हुआ था पर वे ब्राह्मण हो गये थे (९९–१६१)। क्षत्रिय कंठ का पुत्र मेधातिथि था। इन से कण्ठायन ब्राह्मण हुए (९९–१७०)। राजा दिवोदास का पुत्र ब्रह्मिष्ठ मित्रयु राजा था। इसकी सन्तान जन्म से क्षत्रिय होकर भी तपोबल से ब्राह्मण हो गई (वही २०७)।

बलि के पाँच पुत्र थे। उन के नाम–अङ्ग, वङ्ग, सुह्म, पुण्ड्र, और कलिङ्ग "बालेय" अर्थात् वलि के वंश के क्षत्रिय कहलाते थे। बालेय ब्राह्मण इन्हीं की सन्तान है (हरिवंश पुराण ३१–१६८४–१६८५)।

विष्णु पुराण से पता लगता है कि वसिष्ठ के परामर्श से राजा सगर ने यवनों और पह्लवों आदि को हराने के बाद यवनों का सारा शिर, शकों का आधा शिर मुंडाकर, पह्लवों को दाढ़ी रखवाकर, पारदों के लंबे बाल बढ़वाकर इन्हे और दूसरे क्षत्रियों को स्वाध्याय और वषट्कार से वंचित करके दण्ड[1] दिया था। इस तरह जब ब्राह्मणो का मेल–जोल उन से बंद हो गया तो वे म्लेच्छ हो गये।[2] इस प्रकार संस्कृति से शून्य हो जाने से वे लोग जीवन्मृत से होगये। फिर महाभारत, शान्तिपर्व, अध्याय २९६ में लिखा है—"पराशर मुनि ने जनक राजा से कहा—हे राजन्, नीच कुल में जन्म होने पर भी तपस्या के बल से उच्च पद मिल सकता है। अनेक मुनियों ने जहाँ जी चाहा वहीं पुत्र उत्पन्न किए और उन्हें तप के बल से ऋषि बनाया। मेरे नाना शृङ्ग ऋषि, कश्यप, वेद, ताण्ड्य, कृप, कक्षीवान, कमाठादि ऋषि, यवक्रीत, द्रोण, आयु, मतङ्ग, दत्त, द्रुमद, मात्स्य आदि सब ऋषि नीच कुल में उत्पन्न हुए थे। इस पर भी तप के आश्रय और वेदों के अध्ययन से वे श्रेष्ठता को प्राप्त कर सके।"

ब्राह्मण रजस ऋषि की ब्राह्मणी पत्नी मार्कण्डेयी से केतुमान पुत्र हुए जो राजन्य (क्षत्रिय) हो गये। (वायु पुराण अध्याय २८)। चित्रमुख नामक वैश्य

---

१. यवनान् मुंडितशिरसः अर्द्धमुंडान् शकान् प्रलंबकेशान् पारदान् पह्लवांश्चश्मश्रुधारान् निःस्वाध्यायवषट्कारान् एतानन्यांश्च क्षत्रियांश्चकार।
(विष्णुपुराण ४,३,२१)

२. ते च निज धर्म-परित्यागाद् ब्राह्मणैश्च परित्यक्ता म्लेच्छतां ययुः।

वसिष्ठ की सहायता से ब्राह्मण हो गया और उस की बेटी वसिष्ठ के पौत्र पराशर को ब्याह दी गई। (अनुशासन पर्व, अध्याय ३५)। वीतहव्य (क्षत्रिय) भृगु की सहायता से ब्राह्मण हो गया। (अध्याय ७)।

भागवत पुराण स्कंध ९ में लिखा है—

"क्षत्रिय राजा पृषध्र शूद्र हो गया। क्षत्रिय राजा धृष्ट के वंशज ब्राह्मण हो गये। राजा दिष्ट का एक लड़का नाभाग वैश्य हो गया। शर्याति राजा उत्तम ब्राह्मण हो गये। दुरितक्षय क्षत्रिय के पुत्र ब्राह्मण हो गये। राजा ऋषभदेव के पुत्र राजा भरत के इक्यासी सगे भाई ब्राह्मण हो गये।"

हरिवंश पुराण, अध्याय ३२ में कहा है—"एक ही भार्गव वंश में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र (विभिन्न वर्णों के) पुत्र उत्पन्न हुए। ऐतरेय महिदास शूद्री का पुत्र था। आगे चलकर वह वेद का जाननेवाला ब्राह्मण हुआ। उसने वेद के संबंध में ऐतरेय ब्राह्मण नामक ग्रन्थ लिखा। वह इतर अर्थात् अब्राह्मण का पुत्र था। इसीलिए ऐतरेय कहलाया। मालूम नहीं उसका पिता कौन था।"

ब्रह्मपुराण कहता है कि ब्राह्मण भी शूद्र हो जाता है (२५३। ५४) और पवित्र काम करनेवाले शूद्र की भी ब्राह्मण सेवा करेगा, स्वयं ब्रह्मा का यह मत है (५५)।

और भी कहा है—"जाति, संस्कार, श्रुति और स्मृति से कोई द्विज नहीं होता, न केवल चरित्र से ही होता है। इस लोक में चरित्र से ही सब के ब्राह्मणत्व का विधान है। सद्वृत मे स्थित शूद्र भी ब्राह्मणता को प्राप्त होता है। ब्राह्मण वही है जिस मे निर्मल, निर्गुण ब्रह्मज्ञान है।" (ब्रह्मपुराण, २२३–५६–५८)।

कृष्ण यजुर्वेद कहता है—"ब्राह्मण के माता-पिता को क्यों पूछते हो। यदि उसमें श्रुत है तो वही उसका पिता है, वही पितामह।" काठक संहिता ३०।१।

यही बात महाभारत में इस प्रकार कही गई है—"कुल या वीर्य से कोई ब्राह्मण नहीं होता। चाण्डाल में भी यदि वृत्त हो तो हे युधिष्ठिर, वह ब्राह्मण †

† **न कुलेन न जात्या च क्रियाभिर्ब्राह्मणो भवेत्।**
चाण्डालोऽपि हि वृत्तस्थो ब्राह्मणः स युधिष्ठिर।

है।" "वज्रसूची"[1] कहती है कि जन्म से मनुष्य शूद्र होता है, संस्कार से ही वह द्विज कहलाता है; वेदाभ्यास से विप्र और ब्रह्मज्ञान से ब्राह्मण बनता है।

मनु[2] अध्याय ११ श्लोक ९० की टीका करता हुआ कुल्लूक भट्ट कहता है कि एक बार भी मदिरा पीने से ब्राह्मणत्व नष्ट हो जाता है।

इसी प्रकार व्यास स्मृति कहती है—"काठ का बना हाथी, चमड़े का बना मृग और अपढ़ ब्राह्मण, ये तीनों नाम मात्र के होते हैं।" मनु[3] भी यही कहता है।

ऊपर दिए वचनों से दो बातें सिद्ध होती है। एक तो यह कि आदिकाल में वर्ण–व्यवस्था जन्म से नहीं, वरन् गुण-कर्म से थी और जैसा आजकल है वैसा वर्णान्तर तब असंभव न था। तब शूद्र पिता के घर जन्म लेने-वाला बालक अपने उत्तम गुणों के प्रताप से ब्राह्मण हो सकता था और ब्राह्मण पिता के यहाँ जन्म लेनेवाला बालक, दुर्गुणी होने से, शूद्र हो जाता था। दूसरी बात यह कि महाभारत, पुराणों और स्मृतियों के समय में वर्णों का लचीलापन नष्ट होता जा रहा था और वर्ण जन्म से ही माने जाने लगे थे। तभी तो इन पुस्तकों में कहने की आवश्यकता हुई कि अपढ़ ब्राह्मण काठ के घोड़े के सदृश केवल नाम का होता है या कुल और वीर्य से कोई ब्राह्मण नहीं **होता**।

बात वास्तव में यह है कि आजकल के समाजवाद और साम्यवाद के सदृश वर्ण–व्यवस्था भी एक प्रयोग मात्र था। खेद है कि वह बहुत बुरी तरह विफल हुआ। इस विफलता का इतिहास[4] श्रीयुत रमेशनन्दन सहाय

---

१. **जन्मना जायते शूद्रः संस्काराद् द्विज उच्यते**
वेदाभ्यासाद्भवेद् विप्रो ब्रह्म जानाति ब्राह्मणः।

२. **सुरां पीत्वा द्विजो मोहादग्निवर्णां सुरां पिबेत।**
तया सकाये निर्दग्धे मुच्यते किल्बिषात्ततः॥

मनु० ११–९०

३. **यथा काष्ठमयो हस्ती यथा चर्ममयो मृगः**
यश्चविप्रोऽनधीयानस्त्रयस्ते नाम बिभ्रति॥

मनु० २–१५७

४. "क्रान्ति"—लाहौर, नवम्बर १९३०

एम. ए. ने अपने एक लेख में बडे सुन्दर ढंग से लिखा है। वही आगे दिया जा रहा है:—

ऋग्वेद के पुरुष-सूक्त में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र एक ही विराट् पुरुष के विभिन्न अवयवों से उत्पन्न हुए बताए गये है। वे सब एक ही समाज के विभिन्न अंग है। जैसे मनुष्य अपने विभिन्न अवयवों द्वारा अपना सब काम कर लेता है, वैसे ही समाज ने भी विभिन्न जातियों को विभिन्न कार्य करने का उत्तरदायित्व सौंपा। किन्तु फिर भी सभी एक ही समाज के अंग बने रहे। भेद नाम मात्र था। मनुष्य का मुख उस के शरीर से अलग नहीं कहा जा सकता। एक परिवार मे कोई स्त्री रसोई बनाती है, कोई घर की सफ़ाई का ध्यान रखती है, कोई खाद्य पदार्थों को सँभालती है। परन्तु इस से यह कदापि नहीं कहा जा सकता कि उनके पद या प्रतिष्ठा मे कोई भेद है। इसलिए प्राचीन काल में वर्णों की उत्पत्ति के उपरान्त भी आपस मे ईर्ष्या-द्वेष और फूट का बीज नहीं बोया गया था।

ब्राह्मणों की श्रेष्ठता

परन्तु भारतवर्ष में प्राचीन काल से धर्म का पद ऊँचा रहा है। सब धार्मिक बातो को यहाँ के लोग दूसरी सब बातों से श्रेष्ठ समझते आए है। इसलिए बाद को ब्राह्मण लोग, जिन्हें देवताओं की स्तुति का काम सौंपा गया था, पूजनीय समझे जाने लगे। धीरे-धीरे वे भी अपनी उच्च स्थिति का अनुभव करने लगे। ये लोग अब समझने लगे कि समाज में शिरोमणि हो जाना हमारे लिए कोई बड़ी बात नहीं है। अनायास मिलते हुए पद और प्रतिष्ठा का परित्याग करना भी कोई बुद्धिमत्ता नहीं। अतएव अब वे लोग अपने प्रभुत्व की धाक जमाने का प्रयत्न करने लगे। किन्तु क्षत्रिय लोग भी उनसे किसी प्रकार कम नहीं थे। उन्हे यह बात कब गवारा होती? वे अपने आप को तुच्छ मानने को कब तैयार थे? इसलिए इसी बात को लेकर आपस का एक झगड़ा उठ खड़ा हुआ।

ब्राह्मणों और क्षत्रियों में परस्पर विरोध

जब तक समाज मे जीवन और उत्साह बना रहा, वह पुरोहितशाही की जड़ों पर कुल्हाड़ा चलाने और अपने छिने हुए अधिकारों को फिर से प्राप्त करने का बार-बार उद्योग करता रहा। रामायण और महाभारत के कालों में

भी ऐसे प्रयत्नों की बात पाई जाती है। फिर आगे चलकर बौद्ध धर्म का प्रवर्तन और प्रचार करके क्षत्रियों ने ब्राह्मणी प्रभुत्व को बिलकुल जड़ से उखाड़ फेंकेने का पुन: प्रबल प्रयत्न किया। पर ब्राह्मणों के चातुर्य और बुद्धिमत्ता के सामने उनकी एक न चली। अन्त में शिर नवाना ही पड़ा। ब्राह्मणों ने स्वयं बुद्ध को विष्णु का अवतार मान और उनके सिद्धान्तों को अपने धर्म में सम्मिलित करके बौद्ध मत को भारत से सदा के लिए बाहर ही निकाल दिया। बुद्ध–धर्म के पतन के उपरान्त ऐसे प्रयत्न समाप्त हो गये और अन्ततः ब्राह्मणी सत्ता ने पूर्ण रूप से सारे भारत पर अपना अधिकार जमा लिया।

"महाभारत–मीमांसा" ने भी इसी बात का समर्थन किया है। उसके छठे परिच्छेद में लिखा है, "......परन्तु आरम्भ मे क्षत्रियों ने ब्राह्मणों की यह बात चलने न दी। वसिष्ठ और विश्वामित्र के विवाद से प्रकट होता है कि क्षत्रियों ने इसके बारे में खूब झगड़ा किया।......किन्तु मतलब इस का एक ही है। ब्राह्मणों की यह माँग थी कि ब्राह्मण का बेटा ब्राह्मण हो और क्षत्रिय का बेटा क्षत्रिय। पर विश्वामित्र की माँग यह थी कि क्षत्रिय के बेटे ने यदि अपनी बुद्धि एवं योग्यता को बढ़ा लिया हो तो उसके ब्राह्मण होने में क्यों रुकावट है?"

"महाभारत–मीमांसा" के मतानुसार यह प्रतिस्पर्धा बहुत प्राचीन काल से ही आरम्भ हो गई थी। विश्वामित्र की कथा सूर्यवंशी क्षत्रियों के समय और पंजाब प्रदेश की है। पर फिर भी महाभारत–काल तक ब्राह्मणों की कट्टरता पूर्ण उन्नति को प्राप्त नहीं हुई थी। यद्यपि भेद–भाव दिन पर दिन बढ़ता जा रहा था, तो भी अभी तक आपस में भाई-चारे का संबंध भङ्ग नहीं हुआ था। अभी तक ब्राह्मणों और क्षत्रियों को प्रायः समान अधिकार प्राप्त थे और सभी ज्ञान–प्राप्ति और वेद–शास्त्राध्ययन के एक समान अधिकारी समझे जाते थे।

वर्ण नहीं, वरन् ज्ञान एवं सत्य की मर्यादा

अभी तक दूसरी जातियों के लोग अपनी योग्यता, शालीनता, और सदाचार के द्वारा ब्राह्मणत्व प्राप्त कर सकते थे। ऐतरेय ब्राह्मण में वर्णित इलूष पुत्र के कवष की कथा इस संबंध में ध्यान देने योग्य है। कवष को ऋषियों ने धूर्त, अब्राह्मण और दासी–पुत्र कहकर यज्ञ से निकाल दिया था। उन्होंने उसे दीक्षा देने से इंकार कर दिया था। किन्तु कवष का देवताओं से परिचय था। देवगण

कवष को जानते थे। अर्थात् कवष ज्ञानी, विद्वान् एवं धर्मात्मा था। इसलिए कवष महर्षि बना लिया गया। इसी बात के समर्थन में छान्दोग्योपनिषद् मे वर्णित सत्यकाम जावाल की कथा से यह स्पष्ट प्रकट होता है कि उन दिनों सत्य और भक्ति के द्वारा ही मनुष्य उन्नति एवं प्रतिष्ठा के सर्वोच्च शिखर पर पहुँच सकता था। जात-पॅात का भाव उसके मार्ग मे बाधा नहीं डाल सकता था।

छान्दोग्योपनिषद् के चौथे प्रपाठक के चौथे खण्ड मे वह कथा इस प्रकार दी गई है—

जावाला के पुत्र सत्यकाम ने अपनी माता से कहा—"माँ, मै ब्रह्मचर्य आश्रम ग्रहण करना चहता हूँ। मुझे मेरा गोत्र बता दो।"

माता ने कहा—"बेटा, मै नहीं जानती, तुम किस कुल के हो। युवावस्था मे जब मै दासी के सदृश जीवन बिताती थी, मैने तुम्हें गर्भ में धारण किया। मै नहीं जानती तुम्हारा गोत्र क्या है। मेरा नाम जावाला है; तुम सत्यकाम हो। इसलिये अपने को सत्यकाम जावाल कहना।"

सत्यकाम गौतम नामवाले हारिद्रुमान के पुत्र हारिद्रुमत के पास गया और उनसे बोला—"आर्य, मै ब्रह्मचारी बनना चाहता हूँ; क्या आपकी शरण में आ सकता हूँ?"

हारिद्रुमत ने पूछा—"बेटा, तुमने किस गोत्र में जन्म लिया है?"

सत्यकाम ने उत्तर दिया—"आर्य, मै किस कुल का हूँ, यह नहीं जानता। मैंने अपनी माता से पूछा तो उसने उत्तर दिया कि यौवनकाल में जब वह प्रायः दासी जैसी, अपने पिता के यहाँ आए हुए अतिथियों की परिचर्या किया करती थी तब उसने मुझे गर्भ में पाया। वह नहीं कह सकती कि मै किस कुल का हूँ। उस का नाम जावाला है और मै सत्यकाम हूँ। इसलिए आर्य, मैं सत्यकाम जावाल हुआ।"

हारिद्रुमत ने कहा—"सच्चे ब्राह्मण के सिवा और कोई ऐसी सच्ची बात नहीं कह सकता। जाओ सौम्य, समिधा लाओ, मैं तुम्हें उपनीत करूँगा इसलिए कि तुम सत्य से भ्रष्ट * नहीं हुए।"

---

* **तं होवाच नैतद् ब्राह्मणो विवक्तुमर्हति,**
समिधं सौम्याहरोपत्वा नेष्ये न सत्यादगा इति। छान्दोग्य ४।४। ५

अतएव महर्षि द्वारा दीक्षित हो कर, उस लड़के ने, जिस के कुल और चरित्र का कुछ पता न था, ब्राह्मण के ज्ञान को प्राप्त किया और अन्त में महाराज दशरथ के प्रधान ऋत्विजों मे परिगणित हो, ब्राह्मण–श्रेष्ठ की उपाधि से सुशोभित हुआ।

भेद–भाव आरम्भ हो जाने पर भी अभी तक जाति–भेद को तोड़ने में कट्टरता और संकीर्णता नहीं आई थी। पर दिन पर दिन यह भेद भाव बढ़ता ही गया। और आपस का विरोध बल पकड़ता गया। यहाँ तक कि रामायण और महाभारत का काल समाप्त होते ही हम जाति–बंधन को सुदृढ़ और अटूट पाते हैं। महाभारत के पहले और बाद की सामाजिक अवस्था में हम आकाश-पाताल का सा अन्तर पाते है।

धर्म की बागडोर ब्राह्मणों के हाथ में थी। ये लोग सम्मान और पूजा के आसन पर बैठा दिए गये थे। धार्मिक विषयों से संबंध रखने के कारण समाज इनको सम्मान की दृष्टि से देखने लग गया था। यद्यपि क्षत्रिय लोग किसी प्रकार इनसे कम नहीं थे, वरन् कितनी ही बातों में इन से बढे–चढे ही थे, पर धर्म की ध्वजा इनके हाथ रहने के कारण वे पूरी तरह इनका सामना न कर सकते थे। इसी से झगड़ा आरम्भ होने पर भी क्षत्रियों को मुँह की खानी पड़ती थी।

ब्राह्मणों की युक्ति

ब्राह्मणों ने भी अपनी स्थिति को पूर्ण रूप से समझ लिया था। वे जानते थे कि उन के पास एक ऐसी शक्ति है, एक ऐसा अस्त्र है, जिस के सामने कोई भी खड़ा नहीं रह सकता। वे समझते थे कि एक बार धर्म की दोहाई देने पर धर्म-भीरु जनता जीभ नहीं हिला सकती। परन्तु फिर भी इस सदा के रगडे–झगडे को एकदम ही मिटा देना इन लोगों ने आवश्यक समझा। इसका उपाय भी इन लोगों ने बहुत अच्छा सोच निकाला। धर्म की बागडोर इन के हाथ में थी ही, उसे ही इन लोगों ने इस प्रकार हिलाना आरम्भ किया कि अन्त में सब से जुदा होकर अपना सब से ऊँचा वर्ण प्रतिष्ठित कर ही लिया। यह प्रयास महाभारत–काल के समाप्त होते–होते किया गया था। इसी के फल-स्वरूप ब्राह्मण–ग्रन्थों की रचना हुई।

ब्राह्मण-साहित्य का रूप

उस काल का साहित्य जटिल धार्मिक विधानों और अनुष्ठानों से परिपूर्ण है। वेदों से यज्ञों के आवश्यक स्तोत्र चुन लिए गये। वैदिक काल की सरल धार्मिक पद्धति कठिन और अनावश्यक रूप से लंबी बना दी गई। सरल और स्वाभाविक देव-पूजा के स्थान में बडे-बडे आडम्बर युक्त यज्ञ और अग्निहोत्र प्रचलित किए गये। यज्ञों में अनेक प्रकार की जटिलताएँ डाली गईं। उन्हें भारी व्यय की चीज़ बना दिया गया और एक प्रदर्शन से बढ़कर उन्हें समझा जाने लगा। प्रतीत ऐसा होता था मानों अनावश्यक और जटिल अनुष्ठानों के अतिरिक्त धर्म कोई दूसरी शिक्षा दे ही नहीं सकता। परिणाम यह हुआ कि धार्मिक बातें सर्व-साधारण की समझ से बाहर की चीज़ हो गई, और जनता को धार्मिक बातों से हाथ खींच लेने पर विवश होना पड़ा। जबतक सारी आयु न लगा दीजाय उन धार्मिक विधानों और अनुष्ठानों में पारंगत होना असंभव था। ये यज्ञ वही करा सकते थे जो जन्म काल से उन्हें देखते आए हों और इस विषय का मनन और अभ्यास करते रहे हों। इसलिए देखते देखते ब्राह्मणों का सिक्का जमने लगा। लोग अपनी धर्म-संबंधी स्वाधीनता खोने लगे।

क्षत्रियों का प्रयास

परन्तु सौभाग्य से उस समय विदेह आदि ज्ञानी और बुद्धिमान राजर्षियों का भी अभाव न था। वे लोग इस प्रकार के व्यर्थ और अरुचिकर अनुष्ठानों और विधानों की उन्नति होते कहाँ तक देख सकते थे। साहित्य की रद्दी और हास्यजनक दशा को देख वे अशान्त हो उठे और गम्भीर चिन्ता में निमग्न हो गये। उन लोगों ने स्पष्ट रूप से देख लिया कि धर्म-ज्ञान के लिए इतना ही पर्याप्त नहीं। अतएव वे उच्च एवं उत्कृष्ट चिन्तन में लीन हो गये। वास्तविक सत्य की खोज में उनकी आत्मा निरत हो गई। परब्रह्म-परमात्मा का सच्चा स्वरूप और आत्म-तत्व को जानने के लिए वे अधीर हो उठे और सोच-विचार और मनन-निदिध्यासन में लग गये, विद्या के महार्णव में डुबकी लगा कर वे ज्ञान-रत्न को खोजने लगे।

उपनिषदों की रचना और महत्व

उनके नवीन सिद्धान्त और विचार इतने ठोस, सारगर्भित और आश्चर्य-जनक निकले कि अपने आप में अभिमान से फूले न समानेवाले ब्राह्मणों को

उनका महत्व स्वीकार करना ही पड़ा। और नव-प्राप्त ज्ञान के उपार्जन के लिए क्षत्रियों का शिष्यत्व ग्रहण करना पड़ा। महाभारत काल का प्रायः अन्त होते-होते राजर्षि के खोज किए हुए नवीन ज्ञान ने संसार भर को चकित-स्तम्भित कर दिया। प्राचीन भारतीय साहित्य में उपनिषदों का ही स्थान प्रायः सब से ऊँचा है। संसार की शायद किसी भी भाषा के साहित्य में इतने ऊँचे दार्शनिक विचारों-वाली सर्वगुण-संपन्न और विद्वत्तापूर्ण पुस्तक नहीं मिल सकतीं। बड़े विस्मय की बात है कि ऐसी अनुपम और बहु-मूल्य पुस्तकों के लिखने का श्रेय क्षत्रियों को-विशेषतः राजा जनक को ही प्राप्त हुआ। ये क्षत्रिय वे थे जिन का प्रधान कर्म प्राचीन काल से केवल लड़ाई-भिड़ाई, कूटनीति, और रक्षा-रखवाली ही रहा था। ऐसे ज्ञान भण्डार का उद्घाटन तो अध्यात्म एवं बुद्धि के रक्षकों के ही हाथों होना उचित था। पर जिस महत्व और गुरुता को वे लोग सहस्रों ग्रन्थ बनाकर भी न प्राप्त कर सके उसे क्षत्रियों ने केवल इसी एक उपनिषद् की रचना करके प्राप्त कर लिया। यह पुस्तक भारत के प्राचीन साहित्य की शिरोमणि हो गई, इस ने संसार मे भारतीय साहित्य का मस्तक ऊँचा किया।

ऊपर जो बाते लिखी गई है वे निराधार और कोरी कल्पना नहीं। तत्कालीन क्षत्रियों द्वारा आविष्कृत उच्च ब्रह्म-ज्ञान की शिक्षा प्राप्त करने के लिए सैनिक जाति की शरण में जाने वाले सैकड़ों ब्राह्मणों के उदाहरण उपनिषदों में मिलते हैं। उन में से केवल दो चार का देना ही यहाँ पर्याप्त होगा।

क्षत्रियों के महत्व के कुछ प्रमाण

एक दिन नवागत तीन ब्राह्मणों से जनकराज की भेंट हुई। उनके नाम श्वेतकेतु आरुणेय, सोम-शुष्म सात्ययज्ञि और याज्ञवल्क्य थे। जनक ने उन से अग्निहोत्र करने की विधि पूछी। सभी ने यथासंभव बतलाने का यत्न किया। पर कोई भी सफल न हुआ। याज्ञवल्क्य का उत्तर थोड़ा-बहुत ठीक था—बहुत थोड़ी भूल रह गई थी। जनक उन लोगों को यह विधि बतला कर रथ पर जा चढे और चले गये। पुरोहितों ने सोचा कि इस उद्दण्ड राजा ने हमारा तिरस्कार किया है। इसलिए याज्ञवल्क्य भी अपने रथ पर चढ़ कर जनक के पीछे चल पडे। परन्तु अन्त में जनक से अपनी भूल का पता लग जाने पर उन्हें लौट आना पड़ा। —शतपथ ब्राह्मण—११—४

फिर छान्दोग्योपनिषद् के पाँचवें प्रपाठक के तीसरे खण्ड में उपर्युक्त श्वेतकेतु आरुणेय की एक और कथा भी पाई जाती है।

जब श्वेतकेतु आरुणेय पांचालो की सभा में गया तो प्रवाहण जैबलि ने उस से पूछा —" कुमार, क्या तुम्हारे पिता ने तुमको शिक्षा दी है ? "

आरुणेय—" जी हाँ। "

जैबलि—" क्या तुम जानते हो यहाँ से मनुष्य कहाँ जाते है ? "

आरुणेय—" जी नहीं। "

जैबलि—"क्या तुम बतला सकते हो कि फिर वे यहाँ किस प्रकार लौटते है ?"

आरुणेय—" जी नहीं। "

ऐसे ही और दो एक प्रश्नो का उत्तर भी " नही " पा कर वह बोल उठा—" तब तुम अपने को सुशिक्षित क्यो कहते हो ? जो व्यक्ति इन सब बातों को नहीं जानता वह सुशिक्षित कैसे कहला सकता है ? "

अन्त मे आरुणेय बहुत दुःखी हो अपने पिता के पास लौट गया और कहने लगा—" पिता, मुझे शिक्षा न दे कर यो ही आपने मुझ से कह दिया कि मै सुशिक्षित हो गया हूँ। अन्त मे उस धृष्ट राजा ने मुझ से पॉच प्रश्न पूछे, किन्तु मै एक का भी उत्तर न दे सका।"

पूछे हुए पर प्रश्नों को सुनकर पिता ने कहा—" बेटा, मै आप ही इन प्रश्नों में से एक का भी उत्तर नहीं दे सकता। इन प्रश्नों ने तो मेरी बुद्धि चक्कर में डाल दी है। यदि मै इन विषयों के संबंध में कुछ भी जानता होता तो फिर भला कहो, तुम्हे कैसे न बतलाता ? "

अन्त मे कुश हाथ में लेकर पिता-पुत्र दोनों दुबारा जैबलि के पास गये। उन्होंने उपर्युक्त ज्ञान प्राप्त करने के लिए उससे प्रार्थना की।

पहले तो जैबलि टाल-मटोल करता रहा और घबराया। परन्तु अन्त में बहुत आग्रह करने पर उसने गौतम (श्वेतकेतु के पिता) से कहा—

" महर्षि, आप कुछ दिन मेरे पास ठहरिये, मै आप को उस विद्या की शिक्षा दूँगा। पर आज से पहले यह विद्या ब्राह्मणों के पास कभी नहीं गई थी। अभी तक यह विद्या केवल क्षत्रियों की ही संपत्ति समझी जाती थी।"

इतना कह कर गौतम को उसने आत्मा के स्वरूप, उस का परमात्मा के साथ संबंध इत्यादि की सविस्तर व्याख्या हृदयंगम करा दी। ये सब बातें पाँचवें प्रपाठक में चौथे से दशवें खण्ड तक मिलती हैं।

फिर ग्यारहवे खण्ड में इसी प्रकार की एक दूसरी कथा पाई जाती है। उपमन्यु का पुत्र प्राचीनशाल, पुलुष का पुत्र सत्ययज्ञ, भल्लवि का पुत्र इन्द्रद्युम्न, शर्कराक्ष का पुत्र जन, और अश्वतराश्व का पुत्र बुडिल नाम के पाँच वेदान्ती आत्मा के स्वरूप का परिचय और ब्रह्मज्ञान प्राप्त करने के लिए उद्दालक आरुणेय के पास गये। परन्तु उद्दालक ऋषि उनकी शंका-समाधान करने में असमर्थ था। इसलिए वह उन लोगों को कैकेय अश्वपति के पास ले गया। अश्वपति राजा ने बडे सम्मान के साथ उनको अपने राज्य मे रख कर ज्ञान की दीक्षा दी। यह कथा बडे विस्तार के साथ छान्दोग्योपनिषद् में कही गई है और शतपथ ब्राह्मण में भी पाई जाती है।

श्वेतकेतु आरुणेय की एक और कथा कौशीतकि उपनिषद् के पहले अध्याय में मिलती है—

चित्रगार्ग्यायिणि ने एक यज्ञ मे उद्दालक आरुणेय (गौतम) को अपना आचार्य नियुक्त किया। आरुणेय ने अपने पुत्र श्वेतकेतु को यह काम सौंप दिया। पर बेचारा श्वेतकेतु तो चित्र के एक ही प्रश्न से घबरा गया। वह इसका उत्तर पूछने के लिए अपने पिता के पास गया। उद्दालक भी इसका उत्तर देने मे असमर्थ था। इसलिए हाथ में कुश ले, ज्ञान-भिखारी बन वे चित्र के पास आए। चित्र ने उन्हें मरने के पश्चात् आत्मा के स्वरूप, गति और अनुभव के विषय और पुनर्जन्म के सिद्धान्त की सविस्तर व्याख्या सुनाई।

पाठकों को आश्चर्य होगा कि पुनर्जन्म का सिद्धान्त भी क्षत्रियों ने ही मालूम किया था। श्वेतकेतु के पहले कोई भी ब्राह्मण इस सिद्धान्त के संबंध में कुछ नहीं जानता था।

इसी प्रकार गार्ग्यबालाकि नाम के आत्माश्लाघा करनेवाले घमंडी ब्राह्मण के अजातशत्रु से हार खाने और कुश लेकर उस राजा के शिष्य बनने की कथा कौशीतकि उपनिषद् के चौथे अध्याय में कही गई है।

क्षत्रियों का गौरव

ऐसी कितनी ही कथाएँ बृहदारण्यक और केन आदि उपनिषदों में भी पाई जाती है। उन सबका यहाँ उद्धृत करना व्यर्थ होगा। उपर्युक्त कथाओं से ही महाभारत काल के क्षत्रियों की मानसिक योग्यता का अनुमान लगाया जा

सकता है। हम तो समझते हैं, इतनी ही बात, उस समय क्षत्रियों को समाज में जो गौरव प्राप्त था उसे प्रमाणित करने के लिए पर्याप्त होगी।

इतना ही नहीं हमारा मस्तिष्क तो वेदों की व्यवस्था करनेवाले व्यास के वर्ण का निश्चय करने में भी चकरा जाता है। समझ में नहीं आता कि कृष्णद्वैपायन को ब्राह्मण माना जाय या क्षत्रिय। द्वैपायन का जन्म महाराज शन्तनु की पत्नी सत्यवती और पराशर ऋषि के समागम से हुआ था। और उसी से उत्पन्न विचित्र वीर्य की पत्नी अम्बिका और अम्बालिका के पुत्र पाण्डु और धृतराष्ट्र क्षत्रिय समझे जाने लगे।

"हिन्दी शब्द सागर" के मतानुसार तो यही व्यासदेव उत्तर मीमांसा के भी रचयिता थे। फिर सांख्य के रचयिता कपिल के क्षत्रिय होने में तो कोई संदेह ही नहीं। गोस्वामी तुलसीदास ने तो रामायण में उनकी वंशावली ही दे दी है। इसलिए देखा जाता है कि दर्शन भी अधिकतर क्षत्रियों की ही रचना है। सारांश यह कि उस काल के क्षत्रिय विद्या-बुद्धि में सब से बढे हुए थे। सबका तेज उनके सामने फीका पड़ गया था। सभी को उनके सामने शिर झुकाना पड़ा था।

बौद्धकाल में ब्राह्मणों की दशा

यह तो महाभारत-काल का चित्र था। पर यहीं ब्राह्मणों और क्षत्रियों के पारस्परिक कलह का अन्त नहीं हुआ। जैसा हम ऊपर कह आए है, बौद्ध मत फैलाकर क्षत्रियों ने फिर से एक बार ब्राह्मणी सत्ता को छिन्न-भिन्न कर डालने का प्रबल प्रयत्न किया। बौद्ध काल में क्षत्रिय लोग अपने को अध्यात्म गुरु कहने और ब्राह्मणों से अधिक प्रतिष्ठित समझने लगे। उस समय का साहित्य ब्राह्मणों की निन्दा से भरा हुआ है। सब कहीं क्षत्रियों की बड़ाई की गई है और ब्राह्मणों का उल्लेख अपमानजनक शब्दों में किया गया है। "जातक कथाओं" में क्षत्रिय लोग सब वर्णों से ऊँचे समझे गये है और ब्राह्मणों के लिए "नीच ब्राह्मण", "तुच्छ ब्राह्मण" आदि शब्दों का प्रयोग किया गया है।—देखो "बौद्ध कालीन भारत" अध्याय ग्यारह।

"तित्तर जातक" में एक कथा है कि एक बार बुद्धदेव ने भिक्षुओं की सभा में पूछा कि सब से अधिक और सब से पहले किसका सम्मान होना चाहिए? इस के उत्तर में कुछ भिक्षुओं ने कहा—"**खत्तिय कुलापब्बजिते**," अर्थात्—"क्षत्रिय कुल में उत्पन्न

हुए भिक्षुओं का। " बुद्ध के समय में और उसके बाद भी बहुत दिनों तक सब जातियों के लोग साधु बनते थे और समाज में उनका बहुत आदर था, क्योंकि बुद्ध का उपदेश था कि मनुष्य की श्रेष्ठता का कारण उस का धर्माचरण है, न कि उस का जाति-भेद। भगवान् बुद्ध ने मातङ्ग चाण्डाल को गले लगा कर भिक्षु बनाया था। बडे बडे ब्राह्मण उसकी सेवा में उपस्थित हुआ करते थे। परन्तु अब्राह्मण भिक्षुओं का सम्मान समाज मे बहुत दिन तक टिक न पाया। ऊँच-नीच का भेद-भाव जो बुद्ध के समय जड़ जमाने जा रहा था, बाद को उसने अपनी जडे जमा लीं। धर्माचरण करनेवाले साधुओं का मान कम होने लगा। 'दिव्य अवदान' में अशोक और उसके मंत्री यश की कथा है। अशोक भिक्षुओ की वन्दना किया करता था। उसके मंत्री यश को यह बात अच्छी न लगी। उस ने अशोक से कहा—"महाराज, इन बुद्ध मत के साधुओ में सब जाति के लोग होते है; अपने राजमुकुटधारी शिर को उन के सामने झुकाना ठीक नहीं है।" अशोक ने यश को उस समय कोई उत्तर न दिया और थोडे दिन बाद भेड़-बकरी आदि खाए जानेवाले जन्तुओ को मँगा कर उनको बेंचने के लिए अपने लोगों को भेजा। यश को मरे हुए मनुष्य का शिर देकर बेंच आने को कहा। बकरे आदि के शिर बिक गये। कुछ पैसा भी मिला। पर मनुष्य का शिर किसी ने न लिया। तब अशोक ने यश से कहा—"इस नर-मुण्ड को बिना दाम लिए ही किसी को दे दो।" पर इसे मुफ्त में भी किसी ने न लिया। लेने की बात तो दूर, जहाँ यश शिर को ले जाता, लोग घृणा करते। उसे कोई निकट भी खड़ा न होने देता। बाद में यश ने अशोक से कहा कि "मुफ्त में भी इस शिर का लेनेवाला कोई नहीं है।" अशोक ने पूछा—"इसे लोग मुफ्त भी क्यों नहीं लेते?" यश ने कहा—"महाराज, इस शिर से लोग घृणा करते है?" अशोक ने पूछा—"क्या इसी शिर से लोग घृणा करते है या सब लोगों के शिरों से लोग घृणा करते है?" यश ने कहा—"महाराज, किसी भी मनुष्य का शिर काटकर ले जाया जाय, लोग उस से घृणा करेंगे।" अशोक ने पूछा—"क्या मेरे शिर की भी यही दशा होगी?" यश उत्तर न दे सका। उसे डर लगा कि कहीं सच्चा उत्तर देने से राजा को बुरा न लगे। पर बाद को जब अशोक ने उसे अभयदान दिया तो उस ने कहा—"महाराज, आप के शिर से भी लोग इसी प्रकार घृणा करेंगे।"

तब अशोक ने कहा—" जो शिर इस तरह की घृणा का पात्र है, वह यदि भिक्षुओं के सामने झुका, तो तुम को बुरा क्यों लगा ? "

अशोक जैसे लोग जब तक रहे, धर्माचरण में सब का समान अधिकार रहा। पर बाद में ब्राह्मणों को छोड़ कर दूसरी जाति के लोग यदि साधु भी हो जाते तो उनका न समाज मे उतना आदर होता और न वे धर्म-गुरु ही हो सकते थे। अवस्था यहाँ तक पहुँची कि लोग बुद्ध को भी गालियाँ देने लगे। लोग कहने लगे कि बुद्ध क्षत्रिय था—उसे धर्मोपदेश देने का कोई अधिकार न था। कुमारिल भट्ट ने स्पष्ट कहा है—" जिस बुद्ध ने क्षत्रिय हो कर भी धर्मोपदेश और भिक्षावृत्ति को अपना-कर स्वधर्म-त्याग किया वह ठीक-ठीक धर्मोपदेश देगा, इस पर कैसे विश्वास करलें? और रही अहिंसादि जो वेदादि सच्छास्त्रों मे भी है वह भी (बुद्ध या बुद्ध के शिष्य के उपदेश से ग्रहण की जाय तो) उसी प्रकार निकम्मी और अविश्वास्य है जैसे कुत्ते की खाल में पड़ा दूध (अपवित्र) निकम्मा होता है। " (मी. तंत्रवार्तिक १, ३, २-३)

जैन साहित्य की भी यही दशा है। " जैन कल्प-सूत्र " में महावीर के जन्म की एक विचित्र कथा कही गई है। उसमें लिखा है कि महावीर जब पुष्पोत्तर नाम के स्वर्ग से जन्म लेने के लिए उतरे तो ऋषभदत्त नामक ब्राह्मण की पत्नी देवानन्दा के गर्भ में आए। परन्तु इस के पहले यह कभी नहीं हुआ था कि किसी महापुरुष ने ब्राह्मण कुल में जन्म लिया हो। इसलिए शुक्र ने इस महापुरुष को देवानन्दा के गर्भ से हटा कर रानी तृषला के गर्भ मे रख दिया।—" बौद्धकालीन भारत " तीसरा अध्याय।

अवतारों का वर्ण

बडे आश्चर्य की बात है कि दश अवतारों की कथा में एक भी महापुरुष का ब्राह्मण घराने में उत्पन्न होना नहीं पाया जाता। दश अवतारों में केवल चार ही—राम, कृष्ण, बुद्ध और परशुराम गर्भ से उत्पन्न हुए माने गये हैं। इन में तीन के क्षत्रिय होने में तो कोई संदेह ही नहीं। पर चौथे भी ब्राह्मणाभास क्षत्रिय ही समझे जाते है। इस से उनका स्वभाव और आचार-व्यवहार भी क्षत्रियों का सा पाया जाता है। उनके क्षत्रिय होने की बात महाभारत के अनुशासन पर्व के तीसरे अध्याय में वर्णित उनकी जन्म-कथा सुनने से स्पष्ट हो जाती है।

क्षत्रियों की पराजय

जैसा कि ऊपर कहा गया, ब्राह्मणों ने अपनी चालाकी से बौद्ध-धर्म को भारत से विदा कर दिया और क्षत्रियों के प्रबल प्रयास को विफल कर दिया। क्षत्रिय लोग अपने इस निरन्तर प्रयास को विफल होते देख हतोत्साह हो गये और ब्राह्मणी सत्ता की प्रचण्डता दश गुना अधिक हो गई।

इसके बाद किसी ने उन का विरोध नहीं किया। दिन पर दिन उनका बल बढ़ता गया। पौराणिक काल में चालाक ब्राह्मणों को "भूसुर" अर्थात् पृथ्वी के देवता की उपाधि दी गई। पर अबतक भी ब्राह्मणों को पूजनीय होने के लिए विद्वान होना आवश्यक था। गरुड पुराण में तो अशिक्षित ब्राह्मण का श्राद्ध आदि कर्मों में सम्मिलित होना भी निषिद्ध है।

परन्तु आगे चलकर यह अड़चन भी हटा दी गई। ऐसे-ऐसे श्लोक रचकर पुराने और नये ग्रंथों में डाल दिए गये, जिनमें ब्राह्मण होने के लिए एक विशेष घराने मे जन्म लेना ही पर्याप्त बताया गया, उसके आचार-व्यवहार और योग्यता की बिलकुल परवाह नहीं की गई। अतएव महाभारत[1] में लिखा मिलता है कि भले या बुरे किसी भी कर्म को करते हुए ब्राह्मण का तिरस्कार नहीं करना चाहिए। मनुस्मृति[2] कहती है कि ब्राह्मण यदि पूर्णतया पापों में लिप्त हो तब भी उसे न मारे।

ब्राह्मण जन्म लेते ही पृथ्वी के समस्त जीवों में श्रेष्ठ होता है, सब प्राणियों का ईश्वर होता है और धर्म के खज़ाने का पोषक होता है (मनु.१-९९) जैसे अग्नि चाहे संस्कार-युक्त हो और चाहे संस्कार-रहित, महान देवता है, वैसे ही ब्राह्मण चाहे विद्वान् हो और चाहे मूर्ख, बहुत बड़ा देवता है। जैसे महा तेजवाला अग्नि मरघट में शव को जलाने से भी दूषित नहीं होता, किन्तु यज्ञ में हवन किए जाने पर फिर वृद्धि को प्राप्त होता है, वैसे ही सब अनिष्ट और पाप-कर्म करते रहने पर भी ब्राह्मण सदा पूज्य ही है, क्योंकि वह परम महान देवता है (मनु ९।३१७-३१९)। पाराशर[3]-स्मृति कहती है कि ब्राह्मण चाहे बुरे चरित्रवाला भी हो, पूज्य है; पर शूद्र चाहे जितेन्द्रिय हो, पूज्य नहीं। इसी

---

१. **ब्राह्मणो नावमन्तव्यः सदसद्वा समाचरन्।** आदिपर्व, १९०-१३

२. **न जातु ब्राह्मणं हन्यात् सर्वपापेष्वपि स्थितम्।** मनु. ८-३८०

३. **दुःशीलोऽपि द्विजः पूज्यो नतु शूद्रो जितेन्द्रियः।**
कःपरित्यज्य गां दुष्टां दुहेच्छीलवतीम् खरीम्॥ पाराशरस्मृति। ८-३३

प्रकार "नारायण[1] सार-संग्रह" में लिखा मिलता है कि ब्राह्मण चाहे मैला हो चाहे पवित्र, वह मेरी पूजा कर सकता है। पर स्त्री और शूद्र का कर-स्पर्श मुझे वज्र से भी अधिक कठोर लगता है।" फिर गोस्वामी तुलसीदास ने तो स्पष्ट ही कह दिया है—

पूजिए विप्र शील गुण हीना। शूद्र न गुन गन ज्ञान प्रवीना॥

श्रीधराचार्य[2] कहता है—" ब्राह्मणत्व का योनि-संबध-ज्ञान बताने के लिए विशुद्ध ब्राह्मण की सन्तान से उत्पन्न हुए (मनुष्य) की उत्पत्ति मात्र कारण है, यही ब्राह्मणत्व है।

कुमारिल भट्ट कहता है—" सन्तान की जाति वही होती है जो उसके माता-पिता की है। इस में उत्पादक जाति का स्मरण (अपेक्षित) होता है। यह उत्पाद्य और उत्पादक का संबंध माता को ही विदित होता है, दूसरों को तो अनुमान से अथवा आप्तोपदेश से इसका ज्ञान होता है। स्त्रियों में कहीं-कहीं व्यभिचार होने के कारण उस संबंध का ज्ञान इतर व्यक्तियों को भी हो सकता है। परन्तु सब कहीं ऐसी कल्पना करना उचित नहीं। कारण यह कि महाकुलीन स्त्रियॉ बडे प्रयत्न से अपने पातिव्रत्य की रक्षा करती है। इसी (कुल-धर्म रक्षा के) कारण क्षत्रिय एवं ब्राह्मण अपने पिता-पितामह की परम्परा को अक्षुण्ण बनाए रखने के लिए शिलालेख आदि स्मारक स्थापित करते है। सवर्णों से (ब्राह्मण आदि से ब्राह्मणी आदि में) उत्पन्न हुए (सन्तान) का दूसरा वर्ण-धर्म नहीं हो सकता[3]

---

१. **ब्राह्मणैः सवपूज्योऽहं शुचैरप्यशुचैरपि।**
स्त्री शूद्रयोः करस्पर्शो वज्रादपि सुदुष्करम्॥

२. **ब्राह्मणत्वस्य योनि संबंधज्ञाने प्रतीति कारणं विशुद्ध ब्राह्मण सन्तति-जस्य उत्पतिमात्रानुबंधं ब्राह्मणत्वम्—कन्दली।**

३. अत्रोदत्पादक जाति स्मरणमयंचोत्पाद्योत्पादक संबंधो मातुरेव प्रत्यक्षः, अन्येषान्तु अनुमानाप्तोपदेशादवगतं कारणं भवति। नच स्त्रीणां क्वचिद् व्यभिचार दर्शनात् सर्वत्रैव कल्पना युक्ता। विशिष्टेन हि प्रयत्नेन महाकुलीनाः परिरक्षन्त्यात्मानम्। अनेनैव हेतुना राजभिः ब्राह्मणैश्च स्वपितृपितामहादि-पारम्पर्याविस्मरणार्थं समूह लेख्यानि प्रवर्त्तितानि। सवर्णेन चोत्पादितस्य नैव वर्णान्तरत्वापत्तिः।—**कुमरिलभट्ट कृत तन्त्रवार्तिक**, १,२,१।

कुछ ऐतिहासिक प्रमाण

ऊपर दिए वर्णन से यह बात स्पष्ट हुए बिना नहीं रहती कि वर्णभेद, जो आरम्भ में विभिन्न रुचियों और योग्यताओं के अनुसार लोगों की मनोगत बाँट पर आधारित था और जिसका उद्देश्य समाज के जीवन को सुखमय बनाना था, किस प्रकार धीरे-धीरे जन्ममूलक हो कर परस्पर ईर्ष्या-द्वेष और कलह का कारण बन गया। फिर भी यह नहीं कह सकते कि जात-पॉत-तोड़क विवाह एकदम बंद हो गये थे।

स्मृतियों के प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष प्रमाणों के अतिरिक्त ऐतिहासिक प्रमाण भी हैं, जो सिद्ध करते हैं कि उस काल में जात-पॉत-तोड़क विवाह प्रचलित थे। ईसा के दो शताब्दी पूर्व ब्राह्मण राजा अग्निमित्र ने क्षत्रिय राजकुमारी मालविका से विवाह किया। इसी शताब्दी के एक लेख से प्रकट होता है कि श्रुतियों और स्मृतियों के माननेवाले एक कट्टर ब्राह्मण ने एक क्षत्रिय कन्या से विवाह किया। चौथी शताब्दी में एक ब्राह्मण परिवार की कन्या वैश्य के घर में ब्याही गई। प्रतिहार राजपरिवार के प्रवर्तक की दो पत्नियाँ थीं—एक ब्राह्मण और दूसरी शूद्र। दोनों पत्नियों की सन्तान एक ही घर में रहती थी। नवीं शताब्दी के राजा शेखर (ब्राह्मण) ने एक सुशिक्षित क्षत्रिय स्त्री से विवाह किया था। "क्षत्रिय सागर" की कथाओं में हम पाते हैं कि आरम्भ मे माता-पिता अपनी कन्या के लिए चारों वर्णों के वरों का चुनाव करते थे। फिर अपनी कन्या से पूछते थे कि वह किसको पसंद करती है। एक कहानी में अशोकदत्त नामक एक ब्राह्मण का एक राजकुमारी से विवाह होता है। इस विवाह का वर्णन करते हुए कथाकार कहता है, मानो विद्या और शील का संबंध हुआ हो। नवीं शताब्दीके आरम्भ तक जात-पॉत-तोड़क विवाहों की आज्ञा थी। श्रुतियों और स्मृतियों में दृढ़ विश्वास रखनेवाले ब्राह्मण तक जात-पाँत तोड़कर विवाह करते थे। यह न समझना चाहिए कि आन्तरजातीय विवाह उस समय की साधारण प्रथा थी। साधारणतः विवाह अपनी ही जाति में होता था। पर यदि किसी विषय में समझा जाता था कि आन्तरजातीय विवाह अधिक उपयुक्त है तो स्मृतिकार कोई आपत्ति न करते थे। वे ऐसे विवाह के लिए अनुमति दे देते थे और सन्तानों को वही धार्मिक और सामाजिक अधिकार मिलते थे जिनका पिता अधिकारी था।

दसवीं शताब्दी से समाज का दृष्टिकोण बदलने लगा। स्मृतियों ने घोषणा करना आरम्भ कर दिया कि यद्यपि आन्तरजातीय विवाह एक समय में प्रचलित था पर कलियुग में उस के लिए आज्ञा नहीं होनी चाहिए। अलबेरुनी के लेखो से विदित होता है कि प्राचीन लेखक जैसे ब्राह्मण को किसी भी जाति की कन्या से विवाह करने की अनुमति देते थे, वैसे ग्यारहवीं शताब्दी के ब्राह्मण अपनी जाति के लोगों को अनुमति नहीं देते थे। बारहवीं शताब्दी में राजतरङ्गिणी के ब्राह्मण लेखक कल्हण ने एक दुःखद घटना का उल्लेख किया है कि काश्मीर के राजा संग्रामराज ने अपनी बहन का विवाह एक ब्राह्मण युवक से किया। इस विवाह पर कल्हण ने रोष प्रकट करते हुए कहा है—"इस राजा की मूर्खता देखो। इसने यह नहीं देखा कि आन्तरजातीय विवाह कर के वह अपने कुल को कलङ्कित कर रहा है। वर और वधू में कितना अन्तर है। वधू का विवाह किसी जगद्विजेता से होना चाहिए था। उसका विवाह एक ब्राह्मण पुजारी से हुआ जो भिक्षा पर जीता है।" इस ब्राह्मण कह्लण के इन शब्दो से प्रकट होता है कि बारहवीं शताब्दी में आन्तरजातीय विवाह लोकप्रिय न थे।

लोकप्रिय न रहने का कारण

विभिन्न जातियों में उस समय सांस्कृतिक भेद-भाव इतना बढ़ चुका था कि विवाह-संबंध सुखदायक नहीं हो सकता था। पहले ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य सभी संस्कृत और वेद पढ़ते और दूसरे संस्कारों का पालन करते थे। बहुत दिनतक सभी मांसाहारी रहे। स्मृतियों ने बालक के "अन्न प्राशन" और श्राद्ध के अवसर पर मांसाहार की व्यवस्था दी है। काल की गति से यह सांस्कृतिक एकता मिटने लगी। ब्राह्मणों ने मांस खाना छोड़ दिया। वे बड़ी तत्परता से सभी संस्कारों का पालन करने लगे। ब्राह्मणेतरों ने उन्हें छोड़ दिया। वेदाध्ययन ब्राह्मणों तक सीमित हो गया। मध्ययुग में ब्राह्मण अधिक कट्टर और संस्कारवादी बन गये। उन्होंने संध्या और स्नान में वृद्धि कर दी और कई प्रकार के व्रत रखने लगे। अब्राह्मणों ने द्विकाल संध्या का भी परित्याग कर दिया। जब ब्राह्मणों और अब्राह्मणों में इतना भेद हो गया तब आन्तर-जातीय विवाह असंभव हो गया। निरामिषभोजी ब्राह्मण लड़के और मांसाहारी क्षत्रिय लड़की का विवाह कैसे साध्य हो सकता था? ब्राह्मणों ने अब

धर्मशास्त्र के दिए हुए सब जातियों की कन्या के साथ विवाह करने के अधिकार को छोड़ दिया। वे एक ही जाति में विवाह किए जाने पर बल देने लगे। दूसरी जातियों ने भी उनका अनुकरण किया। बस, बारहवीं शताब्दी के आरम्भ से हम पाते है कि हिन्दू-समाज से जात-पाँत-तोड़क विवाह का लोप हो गया। पर जिस सांस्कृतिक भेद के कारण स्मृतिकारों ने जात-पाँत-तोड़क विवाहों पर रुकावट लगाई थी वह अब तेज़ी से दूर हो रहा है। विभिन्न जातियों के बहुत से युवक और युवतियाँ शिक्षा-व्यवसाय और राजनीतिक सिद्धान्तों की दृष्टि से एक ही सांस्कृतिक धरातल पर आगये है। इसलिए इस युग में उन के विवाह पर इस कारण रोक नहीं लगानी चाहिए कि उनकी जाति अलग-अलग है। जात-पाँत-तोड़क विवाह के लिए उनको अनुमति न देकर हम उन्हें विवश करते हैं कि वे हिन्दुत्व का परित्याग कर किसी दूसरे समाज का आश्रय ग्रहण करें।

छठा परिच्छेद

वर्णव्यवस्था में शूद्र की स्थिति

पिछले परिच्छेद से यह बात स्पष्ट हो गई होगी कि सत्ता को हथियाने के लिए ब्राह्मण और क्षत्रिय किस प्रकार एक दूसरे से दाव-पेच खेलते थे और अन्त में वर्ण को जन्म से ठहराकर किस प्रकार ब्राह्मणों ने क्षत्रियों के सब प्रयास विफल कर दिये। पहले ब्राह्मण बडे माने जाते थे, पर कालान्तर में उनको ब्रह्मविद्या में पछाड़कर क्षत्रिय सर्वोच्च बन बैठे। इधर ब्राह्मण इस हार को चुप-चाप सहन करने को तैयार न थे। उन्होंने गुण-कर्म का बखेड़ा हटाकर जन्म से ही ब्राह्मण का होना प्रतिष्ठित कर दिया और आज भी हिन्दू समाज में गुण-कर्म की नहीं जन्म की ही प्रतिष्ठा है। इस जन्ममूलक वर्ण-व्यवस्था में शूद्र के साथ बहुत कठोरता और अन्याय किया गया है। उसके लिए उन्नति के सब मार्ग रोक दिए गये है। उसके जीवन को नरकमय बना दिया गया है। उसकी आत्मा में जोंक लगाकर उसे जीवन्मृत कर दिया गया है। आगे हम स्मृतियों; विशेषतः मनुस्मृति, और सूत्र ग्रन्थों के कुछ विधान उद्धृत करते है। मनु[1] कहता है कि ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य ये तीन वर्ण द्विजाति है, चौथी एक जाति शूद्र की है; पाँचवाँ कोई वर्ण नहीं। पतञ्जलि[2] अपने अष्टाध्यायी महाभाष्य में लिखता है कि शूद्र दो प्रकार के होते है—एक अवहिष्कृत और दूसरे वहिष्कृत। तक्षा और अयस्कार आदि जो द्विजों के बर्तन छू सकते

---

1. ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यस्त्रयो वर्णा द्विजातयः।
चतुर्थ एक जातिस्तु शूद्रो, नास्ति तु पंचमः। मनु० १०-४

2. शूद्राणामनिरवसितानाम्। (२।४,१०)
अवहिष्कृतानां शूद्राणां प्राग्वत्। तक्षास्यकारम्।
पात्राद्वहिष्कृतानान्तु चाण्डाल-मृतपाः।

हैं, अवहिष्कृत या अनिरवसित हैं। और जो द्विजों के पात्रादि नहीं छू सकते वे चाण्डाल और मृतप आदि निरवसित या वहिष्कृत शूद्र हैं।

"शूद्र से सेवा ही कराए, चाहे वह मोल लिया हुआ हो और चाहे न मोल लिया हुआ, क्योंकि ब्रह्मा ने शूद्र को ब्राह्मण की दासता के लिए ही उत्पन्न किया है।" (मनु० अध्याय ८, श्लोक ४१३-४१४ और अध्याय १०-१२३)

"शूद्र को झूठा अन्न, पुराने कपडे, अन्न की पछोड़न और पुराना वर्तन भांडा देना चाहिए।" (मनु० अध्याय १०—१२५)

"धन कमाने की शक्ति रखते हुए भी शूद्र को धन का संचय नहीं करना चाहिए, क्योंकि शूद्र धनवान होजाने पर ब्राह्मण को बाधा देता है। (मनु० अध्याय १०—१२९)

"यदि अधम जाति शूद्र ऊँची जाति के कर्मों को करके धन कमाने लगे, तो राजा उसका सब धन छीन कर उसे देश से निकाल दे।" (मनु.१०-९६)

"शूद्र को बुद्धि नहीं देनी चाहिए, न यज्ञ का उच्छिष्ट और न होम से बचा हुआ भाग (हविष्), न धर्म का उपदेश देना चाहिए। यदि कोई शूद्र को धर्मोपदेश और व्रत का आदेश करता है तो वह उस शूद्र के साथ असंवृत नामक अंधकारमय नरक में पड़ता है।" (मनु. अध्याय ४ श्लोक ८०-८१)

"शूद्र यदि वेद को सुन ले तो उस के कानों में पिघला हुआ सीसा और लाख भरा देनी चाहिए। यदि शूद्र वेद-मंत्र का उच्चारण करे तो उसकी जीभ कटवा देनी चाहिए। यदि वेद को याद करे तो उसका शरीर चीर डालना चाहिए *।"—गौतम धर्म-सूत्र १२-४ और ब्रह्मसूत्र, शांकरभाष्य अ. १, प० ३, अध्याय ९, सू. ३८।

"ब्राह्मण निःसंकोच होकर शूद्र का धन ले ले, क्योंकि शूद्र का अपना कुछ भी नहीं। उसका सब धन उसके स्वामी (ब्राह्मण) का ही है।"—मनु अध्याय ८-४१७

"बिल्ली, नेवला, चाष, (चिड़िया) मेंढक, कुत्ता, गोधा, उल्लू और कौए की हत्या में जितना पाप होता है उतना ही शूद्र की हत्या में होता है।" मनु० ११-१३१

---

* **अथाहास्य वेदमुपशृण्वतस्त्रपुजतुभ्यां श्रोत्र प्रतिपूरण-मुदाहरणे जिह्वाच्छेदो धारणे शरीरभेदः ॥**

—गौतम धर्म-सूत्र १२-४

" यदि शूद्र द्विजातियों को कड़ी अर्थात् चुभनेवाली बात कहे तो उस की जीभ काट डालनी चाहिए, क्योंकि वह निकृष्ट अंग से उत्पन्न हुआ है। यदि शूद्र द्रोह से द्विजातियों के नाम और जाति का नाम[1] ले तो उसके मुँह में जलती हुई दश उँगली की कील ठोंकनी चाहिए। यदि शूद्र अहंकार से ब्राह्मण को धर्मोपदेश[2] करे तो राजा उसके मुंह और कान में गरम तेल डलवा दे। यदि शूद्र उच्च जातियों के साथ एक आसन पर बैठने की इच्छा करे तो राजा उसकी कमर दाग़ कर उसे देश से निकाल दे अथवा उसके चूतड़[3] कटवा दे।"—मनु० अध्याय ८ श्लोक २७०,२७१,२७२,२९१,

" यदि शूद्र जप और होम आदि शुभ कार्यों मे लगा है तो वह राजा से कठोर दण्ड पाने के योग्य है, क्योंकि जप-होम में तत्पर होने के कारण वह राजा के देश का नाश करनेवाला है, जैसे अग्नि का नाशक जल है।" अत्रिस्मृति, ९

" जप-तप, तीर्थ-यात्रा, संन्यास-ग्रहण, मंत्र-साधन और देवता की आराधना, इन छः कर्मों के करने से स्त्री और शूद्र पतित हो जाते हैं।" अत्रिस्मृति, ३३-३४

" जो अज्ञानी ब्राह्मण शूद्र के शव के साथ जाता है वह तीन दिन और तीन रात अशुद्ध रहता है। इसलिए द्विज न तो शूद्र के शव का स्पर्श करे और न दाह कराए। यदि वह मृत शूद्र को देख ले तो सूर्य के दर्शन से शुद्धि होती है। यह पुरातन मर्यादा है।" पाराशर-स्मृति ५५-५८

" ब्राह्मण दुश्चरित्र भी हो, तब भी पूजने योग्य है, शूद्र चाहे जितेन्द्रिय हो तब भी पूज्य नहीं, क्योंकि ऐसा कौन है जो दुष्ट गौ को छोड़कर सुशीला गधी को दुहेगा।" पाराशर-स्मृति ८-३३

---

१. नामजातिग्रहं त्वेषामभिद्रोहेण कुर्वतः
निक्षेप्योऽयोमयः शङ्कुर्ज्वलन्नास्ये दशाङ्गुलः। ८-२७१

२. धर्मोपदेशं दर्पेण विप्राणामस्यकुर्वतः।
तप्तमासेचयेत्तैलं वक्त्रे श्रोत्रे च पार्थिवः॥ ८-२७२

३. महासनमभिप्रेप्सुरुत्कृष्टस्यापकृष्टजः।
कट्याकृताङ्कोनिर्वास्यः स्फिचं वास्यावकर्तयेत्॥ ८-२८१

"जो शूद्र द्विजों की सेवा छोड़कर दूसरा काम करता है, उसकी आयु कम हो जाती है और निःसंदेह नरक में पड़ता है।" पाराशर अध्याय २, श्लो. १९–२०

"यदि शूद्र आर्य अर्थात् द्विज स्त्री से समागम करे तो दण्ड के रूप में राजा उसकी लिङ्गेन्द्रिय को कटवा दे और उसका धन छीन लेवे। यदि वह अपनी रक्षा करता हो तो उसका वध करा दे।"—गौतम स्मृति अध्याय १२ और मनु० ८–३५९

"जिस गाय का दूध अग्निहोत्र में काम आता है उसे शूद्र को न दोहने देना चाहिए।"—काठक संहिता ३१–२

"यज्ञ करते समय शूद्र से बोलना नहीं चाहिए और न ही यज्ञ के समय शूद्र को वहाँ वर्तमान होना चाहिए।"—शतपथ ब्राह्मण ३। १–१–१०

"चिकित्सक, शिकारी, कुलटा स्त्री, चोर, हिजड़ा, अव्रर्ण, बढ़ई, धोबी, कलवार, गुप्तचर, मोची और शूद्र का दिया अन्न न खाए।" वसिष्ठ धर्मसूत्र १४।१–४

"यदि ब्राह्मण शूद्र का दिया अन्न खाकर मर जाय, तो वह ग्राम–शूकर बनकर या उसी शूद्र के परिवार में पुनः जन्म लेता है। शूद्र का दिया भोजन करने के उपरान्त यदि ब्राह्मण अपनी ब्राह्मणी स्त्री से भी समागम करता है, तो उस स्त्री के गर्भ से जन्म लेनेवाले पुत्र उस भोजन देनेवाले (शूद्र) के पुत्र होंगे, और वह स्वर्ग को नहीं जायगा"—वसिष्ठ धर्मसूत्र ६। २७–२९

"ब्राह्मणी के साथ गमन करनेवाले शूद्र को आग में फेंक देना चाहिए।"—संवर्त-संहिता (१५२–१५४; १६६–१६८)

"शूद्र जिस भी अंग से ब्राह्मण का अपमान या हानि करे, राजा शूद्र का वही अंग कटवा दे। यदि वह उसी आसन पर बैठे जिस पर ब्राह्मण बैठा है, तो उसके चूतड़ों को दाग कर उसे देश से निकाल दे। यदि वह ब्राह्मण पर थूके तो उस के दोनों होंठ कटा दे। यदि उस पर पादे, तो उस की गुदा और यदि वह गाली दे तो उस की जीभ कटवा दे।" विष्णु स्मृति ५।१९–२५

शूद्र के प्रति यह अन्याय उस समय बहुत अखरने लगता है जब हम

स्मृतिकारों को एक ही प्रकार के अपराध के लिए शूद्र को बहुत कठोर और ब्राह्मण को बहुत हलका दण्ड देते पाते हैं। उदाहरणार्थ, देखिए—

"शूद्र स्त्री के साथ व्यभिचार करनेवाले द्विज पुरुष को देश-निकाला दिया जाय। पर जो शूद्र किसी द्विज स्त्री से व्यभिचार करे, उसे प्राण-दण्ड दिया जाय।" आपस्तम्ब धर्मसूत्र प्रश्न २, पटल १०, खंड २७, सूत्र ८–९.

"ब्राह्मण के साथ समागम करनेवाली कन्या को कुछ भी दण्ड न दे, और नीच जाति के पुरुष से संबध करनेवाली कन्या को ही सँभाल कर घर में रक्खे। ब्राह्मण जाति की कन्या से समागम करने वाला शूद्र वध के योग्य है।" मनु० ८–३६५–३६६.

सर्वत्र ब्राह्मण की बहुत बड़ाई की गई है। जैसे—

"मुख से उत्पन्न होने के कारण ब्राह्मण सबसे बड़े हैं और सृष्टि के प्रभु या स्वामी है।" मनु.१–९३.

"देवता लोग ब्राह्मणों के मुख द्वारा ही भोजन करते है। इसलिए संसार में ब्राह्मण से बढ़कर कोई प्राणी नहीं।" मनु. १–९५.

"संसार में जो कुछ है सब ब्राह्मण का है, क्योंकि जन्म से ही वह सबसे श्रेष्ठ है।" मनु १–१००

"ब्राह्मण जो कुछ भी खाता, पहनता और देता है, वह सब उसका अपना ही है। संसार के सब लोग ब्राह्मण की कृपा से ही खाते-पीते और लेते-देते हैं। मनु. १–१०१

"इस देश पर द्विजाति लोग प्रयत्न के साथ अपना अधिकार जमाए रक्खें और शूद्र किसी दूसरे देश में वृत्ति–पीड़ित हुआ निवास करे।" मनु. २–२४

शूद्रों के विरुद्ध बनाए गये ये काले क़ानून सचमुच कभी प्रयोग में भी लाए गये थे, यह निश्चित रूप से कहना कठिन है। जिस इतिहास का हमें ज्ञान है, कम से कम उसमें इन क़ानूनों के प्रयोग की किसी घटना का उल्लेख नहीं मिलता, वास्तव में ये स्मृतिकार ब्राह्मण उतने क्रूर और अमानुषिक नहीं हो सकते जितना क्रूर और अमानुषिक उन्होंने अपने को अपने इन ग्रन्थों में प्रकट किया है। इन लोगों ने सचमुच बहुत सी बातें ऐसी लिख दी है जिनसे वे परले दरजे के स्वार्थी, अन्यायी और क्रूर प्रतीत होने लगते हैं।

शूद्रों पर अन्याय और अत्याचार की एक कथा रामायण के उत्तर काण्ड में दी गई है। उसमें बताया गया है कि श्रीरामचन्द्र के राजत्वकाल में किसी ब्राह्मण का तरुण पुत्र मर गया। पिता के जीवनकाल में पुत्र का मरना एक ऐसी दुर्घटना है जो पापी और अन्यायी राजा के राज्य मे ही हो सकती है। ब्राह्मण ने आकर राम के पास शिकायत की। उसने कहा कि आप के राज्य में कोई बड़ा भारी पाप हो रहा है जिसके कारण मेरा लड़का मर गया है। रामचन्द्र ने चारों ओर गुप्तचर दौड़ा दिये ताकि पता लगायँ कि कौन क्या पाप कर रहा है? गुप्तचरों ने लौट कर सूचना दी कि गोदावरी के तट पर दण्डकारण्य में शम्बूक नाम का एक शूद्र अपना कर्म छोड़कर तपस्या कर रहा है, शास्त्राज्ञा के अनुसार शूद्र का एक मात्र काम द्विजों की सेवा है, तप-जप और होम-यज्ञ ब्राह्मण का काम है। वर्ण-व्यवस्था की इस मर्यादा को ठीक रखना राजा का धर्म है। बस, राम और लक्ष्मण दोनों तुरंत दण्डकारण्य में पहुँचे और उन्हों ने उस निरपराध शूद्रराज शम्बूक का वध कर डाला।

मालूम नहीं शम्बूक की हत्या एक ऐतिहासिक घटना है या कोरी कल्पना। यदि राम ने सचमुच शूद्रराज शम्बूक को इसलिए मार डाला था कि वह शूद्र होकर भगवद्भजन कर रहा था। तो इससे बढ़ कर किसी अन्याय और अत्याचार की कल्पना करना भी कठिन है। बंगाल के श्री. द्विजेन्द्रलाल राय और श्री. योगेशचन्द्र चौधुरी ने अपने "सीता" नामक नाटकों में इस घटना को बडे ही मर्मस्पर्शी ढंग से वर्णित किया है। उस नाटक का कुछ अंश पाठकों के मनोरंजन के लिए अगले परिच्छेद में दिया जाता है।

एक और बडे अन्याय की बात यह है कि ब्राह्मण के लिए तो आपत्काल में अपने वर्ण के कामों को छोड़कर दूसरा काम करलेने की अनुमति है (मनु ४। ४-९ और मनु १०-८१,८२) पर शूद्र आपत्काल में भी प्राणरक्षा के लिए कोई दूसरा काम नहीं कर सकता (मनु १०-९६)

सातवाँ परिच्छेद

निरपराध की हत्या

पहला दृश्य

स्थान—(सरयु के तट पर राजोद्यान ।)

राम—जीवन दूभर हो गया है। राजधानी नरक की भाँति मुँह खोले मुझे खाने को दौड़ती है। जानकी के साथ ही मानो मेरे जीवन के सभी सुख मुझसे सदा के लिए विदा हो गये हैं।

(मंत्री का प्रवेश)

"क्यों मंत्री जी, क्या समाचार है ?"

मंत्री—महाराज, क्या बताऊँ। चारों ओर दुर्भिक्ष के मारे प्रजा त्राहि-त्राहि कर रही है। लोग भूखों मर रहे हैं।

राम—मंत्रीजी, न मालूम मैंने कौन पाप किया है जिससे मेरी प्यारी प्रजा को इन दिनों ऐसी विपदाएँ उठानी पड़ रही हैं। अच्छा, आप चारों ओर निपुण गुप्तचर भेज कर पीड़ितों को सहायता पहुँचाने का काम आरम्भ कर दीजिए; जितना भी व्यय हो सके हृदय खोल कर कीजिए, प्रजा को कष्ट न होने पावे।

मंत्री—जो आज्ञा महाराज ! मैं अभी इस का प्रबंध किए देता हूँ।

(मंत्री चला जाता है)

राम—राज्य, राज्य का शासन-सूत्र सँभालना कोई हँसी-खेल नहीं। मालूम नहीं, क्यों लोग ललचाई आँखों से राजसिंहासन की ओर देखा करते हैं। यह नहीं सोचते कि यह फूलों से नहीं, काँटों से भरा है। इस राज्य को लेकर मैंने अपना सर्वस्व ही नष्ट कर डाला। प्रजा-रंजन के लिए ही मैंने प्यारी जानकी

को वनवास दे दिया। पर हाय, प्रजा फिर भी सुखी नहीं। चारों ओर अकाल पड़ रहा है। लोग हाहाकार कर रहे हैं। अब मैं क्या करूँ?

(द्वारपाल का प्रवेश)

द्वारपाल—महाराज, एक ब्राह्मण आप से मिलने आए हैं। निपट पागल मालूम होते हैं। आज्ञा हो तो उन्हें ले आऊँ, नहीं तो वे बरजोरी करने को तैयार हैं। किसी के रोके रुकनेवाले मालूम नहीं पड़ते।

राम—जाओ, उन्हें बड़े आदर के साथ तुरंत ले आओ।

(द्वारपाल का जाना)

न मालूम यह ब्राह्मण कौन है। इस समय न जाने क्या सूचना ले आए हैं।

(ब्राह्मण का प्रवेश)

ब्राह्मण—महाराज, मेरा तरुण पुत्र मर गया। मुझ वृद्ध के जीवन का सहारा छिन गया। महाराज, ऐसा क्यों हुआ; इसका उत्तरदायित्व आप पर ही है।

राम—ब्राह्मण देवता, आप को मालूम नहीं, मैंने प्रजा के लिए अपने हाथों अपना कलेजा काट कर फेंक दिया है। क्या उसी का यह फल है?

ब्राह्मण—महाराज, शासन करना सरल कार्य नहीं। पता लगाइए, या तो आप ही ने कोई महापाप किया है या आप के राज्य में कहीं पाप हो रहा है। इसी से आज मेरा प्यारा पुत्ररत्न लुट गया।

(वसिष्ठ का प्रवेश)

वसिष्ठ—राम!

राम—गुरुदेव, मैं बड़ा पापी हूँ। मेरे ही पापों के कारण बेचारे ब्राह्मण क जवान बेटा मर गया। अब आप ही कहे, मैं इसका क्या प्रायश्चित्त करूँ?

वसिष्ठ—प्रिय राम, तुम क्यों व्यर्थ में दुःखी होते हो? मैं इन सब अनर्थों का कारण तुम्हें बतलाता हूँ। गोदावरी तट पर बसनेवाले कुछ महर्षियों ने मुझ से कहा है कि वहाँ शम्बूक नामक किसी शूद्र ने अपना कर्म छोड़ कर ब्राह्मणों का कर्म आरम्भ कर दिया है और यज्ञ कर रहा है। इसीलिए आज देश में ये सब उपद्रव हो रहे हैं। वह वर्णाश्रम-धर्म का विरोधी दण्डकारण्य में

छिपा हुआ यज्ञ कर रहा है। उसने समाज की व्यवस्था भङ्ग कर दी है। वह पूरा-पूरा दण्ड पाने का पात्र है। तुम राजा हो; जाकर उसे दण्ड दो। बस, सब ठीक हो जायगा।

राम—अच्छा, मैं भली भाँति विवेचन करूँगा, यदि वह अपराधी हुआ तो अवश्य **दण्ड** दूँगा।

दूसरा दृश्य

स्थान—(दण्डकारण्य। राम और लक्ष्मण का प्रवेश।)

राम—लक्ष्मण, यही वह पंचवटी है, जहाँ पिता की आज्ञा का पालन करने के लिए हम लोगों ने अपने यौवन काल के कितने ही दिन जंगल में मंगल मनाते हुए बिताए थे। इस के साथ सहस्रों-लाखों स्मृतियाँ जुड़ी है। उस समय हम वनवासी होते हुए भी सुखी थे। आज अयोध्या के सिंहासन पर बैठ कर भी मुझे वह सुख नहीं है। मेरी देह में मानो अग्नि धधक रही है। सुख गया, शान्ति गई—रह गई केवल चिन्ता और स्मृति—केवल बीते दिनों की स्मृति!

लक्ष्मण—आर्य पुत्र! जो सुख फिर कभी लौटकर नहीं आता, उसके लिए मन इस प्रकार अशान्त हुआ ही करता है।

राम—पवित्र गोदावरी के तीर पर यह पंचवटी है। जनक-नन्दिनी के चरण-स्पर्श से यह पवित्र तीर्थ-स्थान बन गई है। इस भूप्रदेश की मिट्टी का एक-एक कण मुझे प्यारा है, क्योंकि इसके साथ जानकी के चरण-रज का संबंध है। आओ भाई, आज इस धूलि को मस्तक पर लगा कर हृदय की ज्वाला को शान्त करें।

(मस्तक पर धूलि लगाते हैं)

लक्ष्मण—आर्य पुत्र! वह देखिए वही प्रस्रवण पर्वत है। वहीं पहुँच कर आप को एक अरुचिकर कर्तव्य को पूरा करना है।

राम—ठीक है, मुझे तपस्वी शम्बूक मुनि को—शूद्र मुनि को—मृत्यु-दण्ड देना है। बड़ा ही दुष्कर कार्य करना है। पर प्रजा के कल्याण के लिए इस कर्तव्य को पूरा करना ही होगा। चलो, शूद्र मुनि के आश्रम को चलें।

तीसरा दृश्य

(**स्थान**—दण्डकारण्य का दूसरा भाग। शूद्र मुनि शम्बूक की यज्ञशाला)
(शम्बूक यज्ञ के लिए वेदी बना रहा है। उसी समय उसकी स्त्री तुङ्गभद्रा आती है।)

तुंगभद्रा—आर्य पुत्र !

शम्बूक—प्यारी, मैं आर्यपुत्र नहीं, घोर अनार्य-पुत्र हूँ। क्या तुम नहीं जानती हो, मेरे पिता एक ब्राह्मण के घर रह कर उसकी गौएँ चराया करते थे। वे बारह वर्ष तक उनके यहाँ रहे। तो भी उन्हें उन के घर पानी का घड़ा छूने की आज्ञा नहीं थी।

तुंगभद्रा—आप यह क्या कहते हैं ? क्या पानी का घड़ा छूने से भी अपवित्र हो जाता है ?

शम्बूक—जिन्होंने शास्त्र बनाए हैं उनका यही कहना है। हाँ, मौलिक भेद से इसमें न्यूनता या अधिकता होती है। घड़े का जल छूने से अपवित्र हो जाता है, पर ताल का नहीं।

तुंगभद्रा—अच्छा, तो क्या आप ने इतनी विद्या पढ़ी, इतने यज्ञ किए, तो भी आप आर्य नहीं हो सकते ?

शम्बूक—नहीं, ब्राह्मण लोग इस बात को कदापि नहीं मान सकते। हाँ, मैं अपने बल से-जिस से जो चाहूं कहला लूं।

तुंगभद्रा—अस्तु, ब्राह्मण लोग आप को आर्य कहें या अनार्य, पर मैं तो आर्यपुत्र ही कहूँगी। मैं तो यह बात कभी नहीं मान सकती कि मेरे स्वामी किसी ब्राह्मण, क्षत्रिय या वैश्य से किसी अंश में कम हैं।

(शम्बूक के सेवक का प्रवेश)

शम्बूक—क्यों, क्या समाचार है ?

सेवक—महाराज, दण्डकारण्य के ऋषियों ने आप के नाम राजसभा में नालिश की है कि आपने शास्त्र-मर्यादा भङ्ग कर डाली है।

शम्बूक—अच्छा ! अयोध्या तक यह नालिश पहुँच गई ! अच्छा, इसके आगे का समाचार सुनाओ।

सेवक—आप को दण्ड देने के लिए स्वयं महाराज राम यहाँ आ पहुँचे हैं।

शम्बूक—बस यही बात है? जाओ—हमारा सौभाग्य है जो घर बैठे महाराज के दर्शन होंगे।

(सेवक का जाना)

तुंगभद्रा—स्वामी! आप ने यह यज्ञ क्यों रचा? शास्त्र-मर्यादा का उल्लंघन क्यों किया?

शम्बूक—प्यारी! डरो मत। मै ऐसे शास्त्र के सामने शिर झुकाना नहीं चाहता जो मनुष्य को उसके जन्मसिद्ध उचित अधिकारों से वंचित करे। महाराज आते है तो आने दो। डर क्या है?

तुंगभद्रा—यदि महाराज, अप्रसन्न हुए तो?

शम्बूक—इसकी मुझे परवाह नहीं है। तुम्हारा स्वामी कायर और भीरु नहीं है। आज मेरे यज्ञ की पूर्ण आहुति है। तुम जा कर गोदावरी-तीर पर सीतातीर्थ में स्नान कर आओ। यज्ञ की खीर यहीं लेती आओ। तब तक मैं वेदी बनाता हूँ।

तुंगभद्रा—अच्छा, जाती हूँ। भगवान आपके मनोरथ पूर्ण करें!

शम्बूक—आज संसार भर से निराला यज्ञ होगा, जिस में एक भी ब्राह्मण सम्मिलित न होगा। शूद्र ही पुरोहित, शूद्र ही होता, और शूद्र ही ऋत्विक् होंगे। क्या अतीत मे-क्या पूर्व युगों में कभी किसी ने ऐसा यज्ञ नहीं किया होगा।

[इसी समय बहुत से निमंत्रित स्त्री-पुरुष आते और वेदी के निर्माण में लग जाते हैं। शूद्र होता वेदी के गिर्द बैठ जाते हैं। वेद-गान होता है। वेद-मंत्र पढ़ते हुए ज्यों ही शूद्र मुनि शम्बूक यज्ञाग्नि में पूर्ण आहुति देने लगते हैं उसी समय राम और लक्ष्मण आते हैं।]

शम्बूक—अहा! यह क्या? ये श्यामवर्ण कौन हैं? अहा! इसी मूर्ति के दर्शनों के लिए तो मैं आयु भर तपस्या करता रहा हूँ।

[कुछ लोग आगे बढ़कर राम-लक्ष्मण का स्वागत करते हैं। लक्ष्मण एक जगह खड़े रहते हैं। राम शम्बूक के सामने आजाते हैं।]

राम—तुम तो समझ ही गये होगे कि मैं किस लिए आया हूँ। मैं तुम्हारा काल हूँ। तुम्हें मृत्यु-दण्ड देने आया हूँ।

शम्बूक—मृत्यु-दण्ड ! राजन्, मैंने ऐसा कौन अपराध किया है जिसके लिए आप मुझे प्राण दण्ड देने आए हैं ?

राम—तुमने वर्णाश्रम-मर्यादा को भंग किया है। समाज का नियम तोड़ा है। तुम्हारे ही यज्ञ करने से ब्राह्मण का तरुण पुत्र मर गया है—दक्षिण प्रदेश में दुर्भिक्ष फैल रहा है।

शम्बूक—प्रभु, क्या आप को ठीक मालूम है कि मेरे ही कारण दुर्भिक्ष फैला है, मेरे ही कारण ब्राह्मण का बेटा मरा है ? महाराज, आपने यह भद्दी बात मुँह से कैसे निकाली ? क्या भगवती सीता को निकाल देने के साथ आपने बुद्धिमत्ता, चतुराई और न्यायप्रियता को भी हृदय से निकाल कर बाहर कर दिया है ?

राम—शूद्रराज, बात का बतंगड़ बनाने से कोई लाभ नहीं। विचार किया जा चुका है। मैं तुम्हें प्राणदण्ड देने के लिए ही आया हूँ।

शम्बूक—प्रभु, मुझे ज्ञात है कि राजा आज्ञा देते हैं तो मुझे मरना ही पडेगा। पर यह कैसी बात है कि दोषी को तो अपने दोष का ज्ञान भी नहीं हुआ, और उसका विचार चुपचाप उसकी अनुपस्थिति में ही हो गया। बड़ा विचित्र न्याय है। आपका यह पतन देख कर बड़ा दुःख होता है। राघव ! मालूम होता है, जिस सती के तेज से आप तेजस्वी बने हुए थे उसे खो कर आपने सब कुछ खो दिया।

राम—शम्बूक, मैं तुम से विवाद करने नहीं आया। मैं जो कुछ करने आया हूँ वह शास्त्रानुकूल है। तुम मरने के लिए तैयार हो जाओ। बोलो, लड़ोगे या चुपचाप सिर झुका दोगे ?

(तुङ्गभद्रा का प्रवेश)

तुंगभद्रा—आप ही राजा रामचन्द्र हैं ? प्रभु, आपका नाम तो मैं बचपन से सुनती आई हूँ। मन ही मन आप की पूजा करती हूँ, पर आज आपका यह

कैसा विचित्र न्याय है ? महाराज, आप बिना किसी अपराध के ही मेरे स्वामी को मारने आये हैं।

राम—तुम्हारे स्वामी ने शास्त्र के प्रति, समाज के प्रति विद्रोह किया है। उनका अपराध बड़ा भारी है। तुम स्त्री हो, तुम इसे क्या समझोगी ?

तुंगभद्रा—प्रभु, यदि वे सचमुच दोषी है तो उन्हें क्षमा कर दीजिए। मैं नारी हो कर सजल नेत्रों से आपसे क्षमा माँगती हूँ। राजा का भूषण क्षमा है। क्षमा के प्रताप से ही राजा के लिए यह पृथ्वी स्वर्ग बन जाती है। राजन्, क्षमा कीजिए।

राम—बहुत बड़ा अपराध तुम्हारे स्वामी ने किया है। वह क्षम्य नहीं। तुम्हारे पति के कारण ही लोगो ने खेती-बाड़ी छोड़, ब्राह्मण के कर्म करना आरम्भ कर दिया है। इस सामाजिक गड़बड़ से बडे-बडे अनर्थ हो रहे है।

शम्बूक—प्यारी, तुम क्यों व्यर्थ ही क्षमा-क्षमा चिल्ला रही हो? मैंने न तो कोई अपराध किया है, न उसके लिए क्षमा माँगता हूँ। मैंने केवल अपनी जाति की भलाई की है। उसे उत्तम कर्म सिखाए है। ब्राह्मणो ने उसे जिन अधिकारों से वंचित कर रक्खा था वे ही अधिकार मैंने उसे दे दिए। मनुष्य की स्वार्थ-पूर्ण नीति को कुचल कर भगवान की आज्ञा को शिरोधार्य किया है। रघुनाथ, आप को प्राण-दण्ड ही देना है, तो सहर्ष दीजिए। व्यर्थ क्यों विलम्ब कर रहे है ?

[शम्बूक अभिमान से छाती तान देता है। रामचन्द्र कमर से तलवार निकालते हैं। तुंगभद्रा दोनों के बीच मे आकर खड़ी हो जाती है]

तुंगभद्रा—निर्दय नरेश, मेरे स्वामी का वध करने के पहले मेरी गर्दन धड़ से अलग कर दो। चुप क्यों हो रहे ? हाथ क्यों रोक लिया ? आपने न मालूम वन के कितने हिरण मारे होंगे। माथे पर बल क्यों पड़ गये ? लो, तलवार चला दो। अबला पर हाथ उठाने से हिचकते क्यों हो ? बाल्यावस्था मे ही आपने ताडका-वध किया। राज सिंहासन पर बैठ कर आपने सती सीता को बिना किसी दोष के घर से बाहर कर उसके हृदय के तिल-तिल में आग लगा दी है। लाखों राक्षसियों का सुहाग लूट चुके हो। आज मेरे कलेजे में भी खड्ग घोंप कर जगत में अमर हो जाओ। देर क्यों करते हो ?

राम—लक्ष्मण, तुम इस नारी को मेरे सामने से हटादो।

(लक्ष्मण आगे बढ़ते हैं।)

तुंगभद्रा—किस की मजाल है जो मुझे यहाँ से हटा ले जाय? राम, यदि तुम मुझे नहीं मारते तो-लो, मेरे सामने ही मेरे स्वामी को मार डालो। सती के सामने ही उसके पति का वध कर डालो। मै भी देखूँ कि तुम्हारा हृदय किस पत्थर का बना है।

राम—सच कहती हो देवी! मेरा हृदय पत्थर का ही बना है। इस पत्थर का पसीजने का स्वभाव नहीं। सत्य के कारण ही मैंने वृद्ध पिता को रोता-चिल्लाता छोड़, वन का मार्ग लिया। सत्य के लिए ही मै ने जानकी का त्याग किया; और आज सत्य ही की रक्षा के लिए मैं शम्बूक को प्राणदण्ड देने आया हूँ।

शम्बूक—झूठी बात है रघुनाथ, आप सत्य को नहीं, सत्य के शव की पूजा करते है। सत्य तो आप से कभी का विदा हो चुका। हाँ, अपने जीवन के आरम्भ में आपने सत्य का पालन किया था, जब कि गुह चाण्डाल को छाती से लगाया था, " अनार्य " वानरों को मित्र बनाया था; शबरी के जूठे बेर प्रेम से खाए थे। पर आपने राजधानी में सिंहासन पर बैठ कर सत्य को खो दिया है—अब वह आप के पास नहीं आने का। राघव, तुम बडे अभागे हो, तो भी मै तुम्हें प्यार करता हूँ। लो, मेरा शिर उतार लो।

(आँखें बंद कर लेता है। राम उसका शिर धड़ से जुदा कर देते हैं। तुंगभद्रा अचेत हो कर गिर पड़ती है।)

तुंगभद्रा—(होश में आने पर) प्रभु! प्राणपति! आज आपने बडे भारी सत्य की रक्षा के लिए मृत्यु का आलिंगन किया है। मै वीर-पत्नी हूँ। आप के लिए मुझे रत्ती भर भी शोक नहीं। नाथ, स्वर्ग में शीघ्र ही मेरी आप से भेट होगी। परन्तु अत्याचारी राघव! इस जीवन में तुम घड़ी भर के लिए भ चैन न पाओगे। तुम्हारा सारा जीवन दुःख और शोक में ही बीतेगा। फूलों की सेज तुम्हें काँटों का बिछौना जान पडेगी। तुम चैन से एक दिन भी न सो सकोगे। जागते भी स्वप्न देखा करोगे। सहस्रों लोगों से घिरे रहने पर भी

अपने को अकेला अनुभव करोगे। कोई तुम्हारी हृदय-वेदना को नहीं समझेगा। घोर निराशा, भारी चिन्ता और मर्मान्तक पीड़ा के साथ तुम्हारी मृत्यु होगी। तुम चाहे भगवान् के अवतार साक्षात नारायण ही क्यों न हो, सती का यह शाप तुम्हें भोगना ही पडेगा।

राम—देवि ! बडे संमान के साथ राम तुम्हारा यह शाप स्वीकार करता हूँ* ।

(राम शिर झुकाता है)

* श्री. योगेशचन्द्र चौधरी के "सीता" नाटक के आधार पर श्री. राधामोहन काव्यतीर्थ द्वारा अनुवादित।

आठवाँ परिच्छेद

शार्दूल कर्ण की कथा

जातिभेद से होनेवाली हानियों को इस देश में किसी महापुरुष ने न देखा हो या देखकर भी जातिभेद को मिटाने का यत्न न किया हो, सो बात नहीं। बहुत पुराने समय में ही लोग इस प्रथा की घातक प्रवृत्ति का अनुभव करने लगे थे। पर जातिभेद के विरुद्ध विद्रोह करनेवाला पहला क्रान्तिकारी महापुरुष गौतम बुद्ध था। जैसे रावण के मारने को राम का और कंस के मारने को कृष्ण का जन्म हुआ था; उसी प्रकार मानों जातिभेद के नाश के लिए भगवान् बुद्ध अवतरित हुए थे। उन का उपदेश था—

"हे भिक्षुओ, जितनी बड़ी नदियाँ हैं, जैसे-गंगा, यमुना, अचिरवती, सरयू, और मही (गण्डक), वे सब महासागर को प्राप्त होकर अपने पहले नाम और गोत्र को छोड़ देती हैं और महासागर के नाम से प्रसिद्ध होती हैं। ऐसे ही भिक्षुओ! क्षत्रिय, ब्राह्मण, वैश्य और शूद्र ये चारों वर्ण तथागत (बुद्ध) के बताए धर्म-विनय में गृह-त्यागपूर्वक प्रव्रजित हो, पहले के नाम और गोत्र को छोड़ देते हैं। वे शाक्य-पुत्र श्रमण के ही नाम से प्रसिद्ध होते हैं।" (विनय-पिटक, चुल्लवग्ग ४)

बुद्धदेव ने बडे ही हृदयग्राही ढंग से, पर प्रबल शब्दों में, वर्णभेद की निःसारता को प्रकट किया है। उन के उपदेश प्रायः कथा के रूप में होते थे। वैसी ही एक कथा आगे दी जाती है :—

एक समय की बात है, भगवान् बुद्ध श्रावस्ती में ठहरे हुए थे। एक दिन भगवान् के प्रिय शिष्य आनन्द श्रावस्ती नगर में भिक्षा माँगने के लिए गये। उन को प्यास लगी। एक कुएँ पर एक चाण्डाल-कन्या पानी भर रही थी। लड़की का नाम प्रकृति था। आनन्द ने प्रकृति से पानी माँगा। प्रकृति बोली— "हे भिक्षु, मै चाण्डाल-कन्या हूँ, मैं आपको कैसे पानी दे सकती हूँ?" आनन्द

ने कहा—"बहन, मै जाति या कुल नहीं पूछता, मुझे पानी दो।" प्रकृति ने आनन्द को पानी दिया। पानी पीकर आनन्द चल दिए। प्रकृति को आनन्द के प्रति श्रद्धा उत्पन्न हुई। उस के मन मे आनन्द को अपना स्वामी बनाने की प्रबल अभिलाषा हुई। उस ने सोचा कि मेरी माता महाविद्याधरी कई मंत्र जानती है। वह आनन्द को लाने मे समर्थ हो सकती है। यह सोच कर वह पानी का घड़ा ले-घर गई। उस ने अपनी माता को सब वृत्तान्त कह सुनाया। माता ने कहा-"राजा प्रसेनजित महात्मा गौतम का बड़ा भक्त है। यदि उसे मालूम हो गया तो चाण्डाल-कुल के लिए बड़ा अनर्थ होगा। महात्मा गौतम वीतराग सुने जाते है। और जो वीतराग है उस पर मंत्र का कुछ प्रभाव नहीं होता। वह मंत्र को व्यर्थ कर देता है।"

प्रकृति ने कहा—"माता, यदि आनन्द मुझ को नहीं मिलेगा तो मै प्राण-त्याग कर दूँगी।"

माता बोली—"तू प्राण-त्याग मत कर; मै आनन्द को ला दूँगी।" यह कह कर प्रकृति ने अपने घर के आँगन को गोबर से लीपा और मध्य में वेदी बना कर आग जला दी। उस ने मदार के फूलों से मंत्र पढ़-पढ़ कर होम किया। विद्याधरी के मंत्र-प्रभाव से आनन्द का मन डोल गया। वह वन से निकल कर प्रकृति के घर आया और वेदी के पास बैठ गया। एकान्त मे बैठ, वह, रो-रो कर कहने लगा—"भगवन्, मै विपत्तिमें फँसा हूँ; आप मेरी रक्षा करें!" भगवान् ने अपने मंत्र-बल से चाण्डालिनी के मंत्रों को व्यर्थ कर दिया और आनन्द की रक्षा की। आनन्द चाण्डालिनी के घर से निकल कर वन की ओर चल दिया। प्रकृति ने आनन्द को जाते देख कर अपनी माता से कहा—"हे माता, आनन्द चला जा रहा है।" माता ने उत्तर दिया—"महात्मा गौतम ने मेरे मंत्रों को निष्प्रभाव कर दिया है। जो मंत्र समूचे संसार पर अपना प्रभाव रखते है उन मंत्रों को महातमा गौतम व्यर्थ कर सकते हैं। परन्तु उन के मंत्रों को प्रभावहीन करने की शक्ति किसी में नहीं।"

आनन्द सीधे भगवान् के पास गये और प्रणाम कर एक ओर बैठ गये।

भगवान् बोले—"आनन्द, अपने कल्याण के लिए इस षडक्षरी विद्या को ग्रहण करो। समूचे संसार में ऐसा कोई नहीं जो उस व्यक्ति का बाल बाँका कर

सके जिसने षडक्षरी विद्या की शरण ली है । हाँ, पूर्व जन्म के कर्म-फल को कोई नहीं मेट सकता।"

इधर प्रकृति ने सवेरा होते ही स्नान किया। नवीन वस्त्र धारण कर वह नगर-द्वार पर जा बैठी। ज्यों ही आनन्द भिक्षा कर के बाहर जाने लगे, वह भी पीछे-पीछे चलने लगी। आनन्द प्रकृति को अपने पीछे आती देख दुःखी हुआ और भगवान् के पास लौट आया। प्रकृति भी उस के पीछे-पीछे आई। आनन्द ने भगवान् से कहा—"जहाँ-जहाँ मैं जाता हूँ यह लड़की मेरे पीछे-पीछे आती है। भगवान् मेरी रक्षा करें।"

भगवान् बोले—"आनन्द, मत डरो।" फिर भगवान् ने प्रकृति से पूछा—"तू आनन्द से क्या चाहती है?"

प्रकृति बोली—"मैं आनन्द को अपना स्वामी बनाना चाहती हूँ।"

भगवान् ने पूछा—"क्या तू ने अपने माता-पिता की अनुमति ले ली है?"

प्रकृति ने उत्तर दिया—"हाँ।"

भगवान् ने कहा—"तो मेरे सामने अपने माता-पिता को ले आओ।" प्रकृति प्रणाम कर घर आई। माता-पिता प्रकृति को ले भगवान् के निकट आए।

भगवान् ने पूछा—"क्या तुम सम्मत हो!"

माता-पिता ने कहा—"हाँ।"

भगवान् ने कहा—"यदि ऐसा है, तो प्रकृति को यहाँ छोड़ कर तुम अपने घर चले जाओ।"

माता-पिता घर लौट आए। इधर भगवान् ने प्रकृति से कहा—"यदि तू आनन्द को चाहती है तो तुझे भी ऐसा ही वेष धारण करना चाहिए। प्रकृति ने इसे स्वीकार किया। भगवान् ने प्रकृति के पूर्वजन्म के पाप का नाश किया। जब प्रकृति शुद्ध और निर्मल हो गई तब उस से कहा—"ब्रह्मचर्य व्रत धारण करो।" प्रकृति ने शिर मुँडाया और पीत वस्त्र धारण किए। भगवान् ने उसे कई धर्म-कथाएँ सुनाई। उन कथाओं को सुन कर प्रकृति का मन निर्मल हो गया। तब भगवान् ने उसे चार "आर्य सत्यों" का उपदेश किया। प्रकृति ने आर्य सत्यों का पूर्ण ज्ञान प्राप्त किया। उस की भ्रान्ति दूर हुई। वह भगवान् के चरणों में गिर कर बोली—"भगवन्, मैंने बड़ा

अपराध किया जो भिक्षु आनन्द को अपना स्वामी बनाना चाहा। भगवान् मेरा उद्धार करें। मै भगवान् के सामने अपना अपराध स्वीकार करती हूँ। भगवान् मुझ पर दया करें!"

भगवान् बोले—"हे प्रकृति, तुम धर्म मे दृढ़ रहो।"

भगवान् से इस प्रकार आशीर्वाद पाकर प्रकृति को बहुत प्रसन्नता हुई। उसने सोचा कि जिस उद्देश्य से सिर मुडा कर कुल-पुत्रियॉ पीत वस्त्र धारण करती है उस उद्देश्य की प्राप्ति में मै सफल हूंगी।

जब श्रावस्ती के ब्राह्मणों ने सुना कि भगवान् ने एक चाण्डाल-कन्या को दीक्षा दी है, तब उन्होंने कहा कि चाण्डाल-कन्या किस प्रकार भिक्षुणियों की तपस्या का पूरी तरह पालन करेगी, वह ब्राह्मण-क्षत्रिय आदि के घरो मे भिक्षा मॉगने कैसे जायगी? राजा प्रसेनजित को भी यही विचार आया। रथ पर सवार हो, ब्राह्मण आदि को साथ ले, राजा भगवान् बुद्ध के पास पहुँचे। भगवान् को प्रमाण कर सब लोग एक ओर बैठ गये। भगवान् राजा के आने का उद्देश्य समझ गये और प्रकृति के पूर्व जन्म की कथा भिक्षुओं को सुनाने लगे।

भगवान् बोले—हे भिक्षुओ, प्राचीन काल मे गंगा-तट पर त्रिशङ्कु नामक चाण्डालों का राजा रहता था। त्रिशङ्कु ने पूर्व जन्म में साङ्गोपाङ्ग वेद-शास्त्र का अध्ययन किया था। उसको ये सब कण्ठस्थ थे। उसके एक पुत्र हुआ। उसका नाम शार्दूल कर्ण था। वह बहुत सुन्दर और दर्शनीय था। राजा ने अपने पुत्र को वेद-शास्त्रका अध्ययन कराया। जब वह बड़ा हुआ, तब त्रिशङ्कु ने सोचा कि मेरे बेटे के लिए योग्य कन्या कहॉ से मिलेगी? उस समय पुष्करसारि नाम के एक ब्राह्मण उङ्कट नामक द्रोणमुख (४०० ग्राम की राजनगरी को द्रोणमुख कहते है) पर शासन करते थे। राजा अग्निदत्त ने यह जागीर उन्हे दान में दी थी। पुष्करसारि साङ्गोपाङ्ग वेदों के ज्ञाता और आचार्य थे। उनकी एक पुत्री थी। उस का नाम था प्रकृति। वह रूपवती, शीलवती और गुणवती थी। त्रिशङ्कु ने सोचा कि प्रकृति शार्दूल कर्ण के लिए ठीक है।

अतएव वह दूसरे दिन रथ पर चढ़ कर द्रोणमुख की ओर गये। नगर के बाहर एक सुन्दर वाटिका थी। यह सोच कर कि पुष्करसारि इसी वाटिका मे ब्रह्मचारियों को वेद पढ़ाने आते होंगे; त्रिशङ्कु अपने मंत्री के साथ वहीं उतर गया।

त्रिशङ्कु ने पुष्करसारि को ५०० शिष्यों के साथ वाटिका की ओर आते देखा। उस ने आगे बढ़ कर उसका स्वागत किया और कहा—भो पुष्करसारि, मै एक विशेष उद्देश्य से तुम्हारे पास आया हूँ। पुष्करसारि ने कहा—हे त्रिशङ्कु, तुम ब्राह्मण को 'भो' शब्द से अभिवादन नहीं कर सकते। यह शिष्टाचार के सर्वथा विरुद्ध है।

त्रिशङ्कु ने कहा—"नहीं, मै ब्राह्मण का इस प्रकार अभिवादन कर सकता हूँ।

पुष्करसारि ने कहा—"जो मै कर सकता हूँ, वह तुम नहीं कर सकते।"

त्रिशङ्कु ने कहा—"हे पुष्करसारि, मुझे तुम से एक विशेष काम है, सुनो! मै तुम्हारी कन्या प्रकृति को अपने पुत्र शार्दूल कर्ण के लिए चाहता हूँ। जितना शुल्क माँगोगे, मैं दूँगा।"

त्रिशङ्कु की यह बात सुन पुष्करसारि को बहुत क्रोध हो आया। उसके नेत्र लाल हो गये। मुखमण्डल क्रोध से तमतमा उठा। माथे पर बल पड़ गया। पुष्करसारि बोला—"हे चाण्डाल, तुम्हें धिक्कार है, जो नीच कुल के हो कर वेदों के विद्वान् ब्राह्मण का इस प्रकार अनादर कर रहे हो! अरे मूर्ख, तुम प्रकृति को नहीं जानते। तुम्हें अपने ऊपर घमण्ड है। तुम्हारी माँग सर्वथा अनुचित है। तुम वायु को रस्सी से बाँधना चाहते हो। हे मूर्ख, सोना कभी भस्म नहीं हो सकता। तुम्हें अंधकार और प्रकाश में क्यों विवेक नहीं? तुम्हारा जन्म चाण्डाल कुल में हुआ है और मै द्विजकुलोत्पन्न हूँ। श्रेष्ठ लोग नीच जनों के साथ संबंध जोड़ना नहीं चाहते; श्रेष्ठ, श्रेष्ठ के साथ ही संबंध चाहते हैं। जो विद्वान् है, जिन की जाति दोषरहित है, जो उपदेशक, आचार्य और कर्मकाण्डी ब्राह्मण हैं; वे अपने समान कुल से ही संबंध करते हैं। तुम मनुष्यों में अधम हो। सब लोग तुम से घृणा करते है। तुम हमारा अपमान क्यों करते हो? चाण्डाल, चाण्डाल के साथ, क्षत्रिय, क्षत्रिय के साथ, वैश्य, वैश्य के साथ और शूद्र, शूद्र के साथ बेटी-व्यवहार करते हैं। चाण्डाल ब्राह्मणों के साथ संबंध नहीं जोड़ते। अरे मूर्ख, तुम श्रेष्ठ के साथ किस प्रकार संबंध जोड़ना चाहते हो?"

यह सुन त्रिशङ्कु बोला—"जो भेद भस्म और सोने में है वही भेद ब्राह्मण और दूसरी जातियों में नहीं है। ब्राह्मण कहीं आकाश से नहीं उतरते और न

पृथ्वी के भीतर से ही फूट निकलते है। ब्राह्मण और चाण्डाल दोनों योनि से ही उत्पन्न हुए है। ब्राह्मणों में कोई भी विशेषता नहीं है। जो कुछ पाप-कर्म है, वह सब जीवों के नाश के लिए ब्राह्मणों ने बतलाया है। ब्राह्मणों का कहना है कि कई कठिनाइयों को पार कर के हम पुण्यात्मा हुए है। मांस-भक्षण की इच्छा से ब्राह्मणों ने यह मन घड़न्त रचना रची है कि मंत्रों से बलिदान करने पर भेड़—बकरियाँ स्वर्ग को जाती है। यदि यही स्वर्ग का मार्ग है तो फिर ब्राह्मण अपना और अपने आत्मीयों का मंत्र से क्यों बलिदान नहीं करते ? यदि ऐसा है तो ब्राह्मणों के बेटे, उनकी कन्याएँ, स्त्रियाँ, मित्र और आत्मीय जन वेद-मंत्रों द्वारा बलिदान होकर सद्गति को प्राप्त कर सकते है। फिर ब्राह्मण पशुओं से क्यों यज्ञ करते है? अपना बलिदान क्यों नहीं करते? वस्तुतः न बलिदान से और न मंत्र से भेड़-बकरियाँ स्वर्ग जाती हैं।

बलिदान मिथ्या है। यह स्वर्ग का मार्ग नहीं। रुद्रचित्त ब्राह्मणों ने यह रीति निकाली है और मांस भक्षण की लालसा से पशु-बलि की आड़ ली है।

एक बात और बताता हूँ जो ब्राह्मणों की घड़न्त है। चार पाप बताए गये हैं—सुवर्ण की चोरी, मद्यपान, गुरुपत्नी से व्यभिचार, और ब्राह्मण-हत्या। सुवर्णकी चोरी नहीं करनी चाहिए, दूसरी वस्तुओं की चोरी, चोरी नहीं। जो ब्राह्मण सोने की चोरी करता है वह अब्राह्मण हो जाता है। मद्यपान बुरा है, दूसरी वस्तुओं का सेवन बेशक किया जा सकता है। ब्राह्मण सुरापान से अब्राह्मण हो जाता है। गुरुपत्नी से व्यभिचार नहीं करना चाहिए, दूसरी स्त्रियों से बेशक किया जा सकता है। एक ब्राह्मण की ही हत्या न करे, दूसरों की चाहे जितनी करे। जो ब्राह्मण हत्या करता है वह अब्राह्मण हो जाता है। इन पापों के सिवा ब्राह्मण के लिए और कोई पाप नहीं। जो उपर्युक्त पापों में से एक भी पाप करता है वह ब्राह्मण-मण्डली से निकाल दिया जाता है। कोई उस के साथ संबंध नहीं रख सकता। सब ब्राह्मण उसका बहिष्कार करते हैं।

व्रत करके वह दुबारा शुद्ध हो सकता है और पुनः ब्राम्हणत्व को प्राप्त कर स कता है। बारह वर्ष तक व्रत धारण कर; निश्चय ही वह पुनः ब्राह्मणत्व लाभ करता है। इसलिए हे पुष्करसारि, मै तुम से कहता हूँ कि ब्राह्मण, क्षत्रिय,

वैश्य और शूद्र, ये केवल नाम है। सब को एक समझ कर अपनी कन्या का विवाह मेरे पुत्र के साथ क्यों नहीं करते?"

यह सुन, पुष्करसारि को फिर क्रोध हो आया और वह बोला—"हे शूद्र, तुम बिना विचारे ऐसा कहते हो। तुम्हारी यह बात कि जाति एक ही है बिलकुल असत्य है। वर्ण चार है—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र। ब्राह्मण के लिये ब्राह्मणी, क्षत्रिया, वैश्या और शूद्रा की; क्षत्रिय के लिए क्षत्रिया, वैश्या और शूद्रा की; वैश्य के लिए दो-वैश्या और शूद्रा की, और शूद्र के लिए केवल एक-शूद्र स्त्री की आज्ञा है। ब्राह्मण के चार बेटे—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र; क्षत्रिय के तीन—क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र; वैश्य के दो—वैश्य और शूद्र, और शूद्र का एक पुत्र-शूद्र होता है।

ब्राह्मण मुख से, क्षत्रिय भुजा से, वैश्य धड़ से और शूद्र पैर से उत्पन्न हुए हैं। सब प्राणी ब्राह्मण से ही उत्पन्न हुए है। ब्राह्मण ब्रह्मा के बडे भाई है। हे नीच, तुम चारों वर्णों से अलग हो? तुम्हारी गिनती चातुर्वर्ण्य में नहीं है। मै श्रेष्ठ वर्ण का हूँ। तुम परमार्थ की कामना करते हो। तुम शीघ्र नाश को प्राप्त होगे।"

त्रिशङ्कुने उत्तर दिया—"मै जो कहता हूँ, उसे सुनो। वर्ण चार नहीं है। जिस प्रकार बालक सड़क पर खेलते है और मिट्टी के खिलौने बना कर आप ही उनका नाम रखते है; किसी को खीर, किसी को दही, किसी को घी कहते है, पर इन बालकों के कहने से मिट्टी के खिलौने अन्न नहीं कहला सकते, उसी प्रकार वास्तव में चार वर्ण नाममात्र है। मनुष्यों के कान, नाक, आँख, मुख, जिव्हा, भुजा, पीठ, गर्दन, टाँग, कलाई, शब्द और वर्ण एक समान होते है; एक दूसरे में कोई अन्तर नहीं होता। इसलिए चार वर्ण कहना ठीक नहीं है। यदि कोई विशेषता हो तो बताओ। जो कुछ तुमने कहा है वह ठीक नहीं है। मुझसे सुनो मै ठीक बात कहता हूँ। हे ब्राह्मण, यदि यह सत्य है कि सब प्राणियों की रचना ब्रह्मा ने की है तो यह गलत है कि चार वर्ण है। हे ब्राह्मण, यदि ब्राह्मणों के कथनानुसार मनुष्य-जाति एक दूसरे से भिन्न हो, तो मेरा कथन असत्य हो। मुँह, नाक, कान, रूप, वर्ण, आकार और आहार, इन बातों से ही पृथकत्व का पता लगता है। गाय, घोड़ा, गधा, ऊँट, हिरण, पक्षी, भेड़ और बकरी का भेद पैर, मुँह, आकार और आहार आदि

भेदों से ही मालूम किया जाता है। पर चारों वर्णों मे इस प्रकार का कोई भेद नहीं। इसलिए सब एक है। जिस तरह विभिन्न प्रकार के पेड़ों मे तना, पत्ता, फल, फूल आदि के संबंध में भेद पाया जाता है उसी प्रकार चारों वर्णों मे कोई भेद देख नहीं पड़ता। इसलिए सब मनुष्य एक है।

हे ब्राह्मण, गुण के अनुसार परीक्षा करो। देवता, क्षत्रिय, वैश्य, यक्ष, नाग और शूद्र ब्राह्मणत्व प्राप्त कर सकते है। यदि ब्राह्मण ही ब्रह्मलोक को जाय और दूसरे तीन वर्ण स्वर्ग प्राप्त न करे, तब कहा जा सकता है कि वर्णो मे विशेषता है। किन्तु चारों वर्ण अपने-अपने कर्मों से ही स्वर्ग के अधिकारी होते है। इसलिए चार वर्ण पृथक्-पृथक् नहीं है। यदि ब्राह्मण दो जिह्वा, दो मुख, चार कान, चार सींग, अनेक पाद, और दो शिरों वाला हो, तो वर्णो में भेद और विशेषता हो सकती है। ब्राह्मण कई बुरे कर्म करते है। ब्राह्मण बार-बार लड़ाई, झगड़ा और उपद्रव करते है। गो-बलिदान और जीवों को भयभीत करनेवाले मंत्र ब्राह्मणों ने बनाए है। वे पाप में लिप्त है। कई लोगों को ठगते है और दूसरों की बुराई चाहते है। वे कैसे स्वर्ग जा सकते है? जो ब्राम्हण तपस्वी है, जिन मे व्रत, शील, संयम है, और जो किसी की हिंसा नहीं करते, वेही ब्रह्मलोक को जाते है। चारों वर्णों मे अस्थि, मांस, नख, दुःख, सुख और पंचेन्द्रिय समान रूप से है, कोई विशेषता नहीं पाई जाती। इसलिए वर्ण चार नहीं है।

हे ब्राह्मण, यदि किसी के चार बेटे हों, और वह उनके नाम विद्यासागर, ब्रह्मदत्त, वेदप्रकाश और सरस्वतीचक्र रखे, तो नाम में वे भिन्न है, पर इस कारण उनकी जाति भिन्न नहीं है। हे ब्राह्मण, भली भाँति परीक्षा करो, संसार मे ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र जो शब्द प्रचलित हैं, वे नाम मात्र हैं। मेरे पुत्र के साथ अपनी कन्या का विवाह कर दो"

पुष्करसारि ने कहा—"क्या तुम ने चारों वेदों, शरीर-विज्ञान, संगीत-विद्या, ज्योतिष-विद्या, न्यायादि शास्त्रों का अध्ययन किया है?" त्रिशङ्कु ने उत्तर दिया—"हे ब्राह्मण, मैं ने इन सब शास्त्रों का अध्ययन किया है। और यदि तुम अपने को मंत्र-वक्ता समझते हो तो मैं तुम से कहता हूँ कि प्राचीन लोगों का यह मत नहीं था कि चार वर्ण है। वे सब को एक मानते थे। जो लोग सुख-शान्ति चाहते थे और इस की रक्षा करते थे, उनका नाम क्षत्रिय हुआ।

कुछ की यह धारणा हुई कि घर–बार ही रोग और दुःख का कारण है, संसार–त्यागी होकर वन में रहें और घास-फूस या जंगल के पत्तों की कुटी बनाकर ध्यान करें। ऐसे लोगों ने घर–बार छोड़कर वन का मार्ग लिया और वन में कुटी बनाकर भगवान् के चिन्तन में लगे। वे प्रातःकाल–सवेरे ग्राम में भिक्षा के लिए जाया करते थे। ग्राम–निवासियों ने सोचा कि इन की तपस्या बड़ी कठोर है। ये लोग अपना घर–बार छोड़, संसार–त्यागी हो, वनों में रहते है। ऐसे लोगों को वे ब्राह्मण कहने लगे। ग्राम–निवासी उनका बड़ा सत्कार करते थे और उन्हें दान देते थे। कुछ लोग ऐसे भी थे जो ध्यान–तपस्या को अपने लिए असंभव समझ कर ग्राम में स्वाध्याय करते थे। इन को ग्राम–निवासी अध्यापक कहने लगे।

हे पुष्करसारि! संसार में ब्राह्मणों के प्रकाश का यही हेतु हुआ। दूसरे लोग जो धन के लिए विभिन्न काम करते थे, उनका नाम वैश्य पड़ गया। जो साधारण काम कर के रोटी कमाते थे उन्हें शूद्र नाम से पुकारा जाने लगा। जो व्यापार करते थे, उन्हे व्यापारी कहा गया। ब्राह्मण नाम कैसे चला, अब मैं तुम्हें बताता हूँ।

देवताओं में ब्रह्मा सब से अधिक तपस्वी है। उन्होंने कौशिक इन्द्र को वेदार्थ बताया। कौशिक इन्द्र ने अनेंम और गौतम को, अनेंम और गौतम ने श्वेतकेतु को, और श्वेतकेतु ने शुक को वेदार्थ बताया। शुक ने वेद को चार भागों में विभक्त किया–ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद। ऋग्वेद में २१ भाग हुए। यजुर्वेद ब्राह्मणों के २१ भाग और उनके फिर ११००, अथर्ववेद का एक भाग दश में बँट गया। सामवेद के १०८० भाग हुए। इस प्रकार ब्राह्मणों में कई भेद हो गये। इसलिए मैं तुम से कहता हूँ कि ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि केवल नाम ही है; वर्ण चार नहीं है सब मनुष्य एक हैं।"

इतनी बात सुन कर पुष्करसारि चुप हो गये। उनसे कोई उत्तर न बन पड़ा। मुखमण्डल की कान्ति फीकी पड़ गई। सिर झुकाकर वह सोचने लगे। त्रिशङ्कु ने पुष्करसारि को इस प्रकार मौन देख कर फिर कहा—"हे ब्राह्मण, यदि तुम्हारे मन में यह विचार हो कि यह संबंध अयोग्य एवं अनुपयुक्त के साथ होगा तो तुम्हें ऐसा न समझना चाहिए। संसार में जो गुण उत्तम समझे जाते हैं, वे सब मेरे बेटे में पाये जाते है। इसलिए मैं तुम से कहता हूँ कि मेरे साथ

संबंध जोड़ो। धर्म का पालन करने से चाण्डाल घृणा और तिरस्कार के पात्र नहीं रहते।

हे पुष्करसारि, आरम्भ में सात गोत्र थे। बाद को प्रत्येक के सात हो गये। इस प्रकार सब मिलाकर ४९ गोत्र है, ऐसा प्राचीन ब्राह्मणों ने कहा है। इन की समानता और एकरूपता समझ कर तुम मेरे समधी होने योग्य हो। मनुष्य जैसा बीज बोता है वैसा ही फल पाता है। ब्राह्मण और दूसरी जातियों में विशेषता नहीं है। सब रज-वीर्य से उत्पन्न हुए हैं। यदि यह संसार स्वयं ब्रह्मा से उत्पन्न हुआ है तो ब्राह्मणी ब्राह्मण की बहन है, क्षत्राणी क्षत्रिय की बहन है। तब यह उचित नहीं कि बहन को पत्नी बनाया जाय, यह तो पशु-धर्म है। इस प्रकार चारों वर्णों का धर्म पशु-धर्म हो जायगा। जीव ब्रह्मा से उत्पन्न नहीं हुए वरन् क्लेश और कर्म से उत्पन्न हुए हैं। कर्मानुसार प्राणी उच्च और नीच गति को प्राप्त होते हैं। सब में ज्ञान-इच्छा एक सी होती है। निषादी काली से मुनि द्वैपायन उत्पन्न हुए। चाण्डालिनी कचबली से वशिष्ठ उत्पन्न हुए। ये ब्राह्मणी के गर्भ से नहीं थे। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र केवल नाम मात्र हैं। क्षत्रिया रेणुका से परशुराम हुए। जो लोग तेजस्वी, तपस्वी, पण्डित और सुशील हुए, जिनका संसार मे ऋषि-तुल्य संमान है, वे ब्राह्मणी के पेट से नहीं थे।"

यह सुनकर पुष्करसारि ने त्रिशङ्कु का गोत्र और वंश पूछा और सावित्री पढ़ने को कहा। कई विद्याओं में त्रिशङ्कु की परीक्षा ली और अपना सन्तोष कर त्रिशङ्कु से कहा,—"आप वेद-पाठी है, आप श्रेष्ठ है, मै अपनी कन्या प्रकृति का विवाह आपके पुत्र शार्दूल कर्ण से करूँगा।"

आचार्य के इस निश्चय को सुनकर ब्रह्मचरियों ने कहा—"आप चाण्डाल के साथ संबंध न करें। जब अगणित ब्राह्मण वर्तमान है तब चाण्डाल के साथ संबंध करना ठीक नहीं है।" पुष्करसारि ने कहा—"जो कुछ त्रिशङ्कु कहते है वह सब ठीक है।" उन्हों ने अपनी कन्या का विवाह शार्दुल कर्ण के साथ कर दिया।

भगवान् ने यह कथा सुनाकर भिक्षुओं से कहा—"मैं उस समय त्रिशङ्कु था, आनन्द उस समय शार्दूल कर्ण था, यह भिक्षुणी प्रकृति उस समय पुष्करसारि की कन्या थी। यह उसी पहले प्रेम के प्रभाव से आनन्द का पीछा करती है।"

भगवान बुद्ध के मुँह से यह संवाद सुनकर राजा प्रसेनजित और नगर के दूसरे लोगों को सन्तोष हुआ।

बौद्धों के मज्झिम निकाय और दीग्घ निकाय आदि ग्रन्थों में ऐसे ही अनेक संवाद भरे पडे है। इन संवादों मे वर्ण और गोत्र आदि को कल्पित नाम, ब्राह्मण की श्रेष्ठता को झूठ, और चारों वर्णों को समान बताया गया है।

बुद्ध के बाद और भी अनेक महापुरुषों ने जातिभेद पर बम बरसाए है। आचार्य क्षितिमोहन सेन ने अपनी "भारतवर्ष मे जातिभेद" नामक पुस्तक में उनके बहुत से वचन उद्धृत किए है। उन में से कुछ आगे दिये जाते है:—

तामिल देश में एक प्रसिद्ध ग्रन्थ है। उसके रचयिता अगस्त्य बताए जाते है। उस तामिल ग्रन्थ मे कहा है—"जातिभेद मनुष्य ही की रची हुई व्यवस्था है। इस का उद्देश्य यह है कि सहज मे खाने को मिलता रहे। वेद ब्राह्मणों के पालन-पोषण के लिए ही रचा गया है।" सूक्ष्म वेदान्त ग्रन्थ में भी कहा गया है—"जिस दिन से स्त्रियॉ शूद्र हुई उस दिन से ब्राह्मण के वीर्य से शूद्र-क्षेत्र मे उत्पन्न सभी ब्राह्मण "पारशव" हुए, क्योंकि ब्राह्मण-कन्या होने से क्या, है तो सभी स्त्रियाँ शूद्र ही? फिर "पारशव" के वीर्य से शूद्रा की जो सन्तान होगी उसकी जाति क्या है? इन अनन्त "पारशवों" से उत्पन्न हुए जो लोग अपने को ब्राह्मण कहते है उन में ब्राह्मणत्व कहाँ है?"

तेलेगु कवि वेमन कहते है—"जन्म के समय गायत्री कहाँ थी और कहॉ था उपवीत? सूत्र (जनेऊ)-हीना माता तो शूद्रा है? उसका पुत्र ब्राह्मण कैसे होगा? इसीलिए सभी समान है, सभी भाई है। सबका जन्म एक ही तरह से हुआ है। सब के रक्त और मांस एक ही है। फिर क्यों इतना भेद-विभेद चलाते हो? क्यों नहीं भाई-भाई मिल कर रहते?*

पुराणों ने जन्म के ब्राह्मणत्व को स्वीकार करते हुए भी आचार हीनता से उसका नष्ट हो जाना माना है। अतएव स्कन्द पुराण कहता है कि राजद्वार पर

* What the castes are. Wilson. Vol. II. Page 10.

वेद बेचनेवाला ब्राह्मण पतित है। (प्रभास खण्ड, प्रभास क्षेत्र माहात्म्य २०७। २२-२७-,) सदाचार-हीन, सूद खानेवाला, और दुर्विनीत ब्राह्मण शूद्र है। (स्कन्द पुराण २८-३४)। सूदख़ोर तो अस्पृश्य होता है (सौर पुराण, १७। ३६-३९)। ब्राह्मण होने के लिए केवल वेदाध्ययन ही पर्याप्त नहीं। जो व्यक्ति वेद पढ़ कर भी विचार पूर्वक उस के तत्व को नहीं समझता, वह ब्राह्मण शूद्र के समान अपात्र है। (पद्म पुराण, स्वर्ग० २६।१३५)।

नवाँ परिच्छेद

भङ्गी का तत्वज्ञान

"ओ मेहतर, सुनता नहीं है?"

"क्या है महाराज!" मेहतर ने झाड़ू चलाना बंद कर के उत्तर दिया।

"तुझे शीघ्र ही यहाँ से हट जाना चाहिए। जा कहीं गली में चला जा!"

"क्यों?"

"तुझे मालूम नहीं है, जगद्‌गुरु शंकराचार्य पधार रहे हैं। हट जा यहाँ से।"

"तो क्या उन्होंने मुझे हटाने का आदेश किया है?"

"हाँ, जल्दी कर।"

"तो उन्होंने ऐसा आदेश क्यों किया?"

"इसलिए कि तू शूद्र है।"

"मैं उनसे कुछ पूछना चाहता हूँ।"

"नहीं, तुझे उनसे कुछ पूछने का अधिकार नहीं है।"

"क्यों?"

"हः हः हः हः! इसलिए कि तू शूद्र है। जब वे तेरा मुँह देखना नहीं चाहते तब यह कैसे हो सकता है कि तू उन से बातचीत कर सके?"

"हाँ, समझा। किन्तु क्या यह सच है कि वे जगद्गुरु है?"

"अरे! तुझे इसमें सन्देह है? सारा संसार उनका लोहा मान चुका है। बडे-बडे नास्तिकों ने उनके आगे अपना शिर झुका दिया है। और तुझे उनके जगद्‌गुरु होने में संदेह है?"

"किन्तु महाराज, मेरा तो ऐसा ख्याल है कि जब तक वे मेरी शंकाओं का समाधान न करेंगे तब तक वे जगद्‌गुरु नहीं कहला सकते, क्योंकि मैं भी

तो जगत में शामिल हूँ। मेरा हृदय शंकाओं से भरा हुआ है। और जब तक उनका समाधान नहीं किया जाता, मैं किसी को जगद्गुरु कहने के लिए तैयार नहीं हूँ।"

"क्या है, क्या है? इसे अभी तक नहीं हटाया। अरे! तू अभी तक नहीं गया? देखता नहीं, आचार्य पधार रहे हैं?" एक दूसरे ब्राह्मण ने आकर कहा। उसके नेत्रों से आग बरस रही थी।

"शान्त हूजिए ब्राह्मण–कुमार! क्रोध आपको शोभा नहीं देता।"

"अरे, तू ब्राह्मण को उपदेश कर रहा है?"

"आप को कौन उपदेश दे सकता है? मैं तो आप के ही शब्दों को दुहरा रहा हूँ।"

"अच्छा; अब तू यहाँ से हट जा। जगद्गुरु की सवारी निकट आ पहुँची है।"

"मै आचार्य के दर्शन करना चाहता हूँ। उनसे अपनी सन्देह–निवृत्ति कराना चाहता हूँ।"

"तुझे मालूम है कि तू शूद्र है? तेरा मुँह देखना भी अशुभ समझा जाता है।"

"क्या है?" एक तीसरे व्यक्ति ने आकर पूछा। भीड़ बढ़ती ही चली गई और घंटों एवं शंखो की ध्वनि के साथ जगद्गुरु की सवारी भीड़ के समीप आ पहुँची। मेहतर आचार्य की ओर बढ़ने लगा। लोगों ने उसे रोकना चाहा, किन्तु वह न रुका। उस ने ज़ोर से कहा—

"जगद्गुरु के दर्शन करने का मुझे अधिकार है। मुझे उनके दर्शन से कोई वंचित नहीं रख सकता।"

ध्वनि आचार्य तक पहुँच गई। उन्हों ने शिष्यवर्ग से पूछा—क्या है? यह कौन बोल रहा है? उसे आने दो।"

"एक शूद्र है; उद्दण्डी आप का दर्शन चाहता है!" एक ब्राह्मण ने कहा—

"नहीं, वह शूद्र नहीं प्रतीत होता है। उस का उच्चारण शुद्ध है। उसे आने दो।"

मेहतर के लिए मार्ग छोड़ दिया गया और उसने आचार्य के सम्मुख जा धरती पर झुक कर प्रणाम किया। इसके उपरान्त उसने पूछा—" आचार्य! आप तब तक जगद्‌गुरु कैसे कहला सकते है जब तक मेरी शंकाओंका समाधान नहीं कर देते? मै भी तो जगत् में ही हूँ। "

" चुप रह। " एक ब्राह्मण ने चिल्ला कर कहा।

" शान्त, शान्त, उसे बोलने दो, " आचार्य ने कहा। सब शान्त थे।

" मै कुछ पूछना चाहता हूॅ। "

" हॉ हॉ, पूछो। "

" मै यह जानना चाहता हूँ कि आपने मुझे मार्ग से हटाने का आदेश क्यों दिया। "

आचार्य ने प्रश्न की गम्भीरता को शान्ति से सोचा और फिर मुस्कराए। किन्तु उन के उत्तर के पहले ही एक ब्राह्मण ने चीख़ कर कहा—" इसलिए कि तू चण्डाल है। "

" इसका अर्थ तो यह है कि आप मुझ से घृणा करते है। "

" हॉ, बेशक तू घृणित है। " ब्राह्मण ने पुनः उत्तर दिया। आचार्य गम्भीर ही थे। मेहतर ने फिर पूछा—

" आचार्य, मै यह जानना चाहता हूँ कि आप किस से घृणा करते है? शरीर से, आत्मा से या कर्म से? "

आचार्य ने प्रश्नों को ध्यान से सुना। मेहतर फिर बोला—

" क्या आत्मा से? आत्मा तो शुद्ध ब्रह्मतत्व है। वह तो निर्विकारी है। "

" मै आत्मा से घृणा नहीं करता। " आचार्य ने कहा।

" तो क्या शरीर से? हॉं, यह अवश्य घृणित पंचतत्वों से बना हुआ है। पृथ्वी अनन्त मलिनताओं की केन्द्र है। जल में अनन्त जीव और जीवाणु वास करते हैं और उस में मल-मूत्र करते हैं। अग्नि सर्व-भक्षी है। वायु में पृथ्वी पर सड़नेवाले दूषित द्रव्यों की दुर्गन्ध मिली हुई है, और आकाश भी इन से ख़ाली नहीं है। इन्हीं तत्त्वों से हमारी देह बनी हुई है। ऐसी अवस्था में इस से घृणा होना अनिवार्य है। किन्तु इन द्रव्यों से तो आपका भी शरीर बना हुआ है। और जब आप उस से घृणा करते हैं तब उसे स्वयं क्यों धारण किए हुए है? "

" नहीं, मैं शरीर से भी घृणा नहीं करता, " आचार्य ने उत्तर दिया।

" तब आप कर्म से घृणा करते होंगे, आचार्य ? सुना है, बिना कर्म के निस्तार नहीं होता, कर्म करने में ही जीवन की सार्थकता है, कम से कम मेरा हृदय तो कर्म से घृणा नहीं करता, क्योंकि मै जानता हूँ कि कर्म-त्याग का परिणाम एक महान खेदजनक कार्य होगा। मेरे इस कर्म को त्याग देने से गन्दगी फैलेगी और उस से असंख्य रोगाणु उत्पन्न होंगे, जिन से जीवमात्र का अकल्याण हो सकता है। इसलिए मेरे लिए ऐसा करना संभव नहीं। मै जान-बूझ कर ऐसी भूल नहीं कर सकता। क्या आप यह चाहते हैं कि मैं भी कर्म को घृणित समझूँ और लोगों को रुग्ण होने का अवसर दूँ ? "

आचार्य ने मेहतर के शब्दों को सुना और उनमें भरे हुए तत्त्व-ज्ञान को समझा, जैसे उन्हें एक नई बात मालूम हुई हो। वे विचार में इतने गहरे लीन थे कि उन्हें पता ही न रहा कि वे गंगा-स्नान के लिए आए हैं। विचारातिरेक में वे कल्पना करने लगे—" मेहतर में ऐसी तर्क शक्ति कहाँ हो सकती है ! फिर यह कौन है ! उन्होंने उसके अन्तः स्वरूप पर दृष्टि गड़ा दी। " अरे। यह तो वही तत्वज्ञान है, जिस का मैं नित्य ध्यान किया करता हूँ। " उन का शिर मेहतर के चरणों पर गिर पड़ा। उन के मुख से निकल पड़ा— " भगवन्, निःसन्देह मै भूलता हूँ। कर्म से घृणा करना भी अज्ञान है। आपने आज मेरा अज्ञान दूर कर दिया। सचमुच; जगद्गुरू मैं नहीं आप ही है। "

लोगों ने इस दृश्य को आश्चर्य से देखा। मेहतर के चरणों में इतना बड़ा विद्वान गिर पड़ा है।

शङ्कराचार्य लौट पडे। शिष्यों ने पूछा—" आचार्य, गङ्गा-स्नान तो किया ही नहीं ? "

" नहीं, मैं स्नान कर चुका। आज तो ऐसा स्नान हुआ है, जो कभी बडे भाग्य से ही प्राप्त होता है। " आचार्य ने उत्तर दिया।

श्री० वीरेन्द्र मालवीय की लिखी हुई ऊपर की कहानी कपोल कल्पित नहीं।

इसका आधार ऐतिहासिक है। इस घटना का उल्लेख "शङ्कर दिग्विजय"* में है।

संस्कृत में वज्रसूची नाम की एक छोटी-सी पुस्तक है। इसे वज्रसूचिकोपनिषद् भी कहते है। मालूम नहीं इसका लेखक कौन है। सन् १८२९ में श्री. हडसन को यह पुस्तक नेपाल में मिली थी। वहॅा उन्हें बताया गया था कि यह अश्वघोष की रचना है। अश्वघोष का समय ईसा की दूसरी शताब्दी माना जाता है। सन् १७१० की लिखी हुई इस की एक प्रति नासिक में भी मिली थी। वहाँ के पण्डितों ने बताया था कि यह शङ्कराचार्य की बनाई हुई है। सन् ९७३-९८१ ई. में चीन देश मे इस पुस्तक का चीनी भाषा में अनुवाद हुआ था। चीन में लोग इसे धर्मकीर्ति की बनाई हुई समझते है। इस पुस्तक में जातिभेद का खण्डन बड़ी ही युक्तियुक्त रीति से किया गया है। मेरी प्रार्थना पर मित्रवर आचार्य विश्वबंधु शास्त्री, एम. ए. ने "जात-पॅात तोड़क मण्डल" के मासिक पत्र, "युगान्तर" के लिए उसका हिन्दी में अनुवाद किया था। वह "युगान्तर" के सितंबर १९३३ के अंक में छपा था। वहीं से ले कर वह आगे दिया जाता है।

वज्रसूचिकोपनिषत्

१. अब मै वज्रसूची नामक शास्त्र को कहता हूँ। यह अज्ञान का नाश करने वाला है। यह जहाँ मूर्खों को फटकारता है, वहाँ ज्ञानवानों की शोभा को बढ़ाता है।

२. ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र ये चार वर्ण कहे जाते है। इन वर्णों में ब्राह्मण ही प्रधान है। इस में वेद-वचन और स्मृति-वचन दोनों का ही प्रमाण है।

३. यहाँ प्रश्न उत्पन्न होता है कि यह ब्राह्मण किस पदार्थ का नाम है? जीव का, देह का, जन्म का, ज्ञान का, कर्म का या धार्मिक भाव का?

४. यदि यह संज्ञा जीव की समझी जाय तो ठीक नहीं प्रतीत होता। कारण यह कि अतीत, अनागत, अनेक देहों के साथ जुड़नेवाला जीव तो एक रूप ही रहता है। साथ ही एक जीव का कर्म के अधीन हो कर अनेक

* "शंकर-दिग्विजय," सर्ग ६, श्लोक २५-३९

देहों से संबंध होता रहता है और इन सब शरीरों में वह जीव वैसा ही बना रहता है। अतः जीव ब्राह्मण नहीं हो सकता।

५. तो देह को ब्राह्मण माना जाय? यह भी ठीक न होगा। चाहे कोई चाण्डाल भी क्यों न हो, सब मनुष्यों का शरीर तो एक जैसा–पाँच भूतों का बना हुआ है। वह बुढ़ापा, मृत्यु, धर्म, अधर्म से जुड़ा रहता है। ब्राह्मण श्वेतवर्ण होता है, क्षत्रिय रक्तवर्ण होता है, वैश्य पीतवर्ण होता है और शूद्र कृष्णवर्ण होता है—यह भी नियत रूप से नहीं पाया जाता। साथ ही ऐसा मानने पर जब पितादि के मरने पर उन का शरीर जलाया जावेगा तो पुत्र को ब्रह्म–हत्या का पाप लग सकता है। इसलिए देह भी ब्राह्मण नहीं हो सकती।

६. जन्म भी ब्राह्मण नहीं समझा जा सकता मनुष्य जातिकी बात तो दूर रही, बहुत से व्यक्तियों का जन्म तो हुआ मनुष्य के सिवा दूसरी जातियों से, पर अपने ज्ञानके प्रभाव से गिने गये वे ऋषियों और महर्षियों में—जैसे ऋष्यशृङ्ग मृगी से उत्पन्न हुआ, कौशिक कुश से, जाम्बुक गीदड़ से, वाल्मीकि वामी से, व्यास मल्लाहकी लड़की से, गौतम खरगोश की पीठ से, वशिष्ठ उर्वशी (अप्सरा) से और अगस्त्य घडे से। ऐसा ही वेदों में पाया जाता है। इस कारण, जन्म भी ब्राह्मण नहीं बन सकता।

७. तो ज्ञान को ब्राह्मण कहे? नहीं, यह भी ठीक नहीं। कितने ही क्षत्रियादि भी तो परमार्थदर्शी और विद्वान् होते है। इस लिए ज्ञान भी ब्राह्मण नहीं हो सकता।

८. कर्म को ब्राह्मण मानना भी ठीक नहीं। कारण यह कि कर्म तो सभी लोग करते हैं। कर्म भी सब का संचित, प्रारब्ध तथा आगामी होने से समान ही होता है। अतः कर्म भी ब्राह्मण नहीं हो सकता।

९. धार्मिक भाव भी ब्राह्मण नहीं हो सकता। क्षत्रियादि लोग भी दान आदि में प्रवृत्तिशील देखे जाते है। इसलिए यह पक्ष भी ठीक नहीं।

१०. तो फिर आप ही बताइये कि ब्राह्मण कौन होता है? बहुत ठीक, सुनो—चाहे कोई हो, जो एक अद्वितीय, जन्म, गुण तथा क्रिया से रहित, नाना प्रकार के दोषों से रहित, सत्य–ज्ञान–आनन्द–अनन्त स्वरूप, स्वयं सब विकल्पों से रहित, सकल कल्पों के आधार, सब प्राणियों के अन्तर्यामी, भीतर और बाहर

आकाशवत व्यापक, अखण्ड–आनन्द स्वभाव, विचार से बाहर, अनुभव मात्र से जानने योग्य, प्रत्यक्ष प्रकाशमान् आत्मा का स्पष्ट साक्षात कर के कृतार्थ होकर काम–रागादि दोषों से छूट चुका है; शम–दमादि से मुक्त है, भाव, मात्सर्य, तृष्णा, आशा, मोह आदि से रहित है; दम्भ, अहङ्कारादि को पास फटकने नहीं देता, ऐसे लक्षणोंवाला जो भी हो, उसे ही ब्राह्मण समझना चाहिए। यही वेदादि सभी सच्छास्त्रों का अभिप्राय है। नहीं तो संसार में ब्राह्मणत्व की सिद्धि और किसी प्रकार से नहीं हो सकती।

ऐसा जान पड़ता है कि वर्ण के जन्मगत हो जाने से समाज मे बड़ा अनर्थ और अशान्ति फैल गई थी। इसीलिए मध्ययुग के कबीर, दादू, नानक, रैदास और तुकाराम आदि सभी भक्त महात्माओं ने अपने वचनों में जातिभेद का खण्डन किया है। महात्मा कबीर की वाणी तो इस विषय में कहीं–कहीं बड़ी तीव्र हो गई है। वे जन्माभिमानी ब्राह्मण को संबोधन करके कहते है—

जो तू ब्राह्मण ब्राह्मणी जाया।
आन बाट काहे नहीं आया ?
तुम कत ब्राह्मण हम कत सूत,
हम कत लोहू तुम कत दूध ?

जातिभेद पर जितनी चोट भविष्य पुराण में की गई है उतनी शायद किसी दूसरे पुराण में नहीं। इस के ब्राह्मपर्व में कहा गया है कि यदि सभी देवता मिल कर भी बडे यत्न से खोंजें तो भी वे ब्राह्मण और शूद्र में भेद न पावेंगे। (अध्याय ३९–४१)। भागवत सम्प्रदाय के लोगों ने जातिभेद को मिटाने का क्रियात्मक कार्य किया था। वे लोग मुसलमानों तक को अपने में मिला लेते थे। उन का विचार था कि भगवद्भक्ति से सभी मनुष्य पवित्र हो जाते है। पद्म*

---

* **राम रामेति रामेति रामेति च पुनर्जपन्।**
स चाण्डालोऽपि पूतात्मा जायते नात्र संशयः॥
ऊर्ध्वपुण्ड्मूर्ध्वरेखं ललाटे यस्य दृश्यते।
चाण्डालोऽपि स शुद्धात्मा पूज्य एव न संशयः॥—पद्म पुराण।

पुराण में कहा गया है कि राम-नाम का बार-बार जप करने से चाण्डाल भी निस्सन्देह पवित्र-आत्मा हो जाता है। जिस के ललाट पर ऊपर को खड़ी रेखाओं का तिलक लगा है, वह चाहे जन्म से चाण्डाल भी हो, निस्सन्देह शुद्धात्मा और पूज्य है। महाराष्ट्र के सन्त तुकोबा कहते हैं—

पवित्र तें कूळ पावन तो देश
जेथें हरि चे दास जन्म घेति।
वर्ण अभिमानें कोण झाले पावन।
ऐसे ध्या सांगून मजपाशी।
अन्त्यजादि योनी तरल्या हरि नामें।
त्याची पुराणें भाट झालीं।
वैश्य तुलाधार, गोरा तो कुँभार,
धागा हा चाँभार रोहिदास।
कबीर, लतीफ़ मुसलमान
सेना न्हावी आणि विष्णुदास।
कन्होपात्रा खोई पिंजारी तो दादू।
भजनी अभेदूँ हरिचे पायीं।
चोखामेळा बङ्का जातीचा महार।
त्यासी सर्वेश्वर ऐक्य करी॥

अर्थात्—वही कुल पवित्र और वही देश पावन है जहाँ हरि के दास जन्म लेते हैं। मुझे बताओ तो सही कि वर्णाभिमान से कौन पावन हुआ है। हरि-नाम से बहुत से अन्त्यज भव-सागर तर गये है। उनकी कथा पुराणों में मिलती है। तुलाधार बनिया, गोरा कुम्हार, धागा और रोहिदास चमार, कबीर और लतीफ़ मुसलमान, सेना नाई और विष्णु दास, कान्होपात्रा गणिका, दादू धुनिया, हरि-कृपा से अभेद हो गये। चोखामेला और बंका जाति के महार थे; पर उन का सर्वेश्वर भगवान् से मिलाप हो गया।

और भी कहा है—

समर्थासि नाही वर्णावर्ण-भेद।
पुण्य पर-उपकार—पाप तें पर-पीड़ा।
देवाची पूजा हें भूतांचें पाळण।

अर्थात्—सच्चे समर्थ पुरुष वर्णभेद को नहीं मानते। परोपकार ही पुण्य है और पर-पीड़ा पाप। प्राणियों का पालना ही देव पूजा है।

वैष्णवों के भक्ति-धर्म ने अनेक मुसलमानों को प्रभावित किया था। कहते हैं, कारे नामक एक मुसलमान जगन्नाथ का भक्त हो गया। वह पुरी पहुंचा। पर पुजारियों ने उसे दर्शन न करने दिया। वह हाते के भीतर घुस, फाटक के पास बैठ गया। उसने खान-पान त्याग दिया। रात का समय था। पुजारी लोग घर चले गये थे। कारे की दीन-हीन आत्मा जगन्नाथ को संबोधन कर के इस प्रकार बिलबिला उठी—

मुशफ़िक़ शफ़ीक रफ़ीक़ दिल-दोस्त मेरे।
मेरे नज़दीकी हक़ीक़ी ज़रा ख़याल कीजिए॥
मेहरबान क़द्रदान आला तू जहान बीच।
मुझ से ग़रीबों का तो गुनाह माफ़ कीजिए।
कारे करार पड़ा तेरे दरबार बीच।
अटकी है नाव अब तो ज़रा ग़ौर कीजिए।
हिन्दू के नाथ हैं तो हमारा कुछ दावा नहीं।
जगन्नाथ हो तो हमारी सुधि लीजिए॥

अन्तिम पंक्तियाँ संतप्त हृदय का उद्गार थीं। जगन्नाथ का सिंहासन डोल उठा। कारे को भगवान् का दर्शन हो गया।

आजकल सर्व साधारण की यह धारणा हो रही है कि ब्राह्मण लोग जाति-भेद के बडे कट्टर पक्षपाती होते है और जात-पाँत के मिटाने में वही सब से बड़ी रुकावट है। पर वास्तव में बात ऐसी नहीं। जातिभेद पर जितनी कड़ी चोट ब्राह्मण विद्वानों ने की है उतनी ब्राह्मणेतरों ने नहीं की। भविष्य पुराण और महाभारत आदि जिन ग्रन्थों में वर्णभेद का प्रबल खण्डन मिलता है वे भी अब्राह्मणों के ही नहीं अधिकांश ब्राह्मण विद्वानों के ही लिखे हुए है।

बारहवीं शताब्दी में कन्नड़ देश में वीरशैव या लिङ्गायत मत के प्रवर्त्तक महात्मा बसवेश्वर जाति से ब्राह्मण थे। पर जातिभेद के वे इतने प्रबल विरोधी थे कि उन्होंने ब्राह्मणों और कथित नीच जातियों में बेटी-व्यवहार कराने का प्रयत्न किया था। उन्होंने मधुवय्या नामक एक ब्राह्मण-कन्या और हरलय्या नामक एक नीच वर्ण के पुरुष का विवाह करा दिया। इस प्रकार के आन्तर्जातीय

विवाह के कारण उस समय की जनता में बड़ी खलबली मच गई। बिज्जल के राजा ने भी इस विवाह का विरोध किया। इस गड़बड़ में राजा बिज्जल की हत्या हो गई। मालूम होता है, बसवेश्वर के कुछ अंधभक्तों ने ही राजा की हत्या की थी। इस से वासव के दयालु हृदय पर भारी चोट लगी। इस पर वे कल्याणनगर छोड़ कर कूडल संगमदेव के क्षेत्र में चले गये और अपना शरीर छोड़ दिया। इस प्रकार महात्मा बसवेश्वर आजकल के अर्थों में भी क्रान्तिकारी समाज-सुधारक हुतात्माओं में गिने जा सकते है। * बसवेश्वर ने कहा है—

"...सब का जन्म एक ही ढंग से होता है। इच्छा, आहार, सुख, और विषय सब के लिए समान है।...उच्च कुलीन की क्या पहचान है? एक मनुष्य लोहा पीटता है और लोहार कहलाता है। दूसरा कपडे धोता है और धोबी कहलाता है। एक सूत फैलाता है और जुलाहा कहलाता है। दूसरा पुस्तक पढ़ता है और ब्राह्मण कहलाता है। क्या उन मे से किसी का जन्म कान के रास्ते भी हुआ था?...केवल वही उच्च कुल का है जो ईश्वर की पूजा करना जानता है।"

"चाण्डाल वही है जो दूसरों की हिंसा करता है। अस्पृश्य वही है जो अभक्ष्य पदार्थों को खाता है। जात-पाँत क्या चीज़ है? उन लोगों की जाति क्या है? वास्तव में उच्चकुलीन केवल ईश्वर के वह भक्त है जो प्राणि मात्र का कल्याण चाहते हैं।"

"वही अस्पृश्य है जो माता-पिता को गाली देता है। वही अन्त्यज है जो परोपकार में विघ्न डालता है। ईश्वर-भक्तों की हत्या करनेवाला ही अस्पृश्य है। वही अस्पृश्य है जो धन के लिए दूसरों के प्राण लेता है। वही अन्त्यज है जो मन में पर-स्त्री की इच्छा करता है। वही अन्त्यज है जो अधर्म करता है। हे देव, इस प्रकार के अन्त्यजों से तो सारा गाँव भरा पड़ा है! किन्तु गाँव से दूर रहनेवालों को अन्त्यज कह कर पुकारा जाता है। क्या यह न्याय है?"

"क्या सिरियाल को हम बनिया कह सकते है? क्या माचय्या धोबी था? क्या ककय्या डोहेरा था या चेन्नय्या अन्त्यज था? इन को ऐसा कह कर यदि उस के बाद भी मै अपने को ब्राह्मण कहूँ तो मेरा ईश्वर मुझ पर हँसेगा।"

---

* "महात्मा बसवेश्वर के वचन" प्रकाशक एम. एन. शितप्पा एण्ड ब्रदर्स, चिक्पेट चौक, बोंगलोर सिटी। मूल्य आठ आना।

सिरियाल, माचय्या और कक्कय्या वसवेश्वर के समय के ऐसे भक्त और सन्त थे, जिन का जन्म कथित छोटी जातियों में हुआ था।

इसी प्रकार आज से कोई डेढ़ सौ वर्ष पहले एक और महात्मा हो गये है। वे भी जाति से ब्राह्मण थे। उनका नाम तुलसी साहब हाथरसवाले था। एक दिन वे कानपुर में गंगा-तट पर स्नान कर रहे थे। वहीं उनसे कुछ दूर पर एक आचारनिष्ठ ब्राह्मण भी गंगा-स्नान कर रहा था। इतने में एक शूद्र आकर उस ब्राह्मण के निकट स्नान करने लगा। शूद्र के कुछ छींटे उछल कर उस ब्राह्मण पर जा गिरे। ब्राह्मण क्रुद्ध होकर शूद्र को मारने दौड़ा। शूद्र बेचारा लज्जा, भय और ग्लानि से खड़ा काँप रहा था। इस दृश्य को देख, तुलसी साहब हाथरसी बहुत दुःखी हुए। वे उस ब्राह्मण से क्रोध का कारण पूछने लगे। वह बोला यह शूद्र भगवान् के चरण से उत्पन्न हुआ है। इसलिए नीच और जघन्य है; इस ने मुझे भ्रष्ट कर दिया है। इस पर तुलसी साहब ने उस ब्राह्मण से पूछा—"तुम गंगा-स्नान करने क्यों आए हो?" वह बोला—"गङ्गा विष्णु-चरण से उत्पन्न हुई है; इसलिए पतित-पावनी है।" इस पर तुलसी साहब बोले—"अरे भगवान् के चरण से निकली हुई जलमयी गंगा जब पतित-पावनी है तो उन्हीं चरणों से निकला हुआ यह मनुष्य शूद्र, इतना निकृष्ट और जघन्य कैसे हो गया, जो उस के छुए जल के छींटों से तुम अपवित्र हो गये?"

आचार्य रामानन्द, भक्त ढेढराज, राजा राममोहनराय, स्वामी दयानन्द, स्वामी रामतीर्थ, भाई परमानन्द, रामानन्द चटरजी, रवीन्द्रनाथ ठाकुर, चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य, देवसमाज के प्रवर्तक सत्यानन्द अग्निहोत्री, आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी, मोतीलाल नेहरू और बंगाल में आर्यसंघ के संस्थापक स्वामी समाधिप्रकाश, बैरिस्टर सावरकर, श्रीनिवास आयंगर इत्यादि कितने ही ब्राह्मणकुलोत्पन्न महाशयों ने उपदेश और कर्म द्वारा जातिभेद पर कठोर आघात किया है। हमारे जात-पाँत-तोड़क मंडल के पहले महोपदेशक श्री. भूमानन्दजी भी जन्म से ब्राह्मण थे। उन्हों ने स्वयं जातिभेद को तोड़कर विवाह किया था। जातिभेद पर आक्रमण करनेवाले इतने विद्वान् शायद किसी ब्राह्मणेतर जाति ने उत्पन्न नहीं किए।

दशवाँ परिच्छेद

जातियों की उत्पत्ति

वेद में " आर्य, " और " दास " इन दो वर्णों के अतिरिक्त कुछ अन्य जातियों के नाम भी आते है। पर उन जातियों की संख्या बहुत ही अल्प है। मनु-स्मृति के समय मे यह संख्या बढ़ कर ६२ से भी अधिक हो गई (मनु० अध्याय १० श्लोक ४०)। और आज तो जातियों और उपजातियों की कोई गिनती ही नहीं। श्री. केतकर के अनुसार ब्राह्मणों के मुख्य विभाग आठ सौ से ऊपर है (केतकर कृत हिस्टरी आव कास्ट, पृ. ५) श्री. ब्लूमफ़ील्ड अपनी पुस्तक " रीलिजन आफ़ दि वेदाज़ " में लिखते है कि ब्राह्मणों में ही दो सहस्र अवान्तर भेद है। केवल सारस्वत ब्राह्मणों की ही ४६९ शाखाएँ हैं, क्षत्रियों की ९९० और वैश्यों तथा शूद्रों की तो इस से भी अधिक। गुजरात में दश-दश बारह-बारह घर की अलग-अलग ब्राह्मण-बिरादरियाँ है। अकेले सूरत नगर में ही बनियों के ६५ से अधिक विभाग है। उडीसा के कटक ज़िले में बैठ कर छोटे-छोटे मटके बनानेवाले कुम्हार, उन कुम्हारों से अलग बिरादरी हैं जो खडे हो कर बडे-बडे मटके बनाते है। उन का आपस में रोटी-बेटी-व्यवहार नहीं होता। इस प्रकार जो ग्वाले कच्चे दूध से मक्खन निकालते है वे उन ग्वालों से बेटी-व्यवहार नहीं कर सकते, जो दही से मक्खन निकालते हैं। भारत के कई भागो में जो मछेरे अपने जाल दायें से बायें को बुनते है वे बायें से दायें को जाल बुननेवालों के साथ बेटी-व्यवहार नहीं करते।

इन अगणित जातियों और उपजातियों का कारण हिन्दुओं के मन में बैठी हुई अतिरिक्त पवित्रता की भावना है। जैसे-आजकल लोग अच्छे वंश की गाय का अच्छे वंश के साँड के साथ मिलाप करा कर, बढ़िया प्रकार की गौएँ और बैल उत्पन्न करने का यत्न करते है, उत्कृष्ट कोटि के मनुष्य उत्पन्न करने के लिए भी प्राचीन स्मृतिकार कुछ वैसा ही उपाय करना चाहते थे। आज भी उत्कृष्ट गुणोवाले घोडे को तो निकृष्ट गुणोंवाली घोड़ी से मिला कर अच्छे घोडे उत्पन्न

करने का यत्न होता है, पर निकृष्ट गुणोंवाले घोडे को उत्कृष्ट वंश की घोड़ी से नहीं मिलाया जाता। इसी सिद्धान्त को दृष्टि में रखते हुए उच्च वर्ण के पुरुष को नीच वर्ण की स्त्रियों से तो विवाह करने की आज्ञा थी, पर नीच वर्ण के पुरुष को उच्च वर्ण की स्त्री से नहीं। इस व्यवस्था को तोड़नेवालों के लिए उन्हों ने कडे सामाजिक दण्ड रक्खे थे। वर्ण-संकरता का हौआ बड़ा भयंकर रूप धारण कर गया था। पर मनुष्य का दण्ड-विधान प्रकृति को अपना कार्य करने से नहीं रोक सकता। भारत के ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र तो भला एक ही वंश के थे, उन स्त्री-पुरुषों का कामदेव के तीक्ष्ण शरों से बिद्ध हो कर आपस में समागम हो जाना तो कुछ कठिन ही नहीं था। पर अमेरिका के गोरे और नीग्रो एक दूसरे से बिलकुल जुदा–दो वंश के है और किसी नीग्रो का किसी गोरी स्त्री से यौन संबंध हो जाने पर, क्लक्लक्स क्लान नामक गुप्त संस्था के गोरे उसे जीते जी जला देते है, तो भी वहाँ नीग्रो स्त्री और गोरे पुरुष का ही नहीं, गोरी स्त्री और नीग्रो पुरुष का भी समागम हो ही जाता है। स्मृतिकारों के मतानुसार ये विभिन्न जातियाँ इस प्रकार विभिन्न वर्णों के स्त्री–पुरुषों की सन्तान है। मनुस्मृति के दशवें अध्याय (श्लोक १–५०) में बहुत सी जातियों के संबंध में बताया गया है कि कौन जाति किस वर्ण के पुरुष और किस वर्ण की स्त्री के निषिद्ध समागम से उत्पन्न हुई है। औशनस स्मृति में लिखा है कि चोरी से वैश्य की कन्या मे ब्राह्मण से जो बालक उत्पन्न होता है वह कुम्हार[१] है। पाराशर संहिता, अध्याय ११ में नाई की उत्पत्ति ब्राह्मण पिता और शूद्र माता से बताई गई है। विहार के भूमिहार[२] (ब्राह्मण) क्षत्रिय पिता और ब्राह्मणी माता से उत्पन्न हुए माने गये है। अग्रहारी कुस्तवानी और माहुरी आदि ब्राह्मणों का जन्म अग्रवाल पिता और ब्राह्मणी माता से बताया गया है। औशनस स्मृति में बढ़ई की उत्पत्ति क्षत्रिय पिता और ब्राह्मणी माता से बताई गई है।

---

१. वैश्यायां विप्रतश्चौर्यात्कुंभकार: स उच्यते। ३२

२. अग्रवालस्य वीर्येण संजातो विप्रयोषिति
अग्रहारी कुस्तवानी माहुरी सम्प्रतिष्ठा।
क्षत्रियस्य च वीर्येण ब्राह्मणस्य च योषिति
भूमिहार्य्याभवत्पुत्रो ब्रह्म क्षत्रस्य वेषभृत्।

हमें तो यह सारा वर्णन प्रलाप मात्र प्रतीत होता है। इस में युक्तिसंगत बात कुछ भी नहीं। सुप्रजनन विद्या (Eugenics) की दृष्टि से भी यह निःसार है। वशंपरम्परा का नियम (Law of Heredity) बताता है कि माता-पिता और पूर्वजों के गुण-दोष ही सन्तान में प्रकट हो जाया करते हैं। अब सोचने की बात यह है कि ब्राह्मण पुरुष और वैश्य स्त्री में मिट्टी के वर्त्तन बनाने के कौन गुण हैं जो सन्तान में प्रकट हो कर उसे कुम्हार बना देंगे। फिर जिस का पिता ब्राह्मण है उस कुम्हार को तो शूद्र ठहरा दिया है और जिस का पिता क्षत्रिय है उस भूमिहार को ब्राह्मण। कहीं कुछ है, कहीं कुछ। जिस वंशपरंपरा के नियम का ठीक-ठीक पता आज के वैज्ञानिकों को भी नहीं, उस का ज्ञान उन स्मृतिकारों को था, ऐसा मानना कठिन है। किसी अगले परिच्छेद मे दिखाया जायगा कि इस प्रकार की वर्णसंकरता का भय बिलकुल निराधार एवं अज्ञानमूलक है। इस से लाभ के स्थान मे हानि ही हुई है। इस ने स्त्रीजाति पर विपत्ति का पहाड़ गिरा दिया है। इस ने छः करोड़ मनुष्यों को अछूत बना दिया है और हिन्दू-जाति को असंख्य ऐसे छोटे-छोटे समूहों में बाँट दिया है जिन का खान-पान और ब्याह-शादी की दृष्टि से आपस में उतना भी संबंध नहीं जितना चिड़िया घर के पशु-पक्षियों का एक दूसरे से होता है।

दलित जातियों की उत्पत्ति बताते हुए चन्द्रनगर के प्रधान न्यायाधीश श्रीयुत जकालियट अपनी "भारत में बायबिल" नामक फ्रेंच पुस्तक में यों लिखते है—

"वेदों के उत्तरकालीन प्राचीन हिन्दू-क़ानून निम्नलिखित दण्डों का विधान करते है—

पहला-मृत्यु; दूसरा-उच्च वर्ण से नीच वर्ण में गिरा देना; तीसरा-सारी जाति से पूर्णतया अलग कर देना; चौथा-मुद्गरों से पीटना और शिकंजे में कसना, पाँचवाँ-शुद्धि और यज्ञ; छठा-अर्थ-दण्ड।

ये प्राचीन व्यवस्थापक कैद करना बिलकुल जानते ही न थे। जहाँ परमेश्वर का कार्य आरम्भ हो, वहाँ मनुष्य का हाथ रुक जाना चाहिए। अपने इस सिद्धान्त के अनुसार वे बहुत ही कम अवस्थाओं में मृत्यु-दण्ड को धर्म-सम्मत समझते थे। वे केवल उन्हीं अपराधों के लिए प्राण-दण्ड देते थे जो उन की राजनीतिक संस्थाओं के मर्म का घात करने वाले हों।

इन दण्डों में सब से भयानक दण्ड सब वर्णों से पूर्ण बहिष्कार था। कठोर से कठोर यातनाएँ भी इस से अच्छी समझी जाती थीं। जाति-बहिष्कार के साथ ही उस की धन-संपत्ति, उस का कुटुम्ब, उस के मित्र, और उस के सब नागरिक एवं राजनीतिक अधिकार भी उस से छिन जाते थे। न केवल उसके अपने ही, प्रत्युत इस दूषण के अनन्तर उत्पन्न होनेवाली उस की सारी सन्तान के भी।"

सुनिए, मनु उन का किन शब्दों में प्रतिषेध करता है—

"जिन लोगों पर कलङ्क का टीका लग गया हो, उन के संबंधियों को, क्या मातृकुल के और क्या पितृकुल के, चाहिए कि उन का परित्याग कर दें और करुणा एवं आदर की कुछ भी परवा न करें।"

"हमें उन के साथ रोटी और बेटी का संबंध नहीं रखना जाहिए। न उन-के साथ मिल कर यज्ञ और पठन-पाठन ही करना चाहिए। सर्व–सामाजिक बंधनों से पृथक् वे पृथ्वी पर दुःख झेलते फिरें... ।"

इस दण्ड-नीति से, सारी जाति से सर्वथा वहिष्कृत कर देने से, अभागे और सदा के लिए अपमानित अछूत नाम के मनुष्य की उत्पत्ति हुई है। वर्णाश्रम को माननेवाले हिन्दुओं के लिए अछूत अभी तक भी दुस्तर, घृणा की वस्तु बना हुआ है। बडे से बड़ा प्रबुद्ध हिन्दू भी इस घृणा को नहीं छोड़ सकता।

इस कलंक को अमिट बनाने के लिए और इस विचार से कि कलंकित व्यक्ति किसी दूर देश में अपने कलंक को छिपा कर इस से छूट न जाय, अपराधी के माथे या कंधे पर, उस के दोष के अनुसार, गरम लोहे से दाग़ दिया जाता था।

चातुर्वर्ण्य के लोगों में से उस को जल, अग्नि और चावल देनेवाले के लिए पतित होने का दण्ड था।

इस प्रकार जाति के भीतर एक और ऐसी जाति की रचना हुई जो अशुद्धि के लिए प्रसिद्ध थी और जिसे व्यवस्थापक ने अतीव अपवित्र जन्तुओं से भी नीच ठहराया।...

जब अछूत ब्राह्मण को अपनी ओर आते देखता है, तब उसे चटपट रास्ता छोड़ देना पड़ता है, और दश पग के अन्तर पर, अपनी दीनता को दिखलाने

के लिए, धूलि में लेटकर प्रणाम करना पड़ता है, नहीं तो ब्राह्मण के नौकर उसे पीट-पीट कर मार डालते है।

यदि वह किसी सवर्ण को मिले तो उसे घुटनों के बल बैठ जाना और जब तक वह पास से हो कर निकल न जाय, बिना उस की ओर देखे; शिर को झुकाए रखना चाहिए।

यदि उस के पास भोजन और अग्नि न हो तो उसे ये वस्तुएँ कहीं से माँगनी या चुरानी होंगी। कोई भी हिन्दू-घर उस के लिए खुला न होगा, कोई भी मनुष्य उसे चावल न देगा और किसी भी चूल्हे से उसे आग न मिलेगी।

ऐसी ही साडम्बर दण्ड-नीति की बदौलत ब्राह्मण लोग प्रत्येक वर्ण को उस के लिए नियत विशेष सीमा के भीतर बंद रखने में समर्थ थे, और पतित कर देने का भय दे कर, अपने निरङ्कुश अधिकार का सम्मान सब से कराते थे।

पेशवाओं के शासन-काल में, महाराष्ट्र देश में, यदि कोई सवर्ण हिन्दू सड़क पर चल रहा हो तो अछूत को वहाँ चलने की आज्ञा नहीं होती थी, ताकि कहीं उस की छाया से वह सवर्ण भ्रष्ट न हो जाय। अछूत को अपनी कलाई पर या गले में निशानी के रूप में एक काला डोरा बाँधना पड़ता था, ताकि हिन्दू उसे भूल से स्पर्श न कर बैठें। पेशवाओं की राजधानी पूना में अछूतों के लिए राजाज्ञा थी कि वे कमर में झाड़ू बाँधकर चलें। चलने से भूमि पर उन के पैरों के जो चिन्ह बनें, उन को उस झाड़ू से मिटाते जायँ; जिस से कोई हिन्दू उन पद-चिन्हों पर पैर रखने से अपवित्र न हो जाय। पूना में अछूत को गले में मिट्टी की हाँडी लटका कर चलना पड़ता था, ताकि उसे थूकना हो तो उस में थूके। कारण यह कि भूमि पर थूकने से यदि उस के थूक पर किसी हिन्दू का पाँव पड़ गया तो वह अपवित्र हो जायगा *।

प्राचीन स्मृतिकारों ने रक्त-संकर या वर्ण-संकर को रोकने का बहुतेरा यत्न किया, पर उनको उस में सफलता न हुई। उलटा उस प्रयत्न का दुष्परिणाम असंख्य छोटी-छोटी जातियाँ और सब से बढ़ कर मनुष्यता का कलंक-अस्पृश्य जाति, हुई। भारत में आज एक भी ऐसी जाति नहीं जो प्रतिज्ञा-पूर्वक कह

*Annihilation of Caste. 1945 By Dr. B. R. Ambedkar p. 5.

सके कि उस के रक्त में किसी दूसरी जाति के रक्त का मिश्रण नहीं हुआ। और तो और, स्वयं ब्राह्मण भी इस रक्त-संकरता से नहीं बच सके। स्वर्गीय बाबू रामानन्द चट्टोपाध्याय ने सन् १९२९ में लाहौर में जात-पाँत-तोड़क मण्डल के सम्मेलन के अध्यक्ष के आसन से बोलते हुए कहा था कि हम बंगाली ब्राह्मणों में मंगोल रक्त का मिश्रण है, और हमें इस का अभिमान है। इसी प्रकार "वैदिक संपत्ति" नामक पुस्तक में श्री. रघुनन्दन शर्मा ने सिद्ध किया है कि कन्हाडे ब्राह्मण चीनी है, चित्पावन ब्राह्मण यहूदी है,* नागर ब्राह्मण ग्रीक है। राजपूतों में तो मुसलमानों का बहुत अधिक रक्त मिला है। डॉ. भाण्डारकर का कथन है कि चित्पावन ब्राह्मण एशिया माइनर से आए हुए हैं। Census report of India 1931, Vol. I, part III, XXVIII).

कहते है, गुजरात के अम्भीर ब्राह्मण राजपूत वंश के है। ये लोग अहीरों के पुरोहित है। (What the Castes are, by J. Wilson, Vol.

---

* यहुदियों के चितपावन बनने की कथा का सारांश स्कन्द पुराण में इस प्रकार दिया गया है—

एवं निवासं कुर्वत्सु अकस्मादैव योगतः।
नीत्वा सागर मध्यस्थैर्म्लेंच्छैर्बबरकादिभिः।
बहून्यब्दान्यतीतानि तेभ्यो जाता च सन्ततिः।
जातिं पृच्छसि हे राजन् जाति कैवर्तकः स्मर्नः।
सिंधुतीरे कृतो वासो व्याधकर्म विशारदः।
चतुर्दश गोत्रकुलं स्थपितं चातुरंगके।
सर्वेच गौर वर्णास्ते सुनेत्राश्च सुदर्शनाः॥

अर्थात्—दैव योग से अफ्रिका देश के बर्बर आदि अनार्य लोग भारत के पश्चिमी मार्ग से आकर सह्याद्रि के किनारे पर बसे। बहुत वर्ष उपरान्त इन की जो सन्तान हुई उस ने उस समय के परशुराम नामक राजा के पूछने पर कहा कि हे राजा, हम लोग मल्लाह हैं, सागर-तीर पर रहते है, और शिकार करना हमारा काम है। सब को गौर वर्ण सुन्दर और अच्छे नेत्रों वाले देखकर परशुराम ने चितपावन बनाया।

माधव शतप्रश्न कल्पलतिका नामक पुस्तक से भी यही बात प्रकट होती है।

II, p. 120)। सूरत जिले के तपोधन ब्राह्मण पतित समझे गये हैं। इसी प्रकार वहाँ के अनाविले ब्राह्मणों को भी बहुत से लोग ब्राह्मण नहीं मानते। कहते है, वे स्थानीय पहाड़ी जाति के थे। इसी प्रकार सपादलक्ष या सवा लाख संप्रदाय के ब्राह्मण भी शूद्रों को जनेऊ देकर बनाए गये थे। (Campbell, Indian Ethnology, p. 259,)

प्रतापगढ़ के कुछ ब्राह्मणों को अहीर बताया जाता है। कुछ लोग इन्हें कुर्मी और कुछ लोग इन्हें भाट कहते है। कहते है कि राजा माणिकचंद ने उन्हे ब्राह्मण बनाया था (Indian Ethnology, p, 260; Tribes and Castes of the N. W. P. & Oudh, Vol. I. p. XXI,) बिलासपुर कहलर (पंजाब) के राजा ने युद्ध मे आवश्यकता होने के कारण कोलियों को क्षत्रिय बनाया था (Glossary of Castes & Tribes of the Punjab, Vol. I. p. IV)

उन्नाव के राजा तिलकचंद ने एक समय प्यास के मारे किसी लोध जाति के मनुष्य के हाथ से पानी पी लिया। जब उस की जाति उन्हें मालूम हुई, तो उन्हों ने इन लोगों को ब्राह्मण बना दिया। यही आमताड़ा के पाठक है। (Glossary)।

उन्नाव के महाव्रर राजपूत पहले बेहारा (कहार) थे। युद्ध में घायल हुए राजा तिलकचंद को वे युद्ध-स्थल से उठा लाए थे। इसी उपकार के बदले में राजा ने उन्हें राजपूत बना दिया। (Glossary, 261) इसी ज़िले के डोमवार राजपूत पहले डोम थे (Closs.) इसी प्रकार बहुत से राजपूत, जाट और गूजर लोग सिदियन या शक जाति के है (Glossary, p. 447),*'

गुण-कर्म-स्वभाव के बजाय वर्ण के जन्मना हो जाने के बाद छोटी-छोटी जातियों और उपजातियों का उत्पन्न हो जाना अनिवार्य था। इन अवान्तर भेदों के बिना जन्मना वर्ण बने नहीं रह सकते। मान लीजिए, एक व्यक्ति आपके निकट आकर कहता है कि मैं ब्राह्मण हूँ। अब उस की बात की सत्यता को जानने का आप के पास क्या साधन है? गुण-कर्म कसौटी हो, तो आप उसकी

* " भारतवर्ष में जातिभेद, " पृष्ठ १३८, १३९

परीक्षा कर लें, उसके जन्म का पता तो उस की माता और दूसरे आत्मीय जनों को ही हो सकता है। बस, जब वह कहता है कि मैं ब्राह्मण हूँ तो आप पूछते है—कौन ब्राह्मण ? वह उत्तर देता है—"सारस्वत"; इस से गौड़, चित्पावन, नागर, पंचद्रविड़ आदि दूसरे ब्राह्मणों से वह अलग चुन लिया गया। फिर आपने पूछा—"कौन सारस्वत"? उत्तर मिला—"जोशी।" अब जोशी ब्राह्मण बहुत अधिक नहीं। उस के सगे-संबंधियों से पूछ कर पता लगाया जा सकता है कि वह जोशी है या नहीं। "जोशी" के बाद उसका गोत्र और प्रवर पूछ लेने से तो उस गोत्र और प्रवर के ब्राह्मणों की संख्या बहुत सीमित रह जाती है और उन से पूछ कर निश्चय किया जा सकता है कि वह व्यक्ति सचमुच ब्राह्मण जाति का है या किसी दूसरी का। कहने का मतलब यह है कि-ये जातियाँ और उपजातियाँ रक्त-सांकर्य अर्थात् एक जाति का रक्त दूसरी जाति में मिलने से रोकने के उद्देश्य से ही बनी मालूम होती है।

पर इस प्रकार की जातियाँ और उपजातियाँ बना देने से भी रक्त का मिश्रण तबतक नहीं रुक सकता, जबतक स्त्रियों की पवित्रता पर पूरा बल न दिया जाय। बस; इसी भाव से प्रेरित होकर हिन्दू लोग बहुत प्राचीन काल से अपनी स्त्रियों के संबंध मे बहुत शङ्काशील रहे है। कोई स्त्री भूल से एक रात घर से बाहर रह गई, या किसी से हँसती हुई देख ली गई, या किसी मुसलमान ने बलात् उसका आलिङ्गन कर लिया, बस: इतने से ही वह समाज के लिए त्याज्य और बहिष्कार्य हो जाती है। इस प्रकार सहस्रों नहीं, लाखों हिन्दू स्त्रियाँ समाज से ढकेल कर बाहर निकाली गई है। किन्तु अति पवित्रता की यह भावना कुछ आज की नहीं। हम इसे रामचन्द्र के समय में भी आज के ही सदृश प्रबल रूप मे पाते है।

श्री० रघुनाथ शास्त्री कोकजे ने अपनी "हिन्दुओं की अवनति की मीमांसा"* नामक पुस्तक में इस विषय को बहुत अच्छी तरह से विशद किया है।

कहा जाता है कि रामचन्द्र ने एक धोबी के कहने से ही सीताजी को वनवास दे दिया था। पर यह बात ठीक नहीं। वाल्मीकि रामायण में ऐसा लिखा नहीं मिलता। एक धोबी ही क्यों, उस काल में सर्व-साधारण के ऐसे ही

* प्रकाशक-जोगल अन्ड सन्स, पूना—२

विचार थे। सीता के संबंध में लोग क्या कहते है इस की सूचना भद्र नामक दूत ने रामचन्द्र को इन शब्दों में दी थी—

" प्रजा कहती है कि इस में संदेह नहीं कि रामचन्द्रजी ने अलौकिक वीरता का काम किया है। जिस रावण को देवता भी न मार सकते थे उसे उन्हों-ने मारा है। पर जिस सीता को रावण बलात् अपनी गोद में उठा कर ले गया था, जो लड्का मे अशोकवाटिका में रखी गई थी, जो राक्षसों की कैद में रही थी, उस की निन्दा रामचन्द्र क्यों नहीं करते ? ऐसी सीता का उपयोग कर के वे प्रसन्न कैसे होते है ? अब हमे भी अपनी स्त्रियो के संबंध में ऐसी बाते सहनी पडेगी, क्योंकि जो काम राजा करता है प्रजा उसका अनुकरण करती है †। "

प्रजा जानती थी कि सीता अपनी इच्छा से नहीं गई थी, वरन् रावण उसे बलात् उठा लेगया था। फिर भी वह ठीक नहीं समझती थी कि सीता को रामचन्द्र अपने घरमें रखे। केवल प्रजा का ही ऐसा विचार हो सो बात नही। स्वयं रामचन्द्र भी इसी विचार के थे। रावण-वध के बाद जब सीताजी पहले ही पहल रामचन्द्र के सामने आई थीं तब राम ने उन से कहा था—" रावण ने मेरा अपमान किया था, सो उसका बदला मै ने पूरी तरह ले लिया। अब मैं कृतकृत्य हूँ। परन्तु रावण ने तुम्हे स्पर्श कर और बुरी दृष्टि से देख कर दूषित कर दिया है। अब एक गौरवयुक्त कुल में जन्म लेनेवाला मेरे जैसा पुरुष तुम्हें स्वीकार नहीं कर सकता।" इतना ही नहीं, रामचन्द्र ने यह भी कहा—" तुम जैसी दिव्यरूपा मनोरम स्त्री को देखकर और अपनी रानियों की ओर देखकर रावण का बहुत समय तक चुप रहना असंभव है।"

इसलिए यह कहना ठीक नहीं कि राम ने एक धोबी के कहने से अथवा प्रजा के अनुरोध से सीता का परित्याग किया था। स्त्रियों की पवित्रता के संबंध में उन के अपने विचार भी प्रजा के विचार से भिन्न न थे।

रामचन्द्र ने लंका में रीछों और वानरों की सेना के सामने सीताजी से कहा था—" मै तुम्हें स्वीकार नहीं कर सकता, तुम जिधर चाहो जा सकती हो।" ऐसा कठोर और निष्ठुर वचन सुन कर सीताजी को अवश्य मर्मान्तिक वेदना हुई होगी, पर उन्होंने साहस करके राम से पूछ लिया—" मेरा मन तो आप के हृदय में ही रहता था। जब मेरा शरीर पराधीन हो गया, मेरे

† उत्तर काण्ड ४३।१७–१९

अधीन न रहा, तब मैं क्या कर सकती थी ?" (युद्ध काण्ड, ११८-९) इस उत्तर से भी रामचन्द्र को सन्तोष नहीं हुआ और उन्हों ने सीताजी से अग्निदिव्य करने को कहा। सीताजी जलती आग में बैठ कर भी न जलीं। इस प्रकार उन्होंने अपनी पवित्रता को प्रमाणित कर दिया। राम उन को लेकर अयोध्या आए। यहाँ जब जन-लाँछन के भय से राम ने उन को वनवास दिया और महर्षि वाल्मीकि के उनकी पवित्रता की साक्षी देने पर भी उनको स्वीकार न किया वरन् पुनःअग्नि दिव्य करने को कहा, तो सीताजी का हृदय दो टूक हो गया। उन्हों ने पुनः अग्नि दिव्य किया तो सही, पर उस से न तो उनको और न राम को ही कुछ लाभ हुआ। सीताजी ने पृथ्वी माता से प्रार्थना की—"माता वसुन्धरा, यदि मैं मन और काया से शुद्ध हूँ तो मुझे अपने गर्भ में स्थान दीजिए।" पृथ्वी फट गई और सती सीता उस में समा गईं।

इस घटना का वर्णन करके महर्षि वाल्मीकि ने एक प्रकार से हिन्दू जाति के सामने समस्या रख दी है कि यदि तुम स्त्रियों की अति पवित्रता पर बल दोगे, तो राम की भांति तुम्हें अपने स्त्रीधन से वंचित हो जाना पडेगा। खेद है, हिन्दूओं ने उस चेतावनी से आजतक भी कोई शिक्षा नहीं ली। हिन्दू लोग ब्रह्म देश, अफ्रिका, अमेरिका और यूरोप जाते है। वहाँ की स्त्रियों से संबंध कर के सन्तान उत्पन्न करते है। फिर बाल-बच्चों को छोड़कर स्वदेश भाग आते है। इन की उस सन्तान को वहाँ का समाज अपने में पचा लेता है। गत प्रथम महायुद्ध मे इंग्लेण्ड मे ही सैकड़ों-सहस्रो बच्चे ऐसे उत्पन्न हो गये थे, जिन के पिताओ का कुछ पता ही न था। पर इंग्लिश समाज ने न तो उन बच्चों को वर्ण-संकर या जारज संतान कह कर वहिष्कृत किया और न उनकी माताओं को ही लांछित कर के सीता की भांति निकाल दिया। वे सब इंग्लिश समाज में दूध मे पानी की भांति मिल गये। पर हमारे यहाँ किसी हिन्दू स्त्री का यदि किसी अँगरेज़ या मुसलमान ही नहीं वरन् किसी दूसरी जाति के हिन्दू से भी संबंध हो जाय तो उसे एकदम समाज को छोड़ देना पड़ता है और उस की सन्तान या तो ईसाई-मुसलमान बन जाती है या एक नई जाति या उपजाति की नीव रख देती है। मतलब यह कि प्रत्येक दशा में हिन्दू-समाज की हानि ही होती है। हिन्दुओं ने रामायण से यह अतिरिक्त पावित्र्य-भावना ही सीखी है। अर्थात् उन्हों ने स्त्री के चरित्र पर तनिक सा संदेह होते ही उसे निकाल

देना ही सीखा है, अपनी स्त्री का अपमान या अपहरण करनेवाले को उस प्रकार दण्ड देना नहीं सीखा जिस प्रकार राम ने रावण को दिया था। जन्मना वर्ण–व्यवस्था के नियम को थोड़ा सा भी तोड़ देने पर स्त्री-पुरुष और उन की सन्तान को बिरादरी से बाहर निकालने और इस प्रकार नई–नई जातियों और उपजातियों के बनने का कारण इस अति पवित्रता की भावना के सिवा और कुछ नहीं। अगले परिच्छेद में हम हिन्दुओं की कुछ जातियों की उत्पत्ति की मनोरंजक बातें देंगे।

ग्यारहवाँ परिच्छेद

जातियों की उत्पत्ति—२

हिन्दुओं की अनेक जातियों और उपजातियों के नाम उन प्रदेशों के कारण पड़े है जहाँ वे पहले बसी थीं। केवल किसी प्रदेश विशेष में बसने से ही कुछ लोग दूसरे लोगो से अलग जाति बन गये है और उन्होंने उनसे रोटी-बेटी व्यवहार करना अस्वीकार कर दिया है। आगे कुछ जातियों और उन की उपजातियों का संक्षिप्त परिचय दिया जाता है। उस से पता लग जायगा कि कितनी तुच्छ-तुच्छ बातों से इन जातियों का पार्थक्य हुआ है।

१. ब्राह्मण

गौड़—यह ब्राह्मणों की एक प्रसिद्ध जाति है। श्री० ज्वालाप्रसाद मिश्र अपने "जाति-भास्कर" के पृष्ठ ४० पर लिखते है कि पंजाब का हरियाना प्रान्त अर्थात्–रोहतक, पानीपत, कर्णाल, सोनीपत का प्रदेश और मारवाड़, हस्तपुरा, फ़तेहपुर और सरयु नदी के उत्तर का प्रदेश, यह सब गौड़ कहलाता है। मत्स्य पुराण में इस गौड़ प्रदेश का उल्लेख है। इस देश में बसनेवाले ब्राह्मण गौड़ कहलाते थे। इन की आगे कई उपजातियाँ है। गौड़ केवल गौड़ों से ही बेटी–व्यवहार करते है।

सनाढ्य—यह गौड़ों की उपजाति है। सनाढ्य-संहिता में लिखा है कि बहुत बड़े तपस्वी होने से इन का यह नाम पड़ा है।

सारस्वत—"जाति-भास्कर" (पृष्ठ २०–२३) कहता है कि सरस्वती नदी के तीरवर्ती प्रदेश का नाम सारस्वत है। उस प्रदेश में बसनेवाले ब्राह्मण सारस्वत कहलाए। इस समय सरस्वती नदी का कुछ पता नहीं और ये लोग भी सर्वत्र फैले हुए है, फिर भी सारस्वत कहलाए जा रहे है। इसी पुस्तक में सारस्वतों की उत्पति एक और रीति से भी बताई गई है। पर वह इतनी

अश्लील है कि उसे यहाँ न लिखना ही अच्छा है। "जाति-कोष *" (Glossary of the Castes and Tribes of the Punjab, P. I23) में लिखा है कि सारस्वतों के पाँच बड़े विभाग है, अर्थात्—

(१) ब्राह्मणों के ब्राह्मण, जिन को शुक्ल ब्राह्मण कहते है।

(२) खत्रियों के ब्राह्मण। (३) अरोड़ों के ब्राह्मण (४) जाटों के ब्राह्मण (५) नीच जातियों के ब्राह्मण।

खत्रियों के ब्राह्मण आगे फिर छः भागों मे विभक्त है—पंचजाति, छः जाति, जनाही रिष्टवंश, खुखरान, सरीन। सारस्वतों मे मोहला, जैतली, झींङ्गन त्रिखा, कुमारिया ये पंचजाति है। झींङ्गन की उत्पति पृष्ठ २४ पर इस प्रकार दी गई है कि यह शब्द झींङ्गा य झञ्ज से निकला है। इसका अर्थ घंटा है। इनके पूर्वजों के जन्म पर घंटे का शब्द सुनाई दिया था। यह जाति केवल २० पीढ़ी पुरानी है।

फिर इस झिंगन के तीन उपविभाग है—गौतम, उत्थृ और नत्थृ। फिर नत्थू के दो विभाग है—चमन-पत्ती और कमल-पत्ती। नत्थू नाम इस लिए पड़ा कि ये लोग नाक में नथुनी पहनते है। त्रिखा नाम इस लिए पड़ा कि इन लोगों का स्वभाव तीखा अर्थात् उग्र होता है। "जाति-भास्कर" (पृष्ठ २२) में लिखा है कि पंचजाति की एक पंचायत में विचार हो रहा था कि पम्बुओं को निकाल कर किसी दूसरे को पंचजाति मे सम्मिलित किया जाय। उस समय अकस्मात् छत पर से एक मूसल गिर पड़ा। मूसल को पंजाबी भाषा में मोहला कहते हैं। इसे एक दैवी घटना समझ, पंचों ने मोहलों को पंच जाति में सम्मिलित कर लिया। सारस्वतों की एक उपजाति तोलड़ी है। इन में एक विचित्र प्रथा है। विवाह के अवसर पर ये वधू को वर के साथ नहीं भेजते, वरन् गुड़ की भेली लाल कपडे में लपेट कर वधू के बदले वर के साथ भेजते है। फिर जब मुकलावा या द्विरागमन होता है तब वधू सुसराल जाती है। काँगड़ा प्रान्त के सारस्वतों के तीन प्रकार है—नगर-कोटिया, बहेड़ू और हलवाहा। फिर नगरकोटिया की १३ शाखाएँ है—बहेड़ू

---

* पुस्तक में जहाँ "जाति कोश" लिखा हो वहाँ उस से अभिप्राय यही (Glossary) है।

की दो शाखाएँ हैं—कच्चा बहेड़ू और पक्का बहेड़ू। फिर कच्चा बहेड़ू की ९, पक्का बहेड़ू की १३ और हलवाहा की २९ शाखाएँ है।

हुसैनी ब्राह्मण—यह लोग यज्ञोपवीत धारण करते और तिलक लगाते हैं। ये हिन्दुओं से नहीं, केवल मुसलमानों से दान लेते हैं। "जातिकोष" (पृष्ठ १४२) में इनकी उत्पत्ति इस प्रकार दी गई है कि बादशाह यज़ीद की सेनाओं ने इमाम हुसैन का शिर काट कर लौटते हुए सियालकोट ज़िले के अन्तर्गत बाठोवाल मे विश्राम किया। यह गॉव उनके पूर्वज राहब का जन्म-स्थान था। इमामहुसैन के शिर को राहब के घर में रक्खा। दूसरे दिन जब राहब को पता लगा कि यह शिर पैगम्बर के नाती का है तो उस ने वह शिर तो छिपा कर रख लिया और उस के बदले में अपने पुत्र का शिर काट कर दे दिया। पर यज़ीद के सिपाहियों ने पहचान लिया कि यह शिर वह नहीं। इस पर राहब ने अपने सातों बेटों के शिर काट कर यज़ीद के सिपाहियों को दे दिए। उसी राहब के वंशज ये हुसैनी ब्राह्मण है।

मछली खाने और खीर खाने—इन के संबंध में "जातिकोष" (Glossary. पृष्ठ १४२) में यों लिखा है—

सारस्वत ब्राह्मणों का एक विभाग पातक कहलाता है। इस के दो उपविभाग है—मछली खाना और खीर खाना। सिखों के दूसरे गुरु अङ्गद मांस-मछली खाया करते थे। तीसरे गुरु रामदास मांस-मछली का सेवन नहीं करते थे। अपने गुरु के अनुकरण में उन्हों ने आप तो मछली नहीं खाई, पर अपने पुत्र के मुण्डन-संस्कार पर अपने पुरोहित को मछली दे दी। इस से उस पुरोहित के वंशज "मछली खाने" कहलाने लगे। आजकल भी तीसरे गुरु के वंशज मुण्डन-संस्कार के समय जीती मछली तो नहीं, किन्तु आटे की मछली तेल में तल कर अपने पुरोहित को देते हैं। अब इस संस्कार को वे मुण्डन नहीं कहते, क्योंकि सिख लोग शिर के बाल नहीं मुँडाते।

पुच्छलर और **सिंगलस**—जातिकोष (पृष्ठ ८८) में लिखा है कि नारनौल के एक ब्राह्मण ने एक नीच जाति की स्त्री से विवाह कर लिया। इस ब्राह्मण को सात लड़के और सात ही लड़कियाँ हुईं। जब उन के विवाह का समय आया तब उस ने अपने लड़कों को अमावस के दिन एक गाय ले आने को कहा। जब वे गाय ले आए तो उस ने उन को गाय का एक एक अंग

छूने के लिए कहा। जिस ने गाय की पूँछ को छुआ; उस का गोत्र पुच्छलर हो गया और जिस ने सींग को छुआ उस का गोत्र सिंगलस।

ब्राह्मणों में पुष्करणा बहुत हलके समझे जाते हैं। इन पुष्करणों की आगे बीसियों जातियाँ है। उन में से एक जाति वट्टू है। यह इतनी नीच समझी जाती है कि यह एक कहावत हो गई है—"ब्राह्मणों मे वट्टू, घोड़ों में टट्टू"। अर्थात् घोड़ों में जो स्थान टट्टू का है, ब्राह्मणों में वही स्थान वट्टू का है। हिसार ज़िले में ब्राह्मणों की एक जाति का नाम "भेड़" है। मालूम होता है, इन के किसी पूर्वज ने भेड़ पाली थी, इसी से इन का यह नाम पड़ गया। इसी प्रकार अम्बाला ज़िले में "पीला भेड़ी" और "सरीने" नाम की ब्राह्मणों की दो उपजातियाँ है। "पीला भेड़ी" नाम का कारण यह है कि इन के किसी पूर्वज ने एक मादा भेडिया को बचाया था। विवाह के अवसर पर ये भेड़िए की पूजा करते है। "सरीने" नाम का कारण यह है कि इन के किसी पूर्वज ने सरिस के पेड़ के नीचे शरण ली थी। सरिस को पंजाबी भाषा मे 'सरीं' कहते है।

२. खत्रियों की उपजातियाँ

बेरी—यह चोपड़ा जाति का एक उपोप विभाग है। इस नाम का कारण यह है कि इन का एक पूर्वज बेरी के पेड़ के नीचे उत्पन्न हुआ था।

खत्रियों की दो बड़ी जातियाँ बुंजाही और सरीन है। इन की उत्पत्ति इस प्रकार है। बादशाह अलाउद्दीन खिलजी खत्रियों मे विधवा-विवाह प्रचलित करना चाहता था। इस के लिए उस ने क़ानून बना दिया। पश्चिमी प्रदेश के खत्रियों ने इस का विरोध किया और बावन मनुष्यों का एक प्रतिनिधि-मण्डल बादशाह की राजसभा मे जाने के लिए बनाया। पर पूर्वी प्रदेश के खत्रियों ने आवेदन-पत्र पर हस्ताक्षर न किए और बादशाह के "शरअ आईन" अर्थात् विधान को मान लिया। इसी से ये लोग "शरअ आईन" कहलाने लगे। यही शब्द बिगड़कर 'सरीन' बनगया है। जिन ५२ खत्रियों ने आवेदन-पत्र पर हस्ताक्षर किए थे वे बावनजी या बुँजाही कहलाए।

कपूरचन्द, मिहिरचन्द और कान्हचन्द नाम के तीन खत्री, सम्राट अकबर की राजपूत रानियों के सेवक के रूप में दिल्ली गये। इस प्रकार वे अपनी बिरादरी के दूसरे लोगों से अलग हो गये। वहाँ उन की सन्तान का आपस में विवाह

हुआ। इस से खत्रियों की तीन नई जातियों बन गई, अर्थात्—कपूरचंद की संतन कपूर, मिहिरचंद की मेहरा और कान्हचंद की खन्ना कहलाने लगी।

देहली प्रदेश मे "बिज्ज्वल" नाम की एक उपजाति है। इस के जुदा जाति होने का कारण इस प्रकार है। एक दरिद्र खत्री निर्धनता के कारण अपने लड़के का मुंडन-संस्कार न कर सका। लड़के के बाल बहुत बढ़ गये और शिर मे फोडे-फुंसियाँ निकल आईं। इस से लड़का सदा रोता रहता था। एक दिन दो मुग़ल मुसलमानों ने उसे बाज़ार में रोते देखा। उन्हें उस पर दया आगई। संयोग से एक नाई भी पास से होकर जा रहा था। उन्हों ने उसे लड़के के बाल मूँड़ने को कहा। नाई ने कहा कि बिना संस्कार किए इस के बाल नहीं मुँडेगे। इस पर उन्हों ने नाई को पकड़ लिया। एक ने उसे जूते से पीटा, और दूसरे ने तीर का निशाना उस की ओर कर के उसे डराया कि इस लड़के का शिर मूँड़ो नहीं तो मार डाले जाओगे। उस ने डर के मारे शिर मूँड दिया। लड़के को आराम आ गया। पर जब वह घर पहुँचा तो उस का शिर मुँड़ा देख स्त्रियों ने रोना-पीटना आरम्भ कर दिया। तब से इस जाति के लोंगों में मुंडन-संस्कार के अवसर पर यह प्रथा है कि ये अपनी संतान का शिर मकान के भीतर नहीं, बाहर के द्वार पर मूँड़ते है। संस्कार के समय दो मुसलमान बुलाए जाते है। उन में से एक हाथ में जूता पकड़ता है और दूसरा धनुष बाण। जिस दिन नाई शिर मूँडता है उस दिन घर में शोक मनाया जाता है। रोटी नहीं बनती, वरन् दीपक भी पडोसी आकर जलाते हैं।

भुच्चर—इस जाति के इस नाम का कारण यों बताया जाता है—कोई मनुष्य इतना निर्धन था कि अपने लड़के का भी पालन-पोषण न कर सकता था। वह उसे वन में अकेला छोड़ गया। वहाँ एक भैस और चील ने उस की पालना की। कुछ समय बाद उस की माता को वह लडका मिल गया। भैस का दूध पीकर वह खूब मोटा-ताज़ा हो रहा था। इसलिए माता ने उसे भुच्चर कहा। पंजाबी भाषा में इस शब्द का अर्थ 'हट्टा-कट्टा' होता है। तभी से उस के वंशजों का नाम भुच्चर पड़ गया।

खत्रियों की "कक्कड़" नाम की उपजाति के नाम का कारण श्रोत्रिय छोटेलाल कृत "जाति-अन्वेषण" (पृ ३ १३८) में यों दिया गया है—एक समय की बात है; एक सहभोज में खाने में कुछ कंकड (रेत) थी। खाते

समय वह मुँह में किर-किर करती थी। सब खानेवालों ने कंकड़ कहा। इस से "कंकड़" नाम पड़ गया। वही कालान्तर में बिगड़ कर कक्कड़ हो गया।

३. अरोड़ों की जातियाँ

अरोडवंश-इतिहास (पृष्ठ १२४) में लिखा है कि विधवा-विवाह पर विचार करने के लिए एक बार अरोडों की एक भारी सभा हुई। सभासदों को प्रधान के आसन के तीन ओर बैठाया गया—अर्थात्—दहिने, बायें और सामने। दहिनी ओर के सभासदों ने इस के विरुद्ध अभिमत दिया। वहाँ वे उत्तर दिशा में बैठे थे। इसलिए उन की उपजाति "उत्तरार्धा" हो गई। बाईं ओर बैठने वालों ने विधवा-विवाह का समर्थन किया। वे दक्षिण दिशा में बैठे थे। इस लिए उन की जाति "दक्खनी" हो गई। जो मध्य में या सामने बैठे थे, वे मौन रहे। वे "डाहरे" कहलाए। अरोड़ों की एक जाति का नाम चिक्कड़ (कीचड़) है। सरकारी प्रकाशन "जाति कोष" में लिखा है कि एक बरात में इतनी अधिक मिठाई और खाना परोसा गया कि चिक्कड़ अर्थात् कीचड़ हो गया। इस से इस जाति का यह नाम पड़ा। एक व्यक्ति ने किसी दूसरे व्यक्ति की कमर-पीड़ा दूर कर दी। इस से उस की सन्तान की जाति का नाम "चुग" पड़ गया। चुग या चुक पंजाबी में कमर की पीड़ा को कहते हैं।

अरोड़ों की अनेक जातियाँ जीव-जन्तुओं और पौधों के नाम पर हैं, जैसे— चुटाई (चमगादड़), गाबा (गाय का बछड़ा), घीरा (कपोत), गीदड़, घोड़ा, हंस, कुक्कुट, लोमड़, मच्छर, मक्कड़, मेंढा, नागपाल, गिलहरी, तोता, नेवला, कोयल, चावला, जण्डवानी, कस्तुरिया, महदीरत्ता, लोटा, मक्खीचूस, मंजी, रेवड़ी, रुखे, दोलडे, चौतडे, कुब्बे, चोटीपट, तगडे इत्यादि।

४. बनियों की जातियाँ

बनिया जाति के प्रधान तीन विभाग हैं—अग्रवाल, ओसवाल और मवाल। इनका एक उपविभाग "बारहसेनी" है। इस की उत्पत्ति चमारों से बताई जाती है। (जातिकोष पृष्ठ ६०) कहावत भी है—बन्नों के बनिए, चन्नो के चमार। अर्थात् दो बहनें थीं एक बन्नो, दूसरी चन्नो। एक की सन्तान बनिए है दूसरी की चमार। 'जाति-भास्कर' के लेखक के मतानुसार राजा वल्लभ के

प्रतापी पुत्र राजा अग्र की राजधानी दक्षिण प्रदेश के प्रताप नगर में थी। इसी के नाम से इसकी सन्तान अग्रवाल अर्थात्– अग्र के बालक कहलाए। अग्रसेन के एक वंशज ने एक नीच जाति की स्त्री से विवाह कर लिया। उस से जो सन्तान हुई वह " माहोर " जाति है।

ओसवालों का एक उपविभाग बेद है। यह नाम इस प्रकार पड़ा कि एक ओसवाल लड़की की आँख दुखती थी। देवी ने एक विशेष प्रकार का आक का पौधा उत्पन्न कर के उस के रस से लड़की की आंख अच्छी कर दी। इसलिए उस लड़की की सन्तान बेद नाम से प्रसिद्ध हो गई। (देखो, सरकारी प्रकाशन जातिकोष।)

बनियों की बहुत सी जातियाँ आवास, भूमि या गाँव के नाम पर बनी है। जैसे। जोधपुर–मारवाड़ के पाली नगर मे रहने के कारण पालीवाला नाम से एक उपजाति बन गई। इसी प्रकार पोरबदर मे रहनेवाले पोरावाल, गुड़गाँव के अन्तर्गत, धूसी नगर में रहनेवाले धूसर, अयोध्या के निकट जैसी नामक प्रदेश में रहनेवाले जैसवार कहलाए।

बनियों की एक जाति का नाम कुमार वैश्य है। एक वैश्य स्त्री को संयोगवश कुमारी दशा मे ही गर्भ रह गया। उसकी सन्तान कुमार वैश्य कहलाती है। लोहे का काम करने के कारण एक " लोहिया " जाति बन गई है।

नागर वैश्य एक प्रसिद्ध जाति है। यह वास्तव में वैश्य नहीं, ब्राह्मण है। जहाँगीर के समय तानसेन नाम का एक प्रसिद्ध गायक था। उसने दीपक राग गाया। इससे उसका शरीर जलने लगा। वह चिकित्सा के लिए घूमता–फिरता, झड़ नगर में पहुँचा। वहाँ नागर ब्राह्मणों की स्त्रियों ने मल्हार राग गाकर, उस की अग्नि को शान्त कर दिया। जब जहाँगीर को समाचार मिला कि अमुक स्त्रियाँ परम सुन्दरी और गान–विद्या में बड़ी प्रवीण है तो बादशाह ने उन्हें बुलावा भेजा, पर वे नहीं आई। तब उस ने ब्राह्मणों की हत्या की आज्ञा दी। जिस के गले में जनेऊ देखा, उसका वध कर दिया। उस समय **साढे चौहत्तर सौ** ब्राह्मण जनेऊ छोड़कर वैश्य हो गये। तब से वे नागर वैश्य कहलाते हैं। अब ये एक दूसरेको चिट्ठी लिखते समय ऊपर ७४½ का अंक लिखते हैं।

ओसवालों की एक उपजाति चोरड्या है। इसे कोचड़ भी कहते है। यह कोचड़ नाम इसलिए पड़ा कि इन के किसी पूर्वज ने चिड़िया पाली थी। (जाति-भास्कर, पृष्ठ १४१)।

५. कायस्थ

इस जाति के सकसेना और श्रीवास्तव उपविभाग की स्त्रियाँ आपस में मिलते समय " सलाम " कहती है। इस से मालूम होता है कि इस जाति पर इस्लाम का बहुत प्रभाव पड़ा है। इन लोगों में विद्या का बहुत प्रचार है। पर वर्ण-व्यवस्था की दृष्टि से ये शूद्र समझे जाते है। " जाति-भास्कर " के पृष्ठ ५९ पर इस जाति के शूद्र होने के बहुत से प्रमाण और हाईकोर्ट के निर्णय दिए गये है।

सरकारी प्रकाशन जाति कोष (पृ. ४३७) मे लिखा है कि ब्रह्मा ने तप किया और उस की काया से एक पुत्र उत्पन्न हुआ। पुत्र का नाम चित्रगुप्त रक्खा गया। ब्रह्मा ने उसे धर्मपुरी मे यमराज के पास भेज दिया। इसी चित्रगुप्त की सन्तान कायस्थ है। चित्रगुप्त की एक स्त्री से माथुर, भटनागर, सकसेना और श्रीवास्तव नाम के चार पुत्र हुए। इन के नाम पर चार अलग अलग जातियाँ बन गई। चित्रगुप्त की दूसरी स्त्री से आठ लडके हुए—निगम, गौड़, वाल्मीकि आदि। इन के नाम पर भी आठ अलग जातियाँ बन गई।

भड़भूंजा—इस जाति का उल्लेख कायस्थों के साथ ही " जातिकोष " में मिलता है। भड़भूंजों के चार गोत्र है—यदुवंशी, भटनागर, सकसेनी और वासुदेव। इन मे यदुवंशी अहीर गोत्र, भटनागर एवं सकसेनी कायस्थ गोत्र और वासुदेव ब्राह्मण गोत्र कहलाते है। इस से जान पड़ता है कि आरम्भ में अहीर, कायस्थ और ब्राह्मणों ने अनाज भूनने का काम आरम्भ किया होगा। इन के संबंध में एक कहावत प्रसिद्ध है—पढ़ गया तो कायस्थ, नहीं तो भट्टी झोंकने लायक़।

कुछ कायस्थ विद्वान अपने को क्षत्रिय और कुछ ब्राह्मण भी कहते हैं। कलकत्ता और इलाहाबाद के हाईकोर्टों के निर्णय भी इस विषय में भिन्न भिन्न हैं।

६. धीवर या कहार

धीवर को महरा और कहार भी कहते है। इन का काम पानी भरना है। " जाति कोष " के पृष्ठ ३८२ पर इस जाति की उत्पत्ति इस प्रकार लिखी है—

गढ़ मुख्यालय का अंकी नामक एक चौहान राजपूत छोटी आयु का एक पुत्र छोड़ कर मर गया। उस लड़के का नाम ढींगर था। जनता ने उस के साथ भृत्य का ऐसा व्यवहार किया और तिरस्कार-पूर्वक झीवर नाम रखा। दरिद्रता के कारण उस ने पानी भरने का काम आरम्भ किया। तब से उस की सन्तान झीवर नाम से पुकारी जाने लगी। सर रिचर्ड टेम्पल ने अपनी पुस्तक "पंजाब–कथाएँ" के पृष्ठ ६५ पर लिखा है कि एक झीवरने राजा रसालू की कहानियों से संबंध रखनेवाली रानी कोकिला को अपनी स्त्री बना लिया। उस से तीन पुत्र हुए, जिन के नाम पर सबीर, गबीर और सीर, ये तीन उपजातियाँ चलीं।

७. कुम्हार

इस जाति का मुख्य काम मिट्टी के बर्तन बनाना और खच्चरादि पर बोझ ढोना है। ये लोग भी अपनी उत्पत्ति ब्राह्मण से बताते हैं। नाभा राज्य में यह कहावत प्रसिद्ध है—

राम जातिका राँगडा, कृष्ण जाति का अहीर।
ब्रह्मा जाति कुम्हार है शिव की जाति फ़कीर॥

कुम्हारों को प्रजापति भी कहते हैं। "जातिकोष" (पृष्ठ ५६३) मे एक कहानी दी गई है—एक बार ब्रह्मा ने अपने पुत्रों में गन्ना बाँटा। बाकी सब ने अपना भाग खा लिया, पर कुम्हार ने अपने भाग का टुकड़ा एक घडे में बो दिया। वह उग पड़ा। कुछ दिन बाद ब्रह्मा ने अपने पुत्रों से गन्ना माँगा। बाक़ी पुत्रों के पास कुछ न निकला, पर कुम्हार ने निकाल कर दे दिया। इस पर प्रसन्न हो कर ब्रह्मा ने उसे प्रजापति की उपाधि प्रदान की।

कुम्हारों के दो बडे विभाग हैं—महर और गोला। इन की उत्पत्ति के संबंध में कई प्रकार की कहानियाँ प्रसिद्ध हैं। कूबा नाम का कुम्हार बड़ा भक्त था। उस की दो स्त्रियाँ थीं। उन में से एक घर से भाग गई। इस लिए उस की सन्तान "गोला" अर्थात् निकृष्ट कहलाई। महर अपने को गोला से ऊँचा समझते हैं।

कूबा भक्त की एक कहानी प्रसिद्ध है—वह प्रतिदिन २० घडे बनाता था और बीस ही दान कर देता था। एक दिन ३० साधु उस के घर आ गये।

पर उस ने प्रभु पर भरोसा कर के अपनी स्त्री को घडे लाने के लिए कहा। उस के चमत्कार से वे २० घडे ३० हो गये और उसने तीस साधुओं को दे दिए। इस पर यह दोहा प्रसिद्ध है—

कूबा भगत कुम्हार था भाँडे गढ़ता बीस।
हरि गोविन्द कृपा करी हुए बीस के तीस।

कुम्हारों की, आगे अनेक उपजातियाँ है, जैसे—बलदिया, जो बैलों पर मिट्टी ढोते हैं, और हथेलिया, जो चाक से बर्तन नहीं बनाते; संगरोमा, जो मिट्टी छानते हैं। इसी प्रकार कीलिया, नोखल और सोखल आदि है। कुम्हारों का एक सरोही गोत्र है। इस के बारे मे प्रसिद्ध है कि सरोही गोत्र के एक राजपूत ने एक लड़के का पालन-पोषण किया और उस के साथ अपनी बेटी का व्याह कर दिया। बाद को पता चला कि वह कुम्हार का बेटा था। इस पर उस राजपूत ने उस लड़के और उसकी स्त्री का त्याग कर दिया। इस से उसकी सन्तान की सरोही नाम की एक अलग जाति बन गई।

८. चूहड़ा

चूहड़ा पंजाब मे भंगी को कहते है। इस का दूसरा नाम वाल्मीकि भी है। इस के इस नाम का कारण यह बताया जाता है कि एक समय किसी भक्त ने बड़ा सहभोज दिया। उस मे वाल्मीकि देर से पहुँचे। तब तक सब लोग खाना खा चुके थे। इसलिए उन को बचा-खुचा खाना मिला। इस से उनकी सन्तान का नाम ही चूहड़ा अर्थात् बचा-खुचा खाना खानेवाला पड़ गया। अतएव अभी तक हिन्दू लोग चूहड़ों के लिए थाली मे जूठा भोजन छोड़ते है।

चूहड़ों के दो प्रकार है—एक-वाल्मीकि और दूसरे-लाल बेगी। लाल बेग वाल्मीकि का ही शिष्य माना जाता है। चूहड़ों के अनेक गोत्र या उपजातियाँ है। ये सब अपने को ऊँची जातियों से निकला मानती है। रोहतक के लोहित चूहडे अपने को सांझर नाम के एक राजपूत की सन्तान बताते है। चूहड़ों का एक गोत्र चौहान भी है। इसी प्रकार घुग्गे, उटवाल, मट्टू, रहेला, झजोटे, गिल, भट्टी, डला, खोखर, खोंजे और कल्याणे, आदि, इन की अनेक उपजातियाँ है। सोनीभीना नामक उपजाति अपने को कर्ण नामक एक ब्राह्मण राजा की सन्तान बताती है।

एक दन्त-कथा प्रसिद्ध है। भरत, सधरा, परातना और पूरबा, ये चार ब्राह्मण भाई थे। उन की गाय मर गई। उन्होंने सब से छोटे भाई पूरबा को लाश उठाने को कहा और वचन दिया कि हम भी इस मे तुम्हारी सहायता करेंगे। पर जब उसने उठाने के लिए लाश को हाथ लगाया तो उन भाइयों ने सहायता देने से इंकार कर दिया। इस से उस अकेले को ही लाश उठानी पड़ी। उसे जाति से बाहर निकाल दिया गया। डेरागाज़ीखाँ में उन ब्राह्मण भाइयों के नाम उरगा, भागा, सबरा और फरास्ता प्रसिद्ध है। वहाँ इस संबंध में निम्न लिखित दोहे भी प्रचलित है —

अल्ला चिट्ठी घल्ली है सब खोल बयान।
एथे गया मन्न के हुन क्यों करे अभिमान।
गो खुरी ने एके सभी करदी अरवान।
असाँ ब्राह्मण जन्म दे गल जाया तनियान।

इस से स्पष्ट है कि चूहडे अपने को जन्मना ब्राह्मण मानते है। इसी प्रकार दूसरा दोहा है—

अल्फ़ अल्लाहँ याद कर बेदे आ बेधन्य सिर्जनहारा।
चुगदी चरदी गोखुरी हो पई मुरदारा।
होए देवते इकट्ठे जा करें पुकारा।
तुसीं ब्राह्मण जात दे की बन गई मारा।

अर्थात्—चरती—चुगती हुई बछिया मर गई। उसे उठाया गया। सब देव गण मिल पुकार—पुकार कर कह रहे है कि तुम जाति से ब्राह्मण हो, तुम पर कैसी विपत्ति आ गई है।

श्री० ज्वाला प्रसाद मिश्र अपने "जाति-भास्कर" में गोपीनाथ रचित "जाति-विवेक" के आधार पर कहते है कि ब्राह्मण का ताड़न करनेवाले शूद्र के संयोग से तेवर की स्त्री में जो सन्तान उत्पन्न होती है वह भंगी कहलाती है।

९. चमार

जो भङ्गी मुसलमान हो जाय तो जैसे—उसे मुसल्ली कहते हैं वैसे ही जो चमार मुसलमान हो जाय, उसे मोची कहा जाता है। जो भंगी सिख बन जाता है,

उसका नाम मज़हबी सिख हो जाता है। इसी प्रकार जो चमार सिख बन जाता है उसे रामदासिया कहते है। हिन्दुओं मे एक मूढ़ विश्वास है कि काला ब्राह्मण और गोरा चमार अशुभ होते है। कहावत है—

काला ब्राह्मण गोरा चमार।
इन के साथ न उतरें पार॥

"जाति कोष" (पृष्ठ १४८) में लिखा है कि चन्नू और मुन्नू दो भाई थे। चन्नू ने अपने हाथ से गाय की लाश को उठाया। इस पर मुन्नू ने उसे बिरादरी से निकाल दिया। इस पर चन्नू की सन्तान चमार कहलाई। कपूरथला राज्य मे इन दो भाइयों के नाम गट और मट बताए जाते है। चमारों की अनेक उपजातियाँ है, जैसे जटिया, पाठी, रेगड़, चौहान, सिंधू, बेरवाल, कठाना, मधान इत्यादि। चमार यद्यपि स्वयं अछूत समझे जाते है, तो भी वे डोम नाम की एक दूसरी अछूत जाति के हाथ का नहीं खाते। कारण यह बताया जाता है कि चन्नू ने जब गाय की लाश उठाई थी तो डोम ने उसे देख लिया था।

मेघ—यह भी एक अछूत जाति है। जातिकोष (पृष्ठ ७७) में लिखा है कि इन का पूर्वज ब्राह्मण की सन्तान था। वह काशी मे रहा करता था। उसके दो पुत्र थे—एक विद्वान और दूसरा अपढ़। पिता ने विद्वान पुत्र से अपढ़ पुत्र को पढ़ाने के लिए कहा। पर उस ने पढ़ाने से इंकार कर दिया। इस पर उसे अलग कर दिया गया। उसी की सन्तान मेघ है।

बौरिये—सम्राट् अकबर और चित्तौड़ के राजा सान्दल का युद्ध हुआ। दोनों पक्ष के योद्धा बावली (जलाशय) के निकट लड़ रहे थे। इस पर राजपूत पक्ष के लोग "बावलिया" नाम से प्रसिद्ध हुए। यही शब्द बिगड़ कर "बौरिया" हो गया।

दूसरी दन्त कथा यह है कि कोई राजपूत एक लड़की पर आसक्त हो गया और उसने उससे विवाह कर लिया। पर कुछ दिन उपरान्त वह अपनी स्त्री को छोड़कर वन में चला गया। इस पर स्त्री के संबंधी उसे बावला कहने लगे। इस के उपरान्त उसका सारा परिवार ही "बावला" नाम से प्रसिद्ध हो गया। वही शब्द बिगड़ कर "बोरिया" हो गया। देखिए, पंजाब इंफर्मेशन ब्यूरो द्वारा संपादित, सर डेन्ज़ल इबटसन और श्री. विलियम की रिपोर्ट—"पंजाब की अछूत जातियाँ"।

तीसरी दन्त कथा यह है कि बौरिये चाँदा और जोड़ा राजपूतों की सन्तान है। जब शहाबुद्दीन गोरी की सेना चित्तौड़ में जयमल फत्ता की राजपूत सेना से लड़ रही थी तो ये बौरिये राजपूतों के पक्ष में हो कर लडे थे।

साँसी—यह पंजाब की एक जरायम-पेशा जाति कहलाती है। इसकी उत्पत्ति के संबंध में दन्त कथा इस प्रकार है—पंजाब के एक राजा ने अपनी लड़की को किसी कारण नगर से निकाल दिया। वन में घूमते-फिरते उसके एक लड़का उत्पन्न हुआ; उसका नाम "साहसी" रखा गया। उसकी सन्तान साहसी कहलाई। साँसी साहसी का ही अपभ्रंश है।

श्री० बी० डे, आई० सी० एस० ने ठीक ही लिखा है कि "ऊंची जातियों मे जो विभाजन पाया जाता है, उसे मिटाए बिना जो लोग अछूतोद्धार करते है, उनकी कार्यशैली गलत है। जातिभेद के उन्मूलन के बिना अस्पृश्यता निवारण का यत्न सर्वथा व्यर्थ है। इसका परिणाम नितान्त विफलता होगा। इस समस्या का सच्चा हल जात-पॉत की जड़ पर कुठाराघात करना है। पर दुर्भाग्य से बहु संख्यक हिन्दू जातिभेद से चिपटे हुए है।"*

यदि हिन्दुओं की विभिन्न जातियों की उपजातियों या पारिवारिक नामों को देखा जाय तो एक विचित्र रहस्य का पता लगता है। इनका आपस में मिलान करने से ऐसा लगता है कि ये कथित जातियाँ एक ही उद्गम या मूल से निकली है। किसी के ब्राह्मण, किसी के राजपूत, किसी के कुम्हार, किसी के जाट और किसी के चमार कहलाने लगने पर भी उनका मूल में एक होना स्पष्ट प्रकट हो रहा है, मेरे पास सब जातियों की उपजातियों या गोत्रों के नाम वर्तमान नहीं। फिर भी आगे कुछ उपजातियों के ऐसे नाम दिए जाते हैं जो एक से अधिक जातियों में पाये जाते हैं।

---

* इण्डियन रिव्यू, फरवरी १९१०

पारिवारिक नाम	किन-किन जातियों में मिलता है।
भट्टी	राजपूत, चमार, चूहड़ा, कुम्हार, जाट।
ढढियाल, भूपाल, डोड, गोहिल, सेंगर, चौहान	राजपूत, कुम्हार, चूहड़ा।
तालवाड़, सोनी	खत्री, कुम्हार।
भारद्वाज	खत्री, कुम्हार, चमार।
पवार	राजपूत, चमार, मराठा।
मल्ही, सोहल, ढिल्लो	जाट, कुम्हार।
खैरा	खत्री, कुम्हार, जाट।
रत्न, लखनपाल	ब्राह्मण, कुम्हार।
चोपड़ा	खत्री, चमार।
महता, सेठी	ब्राह्मण, खत्री, अरोड़ा।
सिंधू	जाट, चमार।

ऐसा प्रतीत होता है कि ये विभिन्न मानव-श्रेणियाँ थीं। परिस्थिति और सुभीते के अनुसार एक ही मानव-श्रेणी कहीं तो चमारों मे मिल गई और जूते बनाने लगी और कहीं राजपूतों मे मिलकर लड़ने-भिड़ने का काम करने लगी। परन्तु उसने पारिवारिक नाम नहीं छोड़ा। कालान्तर मे ये मानव-श्रेणियाँ अपनी वंशगत एकता को भूल गई। आज यह दशा है कि इनमे से एक जाति खान-पान, ब्याह-शादी और सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक हितों की दृष्टि से दूसरी जाति से उतनी ही भिन्न है जितना कि एक चीनी एक फ्राँसीसी से, वरन् जितना चिड़ियाघर का एक जन्तु दूसरे जन्तु से होता है। इन विभिन्न जातियों में आपस में प्रेम का लव-लेश भी नहीं। उन्होंने एक दूसरे के प्रति बड़ी अपमानजनक कहावतें बना रखी है। पाठकों के मनोरंजनार्थ उनमें से कुछ आगे दी जाती है:—

बाम्भन की प्रतीति सों सुख सोया न कोय।
बलिराज हरिचन्द का दिया राज इन खोय।
दिया राज इन खोय विप्र ताहिं बनी आई।
सीय जगत की मात ताहि जाय चुराई।

कहे गिरिधर कविराय जगत के ही थमम्न।
कोटि करो उपाय दम्भ नहीं चूके बाम्भन॥

ब्राह्मणों के विषय में एक दूसरी कहावत है—

अकाल बागड़ से ऊपजे, बुरा बाम्भन से होय।

यू. पी. के तगे ब्राह्मणों के संबंध में कहावत है—

तगा, ततैया, तूमड़ा और तरहे का तेल।
ये मीठे नहीं होवेंगे कितना ही गुड़ पेल॥

स्कूलों में प्राय विद्यार्थी कहा करते हैं—"कायस्थ बच्चे, कभी न सच्चे।" और—"खत्री पुत्रम् कभी न मित्रम्; जब मित्रम् तब दग़म दग़ा।"

दरज़ी-सुनार आदि शिल्पियों के बारे मे कहा है—

वेश्या, बंदर, अग्नि, जल, कूरी, कटक, कलार।
ये दस नहीं आपने सूजी, सुआ, सुनार॥

सूजी दरज़ी को कहते है। बनियो के लिए कहावत है—

तुलसी कभी न कीजिए वणिक-पुत्र विश्वास।
प्रीति-वचन और धन-हरण फिर दास का दास॥

और—**जिसका बनिया यार, उसको दुश्मन क्या दरकार?**

फिर बनियों ने आपस मे अपमानजनक बाते बना रखी है। महेश्वरी अपने को अग्रवालों से ऊँचा समझते है। ओसवाल, सरावगी और महेश्वरी को नीचा समझते है, एक दूसरे की खूब निन्दा करते है। अग्रवालों के लिए कहा जाता है—

अग्रवाल फग्रवाल, महेश्वरी मोंतियों की माला।

इसी प्रकार ब्राह्मणों में गौड़ अपने को ऊँचा समझते हैं। वे कहते हैं—"**पहले गौड, पीछे और।**" इधर नाई गौड़ों के भी कान काटते हैं। वे कहते हैं—"**पीछे प्रभु ने सृष्टि बनाई, पहले बना दिए नाई।**" और—

नाई, ब्राह्मण, कूकरा जाति देख गुर्राएँ।

अर्थात्—नाई, ब्राह्मण और कुत्ता अपनी जाति के दूसरे प्राणी को देख कर गुर्राते हैं। और लीजिए—

जाट, जुलाहा, जोगना, जागाती और जोय।
पाँचों जज्जे छोड़ कर प्रीति करो सब कोय।

और—

पीताम्बर छाज्यो भलो साबत भला न टाट।
और जात शत्रु भली, मित्र भला नहीं जाट।

अर्थात्—जाट की मित्रता दूसरी जाति के लोगों की शत्रुता से भी बुरी है। और लीजिए—

जाट न माने गुण करा चना न जाने बाह।

और लीजिए—

छोड़ा छोलन (खाती), बूँट उखाड़न (माली) थपथाड़िया (कुम्हार) और नाई।
इनसे प्रीति कभू न करियो, दगाबाज़ हैं भाई॥

और—

बनिए से दुष्ट नहीं, खेवट नहीं चमार से।
जाट से लठैत नहीं ठग नहीं सुनार से।
और जात की क्या कहूँ बद नहीं कुम्हार से।

ऐसी निन्दात्मक कहावतें केवल हिन्दी में ही नहीं, भारत की प्रायः सभी भाषाओं में है। पंजाबी में कहावत है—

सुनार, सूद, कुत्तेदा,
बसाह न करिए सुत्तेदा।

अर्थात्—सुनार, सूद और कुत्ता यदि सोए भी पडे हों, तब भी इनसे सावधान रहना चाहिए; इनसे हानि पहुँचने का डर हर समय रहता है। इसी प्रकार मराठी में कहावत है—

सोनार, शिम्पी, कुलकर्णी, अप्पा।
ह्या तिघाँची संगत नको रे बापा॥

आर्थात्—सुनार, छीपा, और कुलकर्णी, इन तीन जाति के लोगों का सहवास परमात्मा किसी को न दे।

एक जाति की दूसरी के प्रति यह घृणा एवं द्वेष-भाव कुछ आज का नहीं।

स्मृतियों में भी ऐसे द्वेषात्मक वचन स्थान-स्थान पर मिलते है। उदाहरणार्थ व्यास स्मृति में लिखा है—

वर्द्धिक नापितो गोप आशापः कुम्भकारकः।
वणिक्किरात कायस्थ मालाकार कुटुम्बिनः।
वरटो भेद चाण्डाल दास श्वपच कोलकः॥ ११॥
एतेंऽत्यजाः समाख्याता ये चान्ये च गवाशनाः।
एषां सम्भाषणात्स्नानं दर्शनादर्कवीक्षणम्॥ १२॥

अर्थात्—बढ़ई, नाई, ग्वाले, कुम्हार, बनिए, किरात, कायस्थ, माली, भङ्गी, कोल, चाण्डाल, ये सब अन्त्यज कहलाते है। इन पर दृष्टि पड़ जाय तो सूर्य-दर्शन करना चाहिए, और इनसे बात-चीत करने के बाद स्नान करन चाहिए, तब द्विजाति मनुष्य शुद्ध होता है।

बारहवाँ परिच्छेद

गोत्र क्या वस्तु है ?

हिन्दू-समाज जैसे असंख्य छोटी-छोटी जातियों और उपजातियों मे बँटा हुआ है, वैसे ही इसमे अनेक गोत्र और प्रवर भी है। एक ओर जहाँ हिन्दू अपनी सीमित जाति या उपजाति से बाहर बेटी-व्यवहार नहीं कर सकता, वहाँ दूसरी ओर वह अपने गोत्र और प्रवर के भीतर भी नहीं कर सकता। जाति के बाहर तो वह इसलिए नहीं करता, कि जिससे उसके रक्त की पवित्रता में दोष न आ जाय और गोत्र, प्रवर के भीतर इसलिए नहीं कि वह समझता है कि एक गोत्र के लोगों का एक ही रक्त होता है, वे रक्त की दृष्टि से भाई-बहन होते है, और भाई-बहन का विवाह शास्त्र में वर्जित है। इस दो ओर के प्रतिबंध के परिणामस्वरूप हिन्दू के लिए २१२१ लड़कियाँ विवाह के लिए निषिद्ध हो जाति है। श्रीयुत करन्दीकर एम. ए. ने अपनी अँगरेज़ी पुस्तक "हिन्दू एक्सोगेमी" (Hindu Escogomy) में इस विषय को बहुत अच्छी तरह स्पष्ट किया है। जिस प्रकार जाति और उपजाति के बाहर विवाह करने को पाप समझना भ्रममूलक है उसी प्रकार गोत्र और प्रवर को रक्त-संबंध मानना भी भूल है। श्री करन्दीकर के मतानुसार वेदों और ब्राह्मण-ग्रन्थों में विवाह के लिए गोत्र छोड़ने का कोई प्रमाण नहीं मिलता। उस काल में कुछ पीढ़ियों को छोड़ कर विवाह करने की प्रथा बहुत प्रचलित थी। शतपथ ब्राह्मण के समय में तीसरी और चौथी पीढ़ी के सपिण्डों में विवाह होते थे। उसके बाद माता की पाँच पीढ़ी और पिता की सात पीढ़ी के भीतर विवाह का निषेध कर दिया गया। सूत्र-ग्रन्थों के समय में सगोत्र विवाह के विरुद्ध भावना उत्पन्न होने लगी।

गोत्र-भेद ब्राह्मण-ग्रन्थों के समय आरम्भ हुआ। गोत्र का भाव वेदों, उपनिषदों और स्मृतियों के समय में थोड़ा बहुत भिन्न-भिन्न समझा जाता था।

महाभारत काल में गोत्र, कुल या वंश का पर्याय समझा जाने लगा। इसके अनन्तर बहुसंख्यक गोत्रों का परित्याग कर के ब्राह्मण लोग केवल दस बडे ऋषियों से अपना संबंध बताने लगे। वे इन दस ऋषियों को ही अपना गोत्रकर्त्ता मानते थे।

प्रवर से तात्पर्य किन्हीं विशेष सिद्धान्तों के प्रवर्त्तक गुरु के अनुयायियों का कुल था। प्रवर एक आध्यात्मिक संबंध था। इन्हीं प्रवरों के आधार पर गोत्र बने। मनु सब से प्राचीन स्मृतिकार माना जाता है। उसीने सगोत्र विवाह को वर्ज्य ठहराया। पर अपने गोत्र में विवाह करनेवालों के लिए उसने कोई दण्ड नियत नहीं किया। इससे प्रकट होता है कि गोत्र के बाहर विवाह करना अनिवार्य न था। बौद्धायन का मत है कि सगोत्र स्त्री से संबध न होना चाहिए। पर उससे होनेवाली सन्तान औरस है। गौतम सगोत्र विवाह को दण्डनीय कर्म ठहराता है। याज्ञवल्क्य, नारद, बृहस्पति, पाराशर सगोत्र विवाह की सन्तान को औरस ठहराते है, किन्तु यम और व्यास ऐसी सन्तान को चाण्डाल ठहराते है। वीर मित्रोदय के मत से सगोत्र विवाह अवैध है। सगोत्र स्त्री पुनर्विवाह कर सकती है। धर्म-सिंधु अठारहवीं शताब्दी के अन्त में लिखी गई थी। इस मे सगोत्र विवाह करनेवालो के लिए साधारण से व्रत द्वारा प्रायश्चित का विधान है। तेरहवीं शताब्दी के बाद सगोत्र विवाह की प्रथा प्रायः बंद ही हो गई थी।

मनु सातवीं पीढ़ी के बाद सपिण्डा विवाह की आज्ञा देता है। गौतम पिता की आठ और माता की सात पीढ़ी के भीतर विवाह का निषेध करता है। बौद्धायन के समय दक्षिण में तीसरी पीढ़ी मे सपिण्डों के विवाह होते थे। पर वशिष्ठ, नारद, विष्णु एवं याज्ञवल्क्य, पिता की सात पीढ़ी और माता की छः पीढ़ी के भीतर विवाह करने के विरुद्ध है। किन्तु गौतम के सिवा किसी ने भी सपिण्डा विवाह को दण्डनीय नहीं ठहराया और न ही इसे अवैध कहा है। दक्षिण मे अब भी मामा की लड़की से विवाह की प्रथा है। आधुनिक वैज्ञानिकों ने प्रयोगों द्वारा सिद्ध किया है कि यदि माता-पिता की थोड़ी पीढ़ियों को छोड़ कर विवाह हो जाय तो किसी प्रकार के मानसिक या शारीरिक दोष के बढ़ने का कोई भय नहीं। भय केवल दो तीन पीढी के भीतर विवाह करने मे ही है। इस विषय में अँगरेज़, जर्मन, फ्रेंच, रूसी, अमेरिकन आदि संसार की दूसरी जातियों पर भी हमें दृष्टि डालनी चाहिए।

आइए, तनिक देखें कि गोत्र क्या वस्तु है जिसके भीतर विवाह करने को बहन-भाई का विवाह मान कर बुरा समझा जाता है।

श्री गणेशदत्त शास्त्री कृत पद्मचन्द्र कोष में लिखा है—

भूर्गव्ययोगोगोत्र: गोत्रायते। इति मेदिनी गोत्र (१०)।

गोत्रायते—जो पृथ्वी को बचाता है।

गोत्र: पूरक्षकाः गोरक्षकाश्च।

'गोत्र' शब्द दो संस्कृत शब्दों-गो+त्र-से बना है।'गो' के दो अर्थ है—गाय और पृथ्वी। 'त्र' का अर्थ है त्राण या रक्षा करना। इसलिए गोत्र का शाब्दिक अर्थ होता है—"गाय और पृथ्वी की रक्षा करने वाला दल।"

मौलिक और प्राचीनतम आर्य गोत्र ये है—

विश्वामित्रोजमदग्निर्भरद्वाजोऽथ गौतमा:।
अत्रिवसिष्ठ: कश्यप इत्येते गोत्रकारका:॥

आरम्भ मे सात ऋषियों ने आर्य दलों (गोत्रों) का संघटन और संचालन किया। उन सात ऋषियों के नाम ये है—

१. विश्वामित्र, २, जमदग्नि, ३. भरद्वाज, ४. गौतम, ५. अत्रि, ६. वसिष्ठ, और ७. कश्यप।

कई विद्वान इन सात के साथ आठवाँ अगस्त्य भी बताते है और उसे आठवें गोत्र का प्रवर्तक मानते है।

समयान्तर में ये सात या आठ गोत्र (आर्य दल) बढ़ कर चौबीस हो गये, फिर उनचास और फिर सैकड़ों-सहस्रों—

चतुर्विंशति गोत्राणि। ऊन पंचाशत गोत्रभेदा:। गोत्राणितु शतानि अनन्तानि।

प्राचीन सात ऋषियों के वंशजों ने भी, अपने पूर्वजों के सदृश ही, युद्ध एवं शान्ति के लिए अपने दलों या गोत्रों को विशेषज्ञों के चार समूहों में संघटित किया। १. शिक्षक का काम करनेवालोंका नाम ब्राह्मण हो गया। २. योद्धा क्षत्रिय कहलाते थे। ३. कमसरियट या खान-पान का प्रबंध करने वालेका नाम वैश्य था। ४. बढ़ई, लोहार, जूता बनाने वाले, वस्त्र बुनने वाले, बोझा ढोने

वाले इत्यादि कर्मचारियों को शूद्र कहते थे। इस प्रकार प्रत्येक गोत्र या जन-समूह अपने आपमें सब तरह से पूरी आर्य बस्ती या उपनिवेश होता था। उसमें जीवन की सभी आवश्यकताओं को पूरा करनेवाले लोग रहते थे। किसी बात के लिए उपनिवेश को किसी दूसरे पर निर्भर नहीं रहना पड़ता था। युद्ध हो या शान्तिकाल वह उपनिवेश (गोत्र) अपने लिए शस्त्र, भोजन, वस्त्र, जूते, घोडे के ज़ीन, इत्यादि सब वस्तुएँ आप ही पैदा कर लेता था। उदाहरणार्थ ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रों के जिस सम्मिलित दल या गोत्र का मुखिया भरद्वाज ऋषि था वह " भरद्वाज गोत्र " कहलाता था। इसी प्रकार भरद्वाज के पुत्र भारद्वाज ने भी एक गोत्र या आर्यदल संगठित किया था। उस गोत्र का नाम उसके मुखिया के नाम पर " भारद्वाज गोत्र " अर्थात् भारद्वाज का जत्था या दल हो गया। इसी प्रकार अत्रि के पुत्र आत्रेय, जमदग्नि ऋषि के पुत्र जामदग्न्य, कश्यप के पुत्र काश्यप और पुराने ऋषियों के दूसरे वंशजों ने अपना अपना दल या गोत्र संघटित किया। जैसा ऊपर कहा गया, इन गोत्रों मे ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र सभी प्रकार के काम करनेवाले लोग रहते थे। इससे स्पष्ट हो जायगा कि विभिन्न वर्णों के होते हुए भी लोग क्यों अपने को एक गोत्र का कहते हैं।

समय पाकर गुरु ऋषि अपने गोत्रो (अनुयायी दल) के साथ वनों में बस्ती बना कर रहने लगे और उन्होंने अपने आश्रम जारी किए। एक आश्रम मे रहनेवाले सब स्त्री-पुरुष और लड़के-लड़कियाँ 'सगोत्र' (एक गोत्र के) कहलाते थे। आश्रामवासियों में स्त्रियों के लिए लड़ाई-झगड़ा न हो और लड़के-लड़कियाँ बिगड़ न जायँ, इस लिए गुरु ऋषि ने व्यवस्था दी —**अविवाह्याः सगोत्राः स्युः।** अर्थात् उसके आश्रम में रहनेवाले (" सगोत्र ") लड़के और लड़कियों का आपस में विवाह नहीं होना चाहिए वे आपस में भाई और बहन, गुरु-बंधु और गुरु-भगिनी बन कर रहें। इसी का नाम है एक ही स्थान में रहनेवाले पुरुषों और स्त्रियों के विवाह या " सगोत्र विवाह " का निषेध।

हमने ऊपर दिखलाया कि प्राचीन काल में गोत्र किसी गुरु ऋषि के अनुयायी दल का नाम और " सगोत्र " उस ऋषि के आश्रम या बसाई हुई बस्ती में रहनेवाले स्त्री-पुरुषों का नाम था। पर वे समय अब नहीं रहे।

अब न तो ऋषि-गुरु है और न उन ऋषियों के आश्रम ही। आज एक गोत्र के स्त्री-पुरुष और लड़के-लड़कियाँ आवश्यक नहीं कि एक ही आश्रम या एक ही बस्ती में रहते हों। आज तो वे सारे भारत में बिखरे पडे है। वरन् रेल, जहाज़ और आकाश-यान के प्रताप से देश-देशान्तर में जा पहुँचे है। इस लिए विभिन्न स्थानों में एक दूसरे से दूर बसनेवाले एक ही ऋषि-गोत्र के लड़कों और लड़कियों के विवाह का निषेध इस समय व्यर्थ और अज्ञान मूलक है।

उपर की व्याख्या से स्पष्ट है कि गोत्र का रक्त के साथ कोई संबंध नहीं। यह आवश्यक नहीं कि दो सगोत्र व्यक्ति एक ही माता—पिता की सन्तान हों। इसका समर्थन दूसरी जगह से भी होता है। मिताक्षरा श्लोक ५० (विवाह-प्रकरण) की टीका में लिखा है कि क्षत्रिय और वैश्य का अपना कोई गोत्र नहीं; उनके पुरोहित का गोत्र ही उनका गोत्र होता है। अग्नि पुराण कहता है—

क्षत्रिय वैश्य शूद्राणां गोत्रंच प्रवरादिकम् ।
तथान्य वर्ण संकराणं येषां विप्राश्रयाजका: ॥

(श्री चतुर्थी लाल शर्मा कृत नित्यकर्म प्रयोगमाला, पृष्ठ २६)

"उद्वाहतत्त्व" मे लिखा है कि क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र का गोत्र अतिदिष्ट अर्थात् आरोपित या बनावटी होता है। इतना ही नहीं, एक ही पिता के पुत्र भिन्न-भिन्न गुरुओं के कारण विभिन्न गोत्र के हो जाते है। उदाहरणार्थ राम (बलराम) का गोत्र गार्ग्य और वासुदेव (कृष्ण) का गोत्र गौतम हो गया था।

विष्णु पुराण (३-११-३३) में लिखा है कि माता के कुल से पाँचवीं पीढ़ी और पिता के कुल से सातवीं पीढ़ी की लड़की से धर्म युक्त विधि से विवाह करे। वहाँ गोत्र या जाति का निषेध न तो मातृकुल मे है और न पितृकुल मे। विश्वरूप ने याज्ञवल्क्य की व्याख्या मे और पराशर ने पराशर माधव में श्रुति का यह प्रमाण दिया है—

तस्मात्समानादेव पुरुषादत्ताचाद्यश्च जायते ।
उत तृतीये संगच्छावहै चतुर्थे संगच्छा व है ॥

अर्थात् एक ही पीढ़ी से भोक्ता और भोग्य भी उत्पन्न होता है, वे दोनों जानते है कि "हम दोनों तीसरे या चौथे पुरुष (पीढ़ी) में फिर मिलेंगे।"

इसी प्रकार पाणिनि ने भी लिखा है—**अपत्यं पौत्र प्रभृति गोत्रम्।** (४-१-१६२) इस का भाव यह निकलता है कि पोते के पुत्र के बाद गोत्र बदल जाता है। इन दोनों प्रमाणों में गोत्र और प्रवर का निषेध नहीं।

कवि कालिदास गोत्र का अर्थ सम्मिलित कुटुम्ब लेता है—

एको गोत्रे प्रभवति पुमान् यः कुटुम्बं विभर्ति—भोजप्रबंध।

अच्छा, कुछ काल के लिए हम गोत्र को सम्मिलित कुटुम्ब और उस सम्मिलित परिवार के लड़के लड़कियों को सगोत्र मान लेते है और उनके परस्पर विवाह को निषिद्ध ठहरा देते है, जिसमें एक ही परिवार में रहनेवाले दो भाइयों की सन्तान आपस में विवाह न करे। पर मान लीजिए, एक व्यक्ति अमृतसर मे रहता है। उसका दूसरा भाई इंग्लैंड में जा बसा है। वहाँ उसने किसी यूरोपियन महिला का पाणि-ग्रहण किया है। इसी प्रकार उसके बाल-बच्चों के विवाह भी विलायत मे हो गये है। अब यदि अमृतसर-निवासी भाई की दूसरी या तीसरी पीढ़ी के वशंज इंग्लैंड-निवासी भाई की दूसरी या तीसरी पीढ़ी के वशंज से विवाह कर ले तो इसे सगोत्र विवाह कैसे कहा जा सकता है ? विवाह अपनी जाति के बाहर न हो और अपने गोत्र के भीतर भी न हो, ऐसे बहुत अधिक प्रतिबंध लगाने से हिन्दू-समाज को लाभ के स्थान में हानि अधिक होने का भय है।

सगोत्र विवाह के निषेध का जो उद्देश्य बताया जाता है वह जाति के बाहर विवाह के निषेध से नष्ट हो जाता है। मान लीजिए, एक जाति की आठ उपजातियाँ है जो आपस मे ही बेटी-व्यवहार करती है। अब सैकड़ों वर्षों से आपस में ही विवाह होते रहने और बाहर का नया रक्त उनमें न मिलने से, उस सारी जाति का रक्त एक ही हो जाता है। इसलिए उस जाति के लोगों के विवाह एक प्रकार से भाई-बहन के विवाह हो जाते है। मुसलमानों और ईसाइयों में यद्यपि ताऊ-चाचा की सन्तान का आपस में विवाह हो जाता है, तो भी उनमें, जाति-पाँति का कोई बंधन न होने से, बाहर से नया रक्त भी आकर मिलता रहता है। पर हिन्दुओं में यह बात नहीं।

भारतीय पार्लमेण्ट और मैसूर की धारा सभा में सगोत्र-विवाह बिल पास हो चुके है। इन्दौर आदि की कानून बनाने वाली सभाओं में भी यह कानून पेश हैं। इनके अनुसार हिन्दुओं में ' सगोत्र विवाह ' कानून सम्मत समझे जायंगे।

तेरहवाँ परिच्छेद

१. जातिगत श्रेष्ठता २. वर्णसंकरता का हौआ

देश का दुर्भाग्य है कि इस समय कथित ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र आदि जातियाँ अपने को एक दूसरे से उतना ही भिन्न समझती है जितना कि गाय, घोड़ा, रीछ, मोर, तोता आदि चिड़िया-घर के पशु-पक्षी एक दूसरे से भिन्न होते है। उन में अपने को दूसरों से श्रेष्ठ समझने का भी दुर्भाव बहुत ही बुरी तरह से फैल रहा है। इसीलिए ब्राह्मण समझते है कि हम शूद्रों से बेटी-व्यवहार करेंगे तो हमारी जातिगत श्रेष्ठता या रक्त की पवित्रता नष्ट हो जायगी। पर उनकी यह दोनों धारणाएँ अज्ञानमूलक है। न तो ब्राह्मण और शूद्र में वह भेद है जो गाय और गधे मे है और न कोई जाति दूसरी जाति से श्रेष्ठ है। विज्ञान ने दोनों बातो को निराधार सिद्ध कर दिया है। सहस्रों वर्षों से द्विज की श्रेष्ठता और शूद्र की नीचता का ढिंढोरा पीट कर लोगों को भोन्दू बनाया गया है। जर्मनी के नाज़ी भी अपने को शुद्ध आर्य-रक्त की श्रेष्ठ जाति और यहूदियों को नीच–शूद्र मानते थे। नाज़ी-सत्ता के नाश ने संसार के सामने इस सब से बडे झूठ की पोल खोल दी।

अँगरेज़ और नीग्रो मे, या ब्राह्मण और शूद्र में जो विभिन्नता हम समझते हैं या हम देखते है—और जिसे हम बहुत बढ़ा कर देखते है—उसका अधिकतर कारण शिक्षा और सुयोग में अन्तर है। "श्रेष्ठ जाति या श्रेष्ठ वंश" नाम की कोई वस्तु नहीं, केवल श्रेष्ठ व्यक्ति है और वे सभी जातियों में पाये जाते है। ब्राह्मणों और अँगरेजों में भी श्रेष्ठ व्यक्ति है और शूद्रों और नीग्रो में भी है। अमेरिकन नृतत्त्व शास्त्र के जन्मदाता फ्रंज बोआस ने ठीक ही कहा है—"यदि हमें समूची मनुष्य-जाति में से नंबर तीन पर सब से अधिक समझदार, कल्पनापूर्ण, बलशाली और आवेग में न बह जानेवाले व्यक्ति चुनने पडें तो उनमें सभी जातियों के मनुष्य आ जायँगे।"

चार्लस डार्विन ने विकासवाद के संबंध में पहले यह विचार किया था कि वह एक सीधी लकीर है जिसके पैर पर बंदर है और चोटी पर गौराङ्ग मनुष्य। इसलिए एक झूठी बात का प्रचार हो गया है कि लोगों का एक समूह ऐसा है जो देवताओं से कुछ ही नीचे है।

यदि आप एप नाम के उच्चतर बंदरों में से कुछ की परीक्षा करें, तो आप देखेंगे कि एप की त्वचा हलकी गुलाबी है, पीली या मटियाली नहीं, वरन् गौराङ्ग मनुष्य की त्वचा से अधिक मिलती है। एप बंदर के शरीर पर भी लंबे बाल रहते हैं। गौराङ्ग जाति के शरीर पर भी संसार मे सब से अधिक बाल होते हैं। एप के होंठ पतले और नाक की बनावट भी पतली होती है। गोरी जाति के होंठ और नाक की बनावट जितनी पतली होती है उतनी संसार की किसी भी दूसरी जाति के मनुष्यों की नहीं होती। एप के कान छोटे होते है और गोरी जाति के समान छोटे कान संसार में किसी भी जाति के लोगों के नहीं।

इसलिए यदि इस काल्पनिक बात पर ही विश्वास करना हो तो हमें विश्वास करना होगा कि गौराङ्ग मनुष्य ही बहुत सी बातों में एप के अधिक सदृश है। परन्तु आज वैज्ञानिक लोग यह नहीं कहते कि मनुष्य एप का वंशज है। वरन् वे कहते है कि एप और मनुष्य दोनों का पूर्वज एक ही था। विज्ञान अब एप जैसी विशिष्टताएँ न कह कर आदिम विशिष्टताएँ कहता है। प्रत्येक मानवप्राणी यथार्त में आदिम विशेष लक्षणो का चलता-फिरता अद्भुतालय है। क्या आप अपने कानों को झुला सकते अथवा अपने सिर की बालोंवाली चमड़ी को हिला सकते है? लाखों वर्ष पूर्व की बात है, हम गाय की भाँति कानों को झुला कर मक्खियाँ उड़ा सकते थे। तब हमें अपने उन पङ्खों को एड़ लगा कर कानों को हिलाने का प्रयोजन था। हमारे शरीर का एपेण्डिक्स और टान्सिल पीढ़ियों से चली आनेवाली ऐसी दूसरी वस्तुएँ हैं जो अपनी मौलिक उपयोगिता खो बैठी हैं, जो इस समय हमें कुछ भी काम नहीं देतीं, पर जो अपना मौलिक आकार बनाए रखे हुए है। मानव-भ्रूण यही कहानी बताता है। माता के गर्भ में यदि तीसरे सप्ताह के भी मानव-शिशु को आप देखें तो वह गिरगिट, पक्षी या दूसरे किसी स्तनपायी जन्तु के भ्रूण से भिन्न नहीं होता।

निस्सन्देह जातियों में भेद है। त्वचा की रंगत, नेत्रों की तिरछाई, नाक के आकार और दूसरे विशिष्ट लक्षणों की दृष्टि से संसार की तीन बड़ी जातियाँ

मङ्गोल या पीतवर्ण, नीग्रो या कृष्ण वर्ण, और काकेशस या गौराङ्ग जाति एक दूसरे से भिन्न है। भेद अवश्य है पर हम उसे गलत रीति से देखते है। नर-कङ्काल सब कहीं एक जैसा है। ये विशेष लक्षण उस पर ऊपर से लादे गये है।

सब महत्त्वपूर्ण शारीरिक लक्षणों की दृष्टि से मनुष्य सब कहीं बिलकुल एक समान है। महत्त्वपूर्ण का अर्थ है मस्तिष्क, हृदय, फेफडे और मज्जातन्तु-जाल। धर्म और विज्ञान आज दोनों इस बात पर सहमत है कि सब मनुष्य एक ही परिवार के है, उन सब का रक्त एक ही है। विज्ञान धर्म की इस बड़ी शिक्षा की पुष्टि करता है कि सब मनुष्य भाई है।

यह एक सत्य है। इस पर भी, जातियों के पृथक्-पृथक् होने में लोगों का विश्वास बड़ा गहरा और विस्तृत है। उदाहरणार्थ, मस्तिष्क के डील में अन्तर है। एस्कीमो के मस्तिष्क, शरीर के डील के अनुपात की दृष्टि से, औसतन सब से बडे होते हैं। जापानियों का मस्तिष्क गौराङ्ग जाति के मस्तिष्क से औसतन बड़ा होता है। विज्ञान के पास जिस सब से छोटे मस्तिष्क का रिकार्ड है वह एक बडे प्रतिभाशाली इटालियन मनुष्य, डाँटे, का मस्तिष्क था। सब से बडे मस्तिष्क बहुधा जड़बुद्धि लोगों में देखे जाते है।

एक जाति का दूसरी जाति से भेद करने के लिए खाल की रंगत पर सब से कम भरोसा किया जा सकता है। गौराङ्ग जाति उन लोगों के नाम पर काकेशस कहलाती है जो काकेशस नाम की पर्वतमाला में रहते थे और जिन को विद्वान् लोग " गौर " वंश का आदर्श समझते है। पर हम उन बालों वाले आयन लोगों के संबंध में क्या समझें जिनमें से १६००० एक उत्तरी जापानी टापू में संरक्षित है ? वे गौर वंश के है। बहुत अनुन्नत दशा में होने के कारण वे जापानियों के लिए समस्या बने हुए है। उदाहरणार्थ, वे कभी नहीं नहाते, क्योंकि उनका विश्वास है कि वे स्वर्ग में जाने के लिए गंध का सेतु बना सकते हैं !

आप कहेंगे, रक्त में तो भेद है। कम से कम उस भेद के आधार पर ही हम गर्व कर सकते हैं। पर क्या सचमुच कोई गर्व कर सकता है ? रक्त के चार नमूने है—ए. बी. एल्. और ओ। ये चारों के चारों संसार की सभी जातियों में पाए जाते हैं। ये ब्राह्मणों में भी पाए जाते हैं और भङ्गियों में भी।

सब ब्राह्मणों में एक ही नमूने का रक्त नहीं और न सब शूद्रों में ही एक नमूने का। इस दृष्टि से उन में कोई अन्तर नहीं।

इतिहास के एक काल में एक जाति श्रेष्ठ प्रतीत होती है, क्योंकि जिसे हम सभ्यता कहते है उसमें वह उस समय अगुआ होती है। किसी दूसरे कालखण्ड में कोई दूसरी जाति अगुआ होती है। केवल अशिक्षित लोग ही इन दशाओं को ईश्वर-प्रदत्त श्रेष्ठता का प्रमाण समझते है।

वर्णसंकरता का हौआ

व्यवहार मे जिसे हम जाति कहते है वह हमारी अपनी कल्पना है, वास्तविकता नहीं। कोई भी दो पदार्थ बहुत सी बातों में एक जैसे हों तो हम उन्हें एक जाति कह देते है पर आज के वैज्ञानिकों का स्वतंत्र मत कुछ और है। वे कहते है, किसी भी एक या बहुत से जन्तुओं को आदर्श रूप में रख कर जाति को बनाए रखना बिलकुल असंभव है। देखिए न, दो कुत्ते भी एक जैसे नहीं होते।

गधे और घोडे के संयोग से एक तीसरे प्रकार का प्राणी खच्चर उत्पन्न होता है, यह सब जानते है। ऐसे ही प्रयोग दूसरे जन्तुओं पर भी हुए है। वेस्ट-मिंस्टर के प्रसिद्ध वैज्ञानिक श्री हेल्म ऐसा ही एक नवीन जन्तु उत्पन्न करने में सफल हुए है। अफ्रिका की गाय और वहीं के एक भीमकाय हिरण के समागम से यह उत्पन्न हुआ है। शारीरिक दृष्टि से ये दोनों जन्तु नितान्त भिन्न है। फिर भी इन दो की सन्तान उनकी अपेक्षा अधिक बलवान, सुन्दर और उपयोगी सिद्ध हुई है। इसी प्रकार कुत्ते और लोमड़ी के संयोग से उत्पन्न हुई सन्तान का मिलाप यूरोप में एक भेड़िए से कराया गया था। उसके दो बच्चे अबतक जीते है। सिंह और चीते के मिलाप से उत्पन्न हुई सन्तान तो भारत में भी बहुत पाई जाती है।

भूगर्भ से निकलनेवाले विचित्र कङ्कालों को देखने और इतिहास का अध्ययन करने से पता लगता है कि शताब्दियों पूर्व धरती पर जन्तुओं की जो जातियाँ पाई जाती थीं उनमें से आज कितनी ही धराधाम से लुप्त हो चुकी हैं—अस्तित्व खो चुकी हैं। यही नहीं, आज के समय में कुछ ऐसे भी नवीन

प्रकार के जन्तु मिलते है जिनका किसी भी प्राचीन शास्त्र अथवा इतिहास में नाम-निशान तक नहीं मिलता। इसके अतिरिक्त जातियाँ-उपजातियाँ बढ़ती ही जा रही हैं। कुत्तों को देखिए, सैकड़ों नये-नये प्रकार के है।

परिवर्तन प्रकृति का अटल नियम है। परिवर्तित समय के साथ न चलने वाली कितनी ही जातियाँ संसार के रंग-मंच से अन्तर्धान हो गईं। दौड़ कर साथ चलनेवाली आज भी वर्तमान है। लुप्त होनेवाली ये जातियों प्रायः दूसरी जातियों के संयोग से उत्पन्न हुई सन्तान छोड़ जाति है। ये वर्ण-संकर सन्तानें समय के साथ द्रुतगति से चलती और नये नाम से पुकारी जाती है। ये दूसरी वर्तमान जातीयों से अधिक टिकाऊ होती है। ये क्या है? अपने पूर्वजों का वर्द्धित विस्तृत रूप।

डार्विन के विकासवाद का सिद्धान्त है—"**योग्यतम का जीवन और अयोग्य का मरण।**" इसी सिद्धान्त के अनुसार यह नई जाति उत्त्पन्न होती है। वनस्पति जगत भी इस का समर्थन करता है। बहुत पुराने आम का फल अपने पहले आकार से छोटा होता जाता है। क़लम या दूसरी रीतियों से एक नये रूप में वह नये आकार और नये ढंग के साथ सामने आता है।

कार्बोनिफेरस युग (Corboniferous Age) के जन्तु, जिनके कङ्काल आज भी भूमि में दबे हुए मिलते हैं, कहाँ लुप्त हो गये? सायबेरिया के हिम प्रदेश में हिम-शिखरों के नीचे हाथी से पचास गुना बडे जन्तुओं के कङ्काल मिले हैं। वे जन्तु आज कहाँ हैं? सत्ययुग, त्रेता और द्वापर के भीमकाय मनुष्य, रामायण, महाभारत और पुराणों के राक्षस, कहाँ अन्तर्धान हो गये? इन प्रश्नों का यही उत्तर है—परिस्थिति और समय के अनुकूल वे न बन सके, काल के खर स्रोत में टिकाऊ न बन सके; जीवन-संग्राम में असफल सिद्ध हुए। काल ने उन्हें ठोकर मार कर दूर फेंक दिया, मिटा दिया। हॉ, उन के वंशज मनुष्य, हाथी और अन्य जन्तुओ के रूप में वर्तमान है।

मनुष्य बुद्धिमान और दूरदर्शी है। संसार के सब जन्तुओं में श्रेष्ठ है। इस में कुछ विशेषताएँ भी हैं। ये विशेषताएँ परिस्थिति और काल के अनुकूल बनने, किसी अंश में युगान्तर उत्त्पन्न करने और परिवर्तन को रोकने की हैं। मनुष्य ने अपने अस्तित्व को बनाए रखने के लिए कुछ नियम भी बनाए हैं।

प्रत्येक तरुण लड़का और लड़की अपना संबंध एक दूसरे की शक्ति, बुद्धि और विद्या को दृष्टि में रख कर ही जोड़ती है। सांसारिक भाषा में इसे विवाह कहते है। विजित जातियाँ विजेता जातियों के साथ संबंध स्थापित कर के समता प्राप्त करती है। ठीक इसी प्रकार विजेता भी विजित जाति में रूप-गुण देखकर संबंध कर लेती है। प्रत्येक लड़का और लड़की योग्य से योग्य को ही अपना जीवन-संगी बनाना चाहते है। रूप, यौवन और बलाढ्यता सदा से आकर्षण के भारी केन्द्र रहे है। पर सभ्यता एवं संस्कृति की प्रगति के साथ साथ विद्या, बुद्धि और धन आकर्षण के केन्द्र बनते जाते है। शिक्षा और संस्कृति के प्रभाव से आदर्श भी बदलता जाता है। यह बात उदाहरण से स्पष्ट हो जायगी। एक ग्रामीण युवक यौवन के आरम्भ में जिस सीधी–सादी लड़की पर आसक्त होता है, जिस रूप की पूजा करता है, कालेज में जाकर सभ्य नागरिक मित्र-मण्डली में देर तक रहने के बाद फिर वही युवक अपनी उस प्रेयसी को लुढकता हुआ भद्दा पुलन्दा कह कर घृणा की दृष्टि से देखने लगता है। उसकी नवीन परिवर्तित कल्पना अपनी प्रेमिका के स्वर में वीणा की सी झङ्कार, चाल में हिरणी की सी चुलबुलाहट और रंग-रूप में कुन्दन की सी कान्ति के स्वप्न लेती है। यह पहला नियम है कि जिस पर आचरण कर के मनुष्य-जाति अपने को टिकाऊ बना कर बढ़ने-फैलने का प्रयास करती चली आ रही है।

दूसरा नियम है समाजोपयोगी कामों का विभाजन कर के विभिन्न समूहों या श्रेणियों में बॉटना। प्रत्येक मनुष्य सब काम नहीं कर सकता। इसीलिए इस व्यवस्था की आवश्यकता है। भारत में यह व्यवस्था बहुत पहले समय में हो गई थी। यह श्रेणि-विभाग चातुर्वर्ण्य के रूप में हुआ था। अब चातुर्वर्ण्य-व्यवस्था सड़कर दुर्गन्ध छोड़ने लगी है।

हमारे पतन का एकमात्र कारण है उपर्युक्त दोनों नियमों का उलङ्घन। पूर्व काल में विवाह के लिए दूल्हा दुलहिन के चुनाव में जात-पॉत का अस्वाभाविक प्रतिबंध न था। चारों वर्णों की लड़कियों के लेन देन की छुट्टी थी। विवाह का उद्देश्य गार्हस्थ्य जीवन को सुखी बनाना और उत्तम सन्तान उत्पन्न करना था। भारतवासी दूसरे देशों और दूसरी जातियों की लड़कियों से विवाह करते थे। अमेरिका की नाग-कन्या उलूपी और अर्जुन का और हैलन और चन्द्रगुप्त मौर्य का विवाह जगत्प्रसिद्ध है। धीरे–धीरे सुविधा और आराम के फेर में

पढ़ कर लोग अपने आस-पास, जान-पहचान, अपने ही वर्ण, और अन्ततः अपने ही कुल में विवाह करने लगे।

वर्णाश्रम की गड़बड़ भी इसी तरह फैली। मनु-स्मृति और ब्रह्म-सूत्र के वर्ण को बदलनेवाले श्लोक अविद्या की गुहाओं में छिपा दिए गये। वर्ण-व्यवस्था की बहती गंगा का पानी गड्ढों में बाँध दिया गया। गम्भीर, विशाल महासागर तलैया के समान छोटा बन गया। ब्राह्मण विद्या पढ़ने-पढ़ाने को दूर फेंक कर पीर, बावर्ची, भिश्ती और खर बन गये। पतन का द्वार खुल गया।

गधे और घोड़े को जैसे हम दो जातियों का मानने लगे वैसे ही ब्राह्मण और शूद्र को भी हम दो अलग-अलग जातियों का समझने लगे। हवा बदली। शोध और प्रयोग के आधार पर विशेषज्ञों ने घोड़े और गधे को एक ही जाति का सिद्ध कर दिया। ब्राह्मण और शूद्र का भेद-भाव भी इसी प्रकार अधिक समय तक नहीं ठहर सकता। परिस्थितियाँ और समय बड़ी तीव्रगति से बदल रहे है। हमें भी अपना सुधार करना चाहिए। आज वह समय आ गया है जब कि ब्राह्मण का काम कोरी शब्दों की पण्डिताई से नहीं चल सकता। क्षत्रिय केवल बलाढ्यता के बल पर सफल नहीं हो सकते। वैश्य केवल ब्याज खा कर नहीं टिक कसते। और शूद्र भी केवल टहल-सेवा कर के जीवित नहीं रह सकते। सब को सब गुणों की थोड़ी बहुत मात्रा में आवश्यकता है। केवल किसी एक गुण पर नहीं, वरन् किसी एक गुण की अधिकता पर वर्ण बने थे। इस लिए न्यूनाधिक मात्रा में सब गुण प्राप्त करने के लिए सब जातियों में परस्पर ब्याह-शादी की आवश्यकता है, नहीं तो हम पंगु, दुर्बल और कायर बन जायेंगे। लुंजे बन कर काम नहीं चल सकता। गुजरात के लोग यदि पंजाबियों से, मद्रास के लोग यदि बंगालियों से, इसी प्रकार एक प्रान्त के दूसरे प्रान्त वालों से ब्याह-शादी करें तो सब को बहुत लाभ होगा और सन्तान भी माता-पिता की अपेक्षा गुणों में बड़ी-चढ़ी होगी।

ब्रीडर अर्थात् जन्तु पालनेवाले लोग बताते हैं कि वर्ण-संकर जातियों के जन्तुओं की सन्तान जब अपने पूर्वजों की अपेक्षा अधिक गुणवान और चुस्त होती है तो फिर मनुष्यों में यह नियम क्यों न प्रचलित किया जाय? बुद्धिमत्ता और समझदारी से जाति से बाहर किया हुआ विवाह मनुष्य के विकास और अस्तित्व के लिए परम आवश्यक है। बडजूरी नाम का विद्वान् कहता है कि जो

मनुष्य उत्तम सन्तान का इच्छुक है उस के लिए दूसरे देशों में विवाह करना उसी प्रकार आवश्यक है जिस प्रकार उत्तम फल प्राप्त करने के लिए विदेशी तने पर पैबन्द लगाना। उन्नतिशील पाश्चात्य देशों में इस क्रिया का परिणाम बहुत ही सन्तोषजनक और उत्साह-वर्धक हुआ है। कुछ उदाहरण सुनिए—

महारानी विक्टोरिया के समय के प्रसिद्ध राजनीतिज्ञ और भारत-मंत्री लार्ड रेंडोल्फ चर्चिल का विवाह संयुक्त राज्य, अमेरिका की कुमारी जेनी जेरोम से हुआ था। इस एङ्ग्लो-अमेरिकन जोडे की सन्तान हैं इंग्लेंड के प्रसिद्ध राजनीति-विशारद श्री विंस्टन चर्चिल।

बेतार के तार के आविष्कर्ता श्री मारकोनी के पिता इटालियन और माता आयरिश थी।

इँग्लिश और फ्रेंच रक्तों की मिलावट की उपज हैं प्रसिद्ध लेखक श्री हिलेर बलोक और श्रीमती बलोक लाऊण्डोस। ये दोनों ही फ्राँसीसी पिता और अँगरेज़ माता की सन्तान हैं।

इन सब से बढ़कर प्रमाण है इतिहास प्रसिद्ध जगद्विजेता सिकन्दर महान और मुग़ल राजकुमार दारा। हिन्दूधर्म विज्ञान-मूलक धर्म है। इस लिए हमें विज्ञान के प्रयोगों और सचाइयों पर आँखें नहीं बंद कर लेनी चाहिए। एक सजीव धर्म को निर्जीव बना डालना अच्छा नहीं *।

* प्रोफेसर कमल नयन, एम. ए., पी-एच०डी० के अगस्त १९३७ की "क्रान्ति" में प्रकाशित एक लेख का सारांश।

चौदहवाँ परिच्छेद

रक्तसंकर और वृत्तिसंकर

बहुत प्राचीन काल से हमारे यहाँ वर्णसंकरता अर्थात् रक्त-मिश्रण को बहुत बुरा माना जाता है। आप किसी हिन्दू या किसी हिन्दू बिरादरी को बहुत डराना चाहते है, तो उस से कह दीजिए कि तुम तो वर्ण-संकर हो। बस आपका उद्देश्य पूरा हो जायगा। प्राचीनकाल में जात-पाँत तोड़क विवाह होते थे अवश्य, पर स्मृतिकारों ने उन को बंद कर दिया। याज्ञवल्क्य स्मृति के समय तक अनुलोम और प्रतिलोम सब प्रकार के विवाह बंद हो गये। दो रक्तों की मिलावट के संबंध में आज भी वही भाव हम में वर्तमान है। जात-पाँत तोड़क विवाहों का आन्दोलन चला तो है, और पढे-लिखे लोग जात-पाँत तोड़ कर विवाह करने में कोई दोष भी नहीं देखते, पर अभी ऐसे विवाह पर्याप्त संख्या में नहीं होने लगे। इस से जान पड़ता है कि लोगों में रक्त-संकरता अर्थात् रक्तों की मिलावट का डर अभीतक वर्तमान है। जिस वर्ण-संकरता को हिन्दू इतना भयानक और निषिद्ध समझते हैं, उसी पर आगे विचार किया जायगा।

रक्त-संकर पर विचार करने के पहले प्रश्न होता है कि संकर या मिलावट किसे कहते है? इस का तुरंत उत्तर मिलेगा कि विभिन्न रक्तों के घरानों के स्त्री-पुरुषों का विवाह ' संकर ' कहलाता है। पर विभिन्न रक्त से क्या अभिप्राय है, यह एक महत्वपूर्ण प्रश्न है। विभिन्न रक्त दिखलाने के लिए हमें सिद्ध करना होगा कि जिन दो जातियों या घरानों की बात हम ले रहे हैं वे शारीरिक गठन, मनोभाव, और बुद्धि-बल में एक दूसरे से बहुत भिन्न हैं। इतना ही नहीं, हमें यह भी प्रमाणित करना होगा कि इन दो रक्तों की मिलावट से आगे जो सन्तान उत्पन्न होती है वह निकृष्ट कोटि की होती है। नहीं तो उपर्युक्त तीनों बातों में विभिन्नता दिखलाने पर भी यह निर्णन नहीं दिया जा सकता कि इन दो जातियों में रक्त-संकर अच्छा नहीं।

रक्त की मिलावट को बुरा बताने वाले कहते हैं कि—(१) रक्त-संकर से वंश का अन्त हो जाता है, (२) उन की सन्तान निकम्मी और कर्तृत्वहीन होती है, (३) दो विभिन्न रक्तों के मिश्रण से उत्पन्न होनेवाली सन्तान में विशेष प्रकार के दोष उत्पन्न हो जाते हैं। नितान्त विभिन्न वंशों के रक्तों की संकरता से उपर्युक्त दुष्परिणाम निकलते हैं या नहीं, इस का निश्चय विशेषज्ञों के प्रयोगों से किया जायगा।

ए. टी. काटरीफ़ीज़्स ने अपनी पुस्तक "ह्यूमन स्पीशीज़" में मेकसीको, पेरू एवं अफ्रिका में कई वर्ष तक रहने वाले एक पर्यटक के अनुभव दिए हैं। उन से इस प्रश्न पर अच्छा प्रकाश पड़ता है। इस्ट इण्डीज़, मेक्सिको, और पेरू में आज तीन सौ वर्ष से यूरोपियन और उन देशों के आदिम निवासियों के बीच रक्त का मिलना जारी है। तो भी सन् १८७९ में वहाँ की जन-संख्या एक करोड़ अस्सी लाख थी (पृष्ठ २६१)। केप कालोनी में डच और हाटनटाट लोगों में और मनीलामें चीनी और स्पेन के लोगों मे परस्पर शादी-ब्याह की प्रथा प्रचलित है। किन्तु वहाँ की जन-संख्या कम नहीं हुई। लीकेली अण्ट नाम के पर्यटक ने जो अन्वेषण किये है उन से पता लगता है कि यूरोपियन और हाटनटाट में परस्पर विवाह होने से जितनी सन्तान बढ़ी है उतनी हाटनटाट का हाटनटाट के साथ विवाह होने से नहीं। हन बोरन ब्राज़ील देश के संबंध में भी ऐसा ही कहता है। "कोई बड़ा रोग या जान-बूझ कर की हुई हत्या या कोई और आपदा न हो तो जगत में विभिन्न वंशों में विवाह करने वाले कोई भी लोग निःसन्तान नहीं रहते।" —एसा कैसल का मत है (जेनेटिक्स एण्ड यूजेनिक्स सन् १९२७, पृष्ठ ३३१)। एच. जी. वॅल्ज़ ने भी अपनी पुस्तक, "वर्क, वेल्थ एण्ड हैपिनस" में यही मत प्रकट किया है। इस से ऐसा लगता है कि ऐसा कोई भी नहीं मानता कि विभिन्न वंशों में विवाह होने से वंश का अन्त हो जाता है।

मनु ने यह मत प्रकट करने का यत्न किया है कि अमुक अमुक रक्तों की मिलावट से अमुक विशिष्ट गुण वाली सन्तान उत्पन्न होती है। कुछ सनातनी पण्डित भी यही बात कहते हैं और अपने समर्थन में बूगल नामक विद्वान् को पेश करते हैं। बूगल कहता है कि ब्राज़ील देश में विभिन्न वंशों की संकरता से उत्पन्न हुए लोगों में से कोई चित्रकार बन गया है, कोई बाजा बजाने

वाला और कोई डाक्टर। अमुक अमुक वंशों की मिलावट से चित्रकार उत्पन्न होता है और दूसरे अमुक अमुक का मिलाप हो तो डाक्टर उत्पन्न होता है, इस प्रकार का कोई विभाजन बूगल ने नहीं किया। बूगल ने ही क्यों किसी ने भी नहीं किया। गायना देश के आदिम-निवासिययों और पुर्तगीज़ों के रक्त की मिलावट ब्राजील देश में हुई है। और इन की वर्ण-संकर सन्तान ने भी सभी बौद्धिक और नैतिक क्षेत्रों में अच्छी उन्नति की है। कला के समान ही इन लोगोंने राज-काज और विज्ञान के क्षेत्र मे भी खूब उन्नति की है। लीगस नामक पर्यटक का यह मत "ह्यूमन स्पीशीज़" नामक पुस्तक में उस के लेखक ने प्रमाण-रूप में उपस्थित किया है। किन्तु इस से उस का स्पष्ट उद्देश्य यह है कि जब वैद्यक, चित्रकारी, गान विद्या और वाग्मिता आदि गुण शुद्ध वंश की सन्तान में भी पाये जाते हैं तो यह कहने से क्या मतलब कि यह रक्त-संकर सन्तान की विशेषताएँ है। मनु का अभिप्राय यदि जाति-धर्म से हो तो भी उस का यह निर्णय कि अमुक जातिका अमुक स्वाभाविक गुण होता है सरासर भूल है।

नितान्त विभिन्न वंशों की मिलावट की सन्तान निकम्मी और निकृष्ट होती है, इस में कोई बहुत झगड़ा नहीं। उपर्युक्त पर्यटकों की बातों पर ध्यान दें तो पता लगता है कि उन का मत है कि वह निकम्मी नहीं होती। पर इस विषय में बहुत से विद्वान कहते है कि ऐसा रक्त-संकर नहीं होना चाहिए। गेटस कहता है कि स्पेनिश + चीनी, फ्राँसीसी + रेड इण्डियन, और नार्डिक + मंगोल जैसे परस्पर विवाह नितान्त अनुचित है। यॅक डूगल और अन्य कई पण्डितों ने विशुद्ध यूरोपियन लोगों और यूरोपियन + नीग्रो से होनेवाली सन्तान की तुलना कर के यह दिखलाया है कि दो विभिन्न रक्तों की मिलावट से उत्पन्न होने वाली सन्तान घटिया दरजे की होती है। डीन इङ्ग और कैसल भी कहते हैं कि बहुत विभिन्न वंशों का परस्पर विवाह नहीं होना चाहिए। इस प्रकार यद्यपि यह कोई नहीं मानता कि रक्त-संकर सन्तान का वंशोच्छेद हो जाता है अथवा उस में कुछ विशेषताएँ आ जाती है, तो भी यह सब का मत है कि बहुत ही भिन्न वंशों की मिलावट की सन्तान निकृष्ट कोटि की होती है, इस लिए वह सर्वथा अनुचित है।

इस स्थल पर एक और बात विचारणीय है। विभिन्न वंशों के रक्त-संकर

की सन्तान निकम्मी होती है, इन पण्डितों ने यह जो परिणाम निकाला है, उसे निकालते समय यह ठीक है कि पर्यवेक्षण के लिए जो वंश उन्हों ने लिए थे वे एक दूसरे से नितान्त विभिन्न थे। किन्तु जैसे वे रक्त में विभिन्न थे वैसे ही वे संस्कृति और स्थिति में भी नितान्त विभिन्न थे। युरोप का मनुष्य तो संस्कृति और कर्तृत्व के शिखर पर पहुँचा हुआ है और अमेरिका एवं अफ्रिका के आदिम वासी ने संस्कृति की पहली सीढी पर भी पॉव नहीं रक्खा। इस लिए उन के रक्तो के मिलने से घटिया सन्तान उत्पन्न होगी, यह ठीक ही है। परन्तु जो दो वंश संस्कृति और कर्तृत्व में समान किन्तु केवल रक्त मे नितान्त भिन्न है उन में यदि परस्पर ब्याह-शादी हो तो उन की सन्तान निश्चित रूपसे निकृष्ट ही होगी, ऐसा कहने के लिए हमारे पास कोई प्रमाण नहीं। भारत के इतिहास में जो थोड़ा सा साक्ष्य मिलता है वह तो इस रक्त-संकर के पक्ष में ही है। हमारे यहाँ तुर्क, अफ़गाग और मुग़ल का रक्त राजपूत के रक्त के साथ बार बार मिलता रहा है। और उस का परिणाम बुरा नहीं हुआ, वरन् एक बडे अंश में अच्छा ही देख पड़ा है। अकबर, जहाँगीर, शहाजहाँ और औरङ्गजेब इन चारों मुगलों की पत्नियाँ राजपूत थी। और सलीम, खुसरो, काम बख्श़ जैसे उन के लड़के कर्तृत्व वाले थे। यूसुफ़ आदिलशाह की स्त्री उनके मंत्री मुकुन्द राव की बहन थी। इतिहास कहता है कि उनका पुत्र इस्माईल न्यायप्रिय, दूरदर्शी, रसिक एवं विद्वान था। लोदी बहलोल की स्त्री एक सुनार की लड़की थी। उस का बेटा भी ऐसा ही था। यह अफ़गान और मरठों के रक्त-संकर की बात हुई। शमसुद्दीन ने काश्मीर के राज्य और रानी पर अधिकार कर लिया था। उस रानी कमल देवी के गर्भ से उस के पॉच पुत्र हुए। वे पाँचों के पाँचों साहसी और बीर थे। समूचा तुग़लक़ वंश तो तुर्क और राजपूत रक्तों की मिलावट से ही बना था। बाबर तुर्क और मंगोल के रक्त-संकर से बने क़बीले में उत्पन्न हुआ था। बाजीराव पेशवा और उस की मुसलमान स्त्री मस्तानी का बेटा शमशेर बहादुर और उसका पुत्र आली जाह बहादुर दोनों ही बडे पराक्रमी थे। समुद्र गुप्त भी चन्द्र गुप्त और शूद्र वंश के लिच्छिवी घराने की लड़की कुमार देवी का पुत्र था। सब से अधिक महत्त्वपूर्ण उदाहरण वेद व्यास का है। यह जगद्वन्द्य महात्मा ब्राह्मण पिता और धीवर (मल्लाह) माता के पेट से उत्पन्न हुआ था। इन थोडे से उदाहरणों से यद्यपि कोई नितान्त निर्णायक

बात नहीं कही जा सकती तो भी यह कहने के पहले कि संस्कृति और कर्तृत्व में एक दूसरे से नितान्त भिन्न वंशों की संकरता बुरी होती है, इन उदाहरणों पर भी विचार करना पडेगा। एक पण्डित कहता है कि लोग रक्त-संकर को निन्दनीय समझते हैं। इस लिए रक्त-संकर बच्चों का पालन-पोषण भी भली भाँति नहीं किया जाता, फलतः वे घटिया हो जाते हैं। उन को भी यदि उत्तम सुविधा मिले तो वे भी बडे बडे पदों पर पहुँच सकते है (बायोलाजिकल बेसिज़ आफ़ ह्यूमन नेचर, पृष्ठ २८७)।

यहाँ तक तो नितान्त विभिन्न वंशों के रक्त-संकर के संबंध मे विमर्श हुआ। यह बात मान कर भी कि इन का संकर विशेषज्ञों को पसंद नहीं, अब, अधिक निश्चित रूप से कहें तो, यह देखना चाहिए कि सारस्वत, गौड़, खत्री, कायस्थ, अग्रवाल, जाट, बढ़ई, ग्वाला और दूसरे प्रान्तों के ब्राह्मण, क्षत्रिय, कायस्थ आदि के आपस के विवाहों में इन पण्डितों को आपत्ति है या नहीं।

गालटन, एलस, फ़्रीमन, मॅकडूगल, इञ्ज, कैसल, डेवन पोर्ट आदि अनेक पण्डितों ने इस विषय पर विमर्श कर के परिणाम निकाला है कि इतना ही नहीं कि निकट निकट के रक्तों में विवाह अहितकर नहीं होता, वरन् वह समाज के लिए नितान्त उपयोगी और आवश्यक भी है। जब जब ये विद्वान रक्त की पवित्रता की बात कहते हैं तब तब वे केवल कुल की ही बात कहते है। अर्थात् जब एक बार नितान्त भिन्न वंश को छोड़ दिया तो फिर वे जाति या श्रेणी आदि का भेद कुछ नहीं करते। वे इतना ही कहते हैं कि जिस कुल की लड़की आप को लेनी है उस कुल में वंश परम्परागत रोग, मानसिक दुर्बलता, पागल पन या बुरी प्रवृत्ति तो नहीं, केवल इतना ही देखना चाहिए। ऐसे सदोष कुल अच्छे कुलों का नाश कर देते हैं। इस लिए अच्छे कुलों को विवाह-संबंध करते समय बड़ी सावधानी से काम लेना चाहिए। विभिन्न जातियों या वंशो में ही नहीं, वरन् सारस्वत का सारस्वत और बनिए का बनिए में विवाह करते समय भी वे इस बात का ध्यान रखने को कहते हैं। उन की आपत्ति केवल कुल की शुद्धता तक है। जब समान संस्कृति,समान रूप-गुण, और समान कर्तृत्व देख पड़ें और कुल में दूसरा कोई दोष न हो, तब किसी भी दो कुलों की जाति या

श्रेणी का विचार न कर के, परस्पर विवाह कर लेने में कोई हानि नहीं, ऐसा ही उन का अभिमत है। डीन इङ्ग[1] कहता है—

सदा अपनी ही छोटी सी जाति के भीतर विवाह करते रहना अहितकर है। बीच बीच में जाति से बाहर भी विवाह करना चाहिए। बाहर से अच्छा रक्त ला कर मिलाना और फिर उस में और रक्त की मिलावट करनी चाहिए। ऐसा करने से ही देश में उत्तम कोटि के स्त्री-पुरुषों के जन्म लेने की अधिक सम्भावना है।

कैसल[2] ने भी अपनी पुस्तक "जेनेटिक्स एण्ड यूजेनिक्स" (पृष्ठ २७२) में यही सम्मति प्रकट की है। उस ने यह बात अच्छी कही है कि जिस विवाह से सामाजिक पद की हानि होती हो वह नहीं करना चाहिए। उस का मत है कि ऐसे रक्त-संकर से अगली सन्तान अधिक पराक्रमी एवं बलिष्ठ होती है।

हमारे देश (अमेरिका) में निकृष्ट प्रकार के लोगों को नहीं आने देना चाहिए, इस के लिए किस किस पर रोक लगानी चाहिए, यह बताते हुए डेवन[3] पोर्ट कहता है—

---

1. Continued breeding in a small society is certainly prejudicial. Probably alternate periods of fusion with immigrants and stabilising the results give a nation the best chance of producing a fine type of men and women. —"Outspoken Essays," page 261.

2. The mixture of elements, not too dissimilar provided the social heritage is not unduly disturbed, is on the whole beneficial. It results in the increase of vigour and energy in the offspring.

3. In fact no race is dangerous and none undesirable, but only those individuals whose germinal determiners. from the standpoint of life, are bad. In other words, immigrants are desirable who are of good blood and undesirable who are of bad blood."—Heredity in relation to Eugenics. p.221.

"वास्तव में न कोई जति भयावह है और न कोई अवाञ्छनीय है। केवल वही व्यक्ति भयावह और अवाञ्छनीय है जिन के रज-वीर्य, जीवन की दृष्टि से, बुरे है। दूसरे शब्दों में विदेश से आकर यहाँ बसने वाले वे व्यक्ति वाञ्छनीय है जो उत्तम रक्त के है और वे अवाञ्छनीय है जो बुरे रक्त के है।"

यह बात ध्यान में रखनी चाहिए कि यहाँ डेवन पोर्ट ने यह नहीं कहा कि अमुक व्यक्ति या अमुक जाति त्याज्य है। रक्त की विशुद्धता का वह भी इच्छुक है। पर इस के लिए वह कुल की छान बीन करने को कहता है। उसका मत है कि अमेरिका को युरोप में अपने एजण्ट रखने चाहिएँ। जो व्यक्ति अमेरिका में आने के लिए प्रार्थना-पत्र दे उस के कुल के इतिहास की जाँच पड़ताल करनी चाहिए। यदि वह अच्छा निकले तो उसे आने देना चाहिए। (पृष्ठ २२४)

जन-समूहों में बेटी-बन्दी होने से उन के विशिष्ट गुणों की वृद्धि होती है, ऐसा कहते हुए भी गेट्स मिश्र विवाहों के पक्ष में ही है †। गेट्स का संकेत इतना ही है कि रक्तों की विभिन्नता की कोई सीमा होनी चाहिए। पर उस का मत है कि इस सीमा का ख्याल रखने के बाद विभिन्न जातियों और श्रेणियों के परस्पर मिश्र विवाह बहुत ही उचित है।

मेक डूगल, डाल्टन और फ्रीमन इन सब का भी यही मत है। वे कहते हैं कि एक जैसी संस्कृति और एक जैसे गुण-रूप वाले कुलो में मिश्र विवाह अवश्य होने चाहिएँ। उन के मतानुसार समाज में केवल दो ही जातियाँ है—एक तो कर्तृत्व शक्तिवाले कुलों की जाति और दूसरी नाकारा और कर्तृत्वहीन कुलों की। किन्तु ये दो जातियाँ भी कोई स्थायी नहीं हैं। प्रयोग सदा जारी रहने चाहिएँ। ऊपर के लोगों में कोई नीच प्रवृति वाला देख पडे तो उसे बाहर निकाल देना और नीचे वाले किसी में कोई कर्तृत्व देख पडे तो उसे ऊपर ले जाना चाहिए।

---

† Intermarriage of diverse strains is important, both from point of view mentioned above, and on account of the incressed vigour resulting from the heterogeneous condition, but there are important limitations in the width of crosses which are desirable.—"Heredity and Eugenics" p. 222.

उपर्युक्त पण्डितों के मत में ऐसी ही समज-रचना होनी चाहिए। इस अनुक्रम के निरन्तर जारी रहने से समाज में कोई स्थायी जातियाँ न रह सकेंगी। ऊपर की कल्पना मेक डूगल ने अपनी पुस्तक, "एथिक्स एण्ड सम वर्ल्ड प्राबलम्स" में बताई है और यही विचार उस ने "नैशनल वेल फेअर एण्ड डीके' नाम की पुस्तक की भूमिका में दिया है। उत्कृष्ट लोगों की जाति तैयार करते समय उस में जो नवीन मनुष्य लिए जायँगे उनके कुल का इतिहास देखा जायगा। एक बार चुन लिए गये घराने के लड़के भी बिना परीक्षा किए उच्च श्रेणी में नहीं लिए जायँगे। इस में कोई भी संदेह नहीं कि उनको उन्नति के लिए अधिक सुविधा होगी, पर सब कसौटियों पर पूरा उतरने के उपरान्त संसार के किसी भी मनुष्य को इस में रुकावट न होगी। निस्सन्देह उन का ऐसा ही कथन है। *

गाल्टन के जीवन-चरित में पीटरसन कहता है कि गाल्टन इस बात का स्वप्न देखा करता था कि समाज के प्रत्येक स्तर से उत्तमोत्तम मनुष्य चुनकर और उन का आपस में विवाह कर के उन की एक जाति तैयार करनी जाहिए। (भाग २, पृष्ठ १२१; भाग ३ पृष्ठ २३४)।

"हरेडटरी जीनियस" नामक पुस्तक में गाल्टन ने एक जगह ३१ जजों के घरानों का वृत्तान्त दिया है और कहा है कि कुछ तो इस कारण कि उन में से कई एक ने लखपतियों की एकलौती लड़कियों से विवाह किया था, और कुछ के अविवाहित रहने के कारण ये घराने नष्ट हो गये। माता की और पुत्री की सन्तान उत्पन्न करने की शक्ति में वंशपरम्परागत संबंध रहता है। माताके लड़का नहीं था, इस लिए उस की पुत्री को भी लड़का नहीं हुआ, इस परिणाम में जाति, श्रेणी या विभिन्न रक्त का कुछ भी संबंध नहीं। पीटर सन का मत है कि जो परिणाम उसने ग्रहण किए है वे भ्रान्त हैं। इरस्मस डार्विन का मत है कि माता और उस की पुत्री की सन्तान उत्पन्न करने की सामर्थ्य में कोई वंशपरम्परागत संबंध नहीं। पीटरसन डार्विन के इस मत को स्वीकार कर के इन घरानों के वंशोच्छेद का कारण उन के नैतिक दुराचार को मानता है।

---

* "Admitting of new members selected from the whole world."

एलिस ने "स्टडी आफ़ ब्रिटिश जीनियस" नाम की पुस्तक में एक सहस्र मनुष्यों के घरानों का अध्ययन किया है। इस में उस ने दिखाया है कि आयरिश + इंग्लिश और वेल्ज़ + इंग्लिश इन दो मिश्र विवाहों में जितने कीर्तिवान् मनुष्य उत्पन्न हुए उतने निकट होते हुए भी स्काच और इँग्लिश के मिश्र विवाह से नहीं हुए।[1]

समाज के सभी स्तरों से उत्तमोत्तम कुल चुन कर उन की एक जाति बनाई जाय और उस जाति को सदा बढ़ाया जाय, यह बात अँगरेज़ विचारकों के मन में बैठ चुकी है। गाल्टन और मेकडूगल के विचार तो ऊपर दिये जा चुके हैं, आस्टन और फ़्रीमन का भी यही मत है। इस प्रकार जो जाति बनेगी, उस की एक राष्ट्रीयता बनाए रखने के लिए ही वे इतना कहते हैं कि उस में अँगरेज़ों के सिवा और किसी को न लिया जाय। परन्तु एक बार इस का प्रतिबंध करने के उपरान्त शेष केवल कुल की पवित्रता का ही विचार करना चाहिए।[2] जाति और श्रेणी के प्रतिबंध को रखने को वे बिलकुल तैयार नहीं। श्रेणी में से चाहे कोई भी घराना हो, योग्य होने से वह लिया जा सकता है।

समान संस्कृति वाले दो समूहों में मिश्र विवाह निषिद्ध तो बिलकुल नहीं, वरन् वे नितान्त वांछनीय हैं। इन पण्डितों का स्पष्ट मत है कि इस से अगली पीढ़ी की शक्ति और कर्तृत्व बढ़ता है। गेटस एक पग और भी आगे जाता है। वह रक्त की इस सीमा के भीतर की मिलावट का एक दूसरा लाभ भी बताता है। पर्ल और लिटल नामक दो विद्वानों द्वारा किए गये अध्ययन के आधार पर वह कहता है कि अँगरेज़, आयरिश, रूसी, इटालियन, जर्मन और ग्रीक के मिश्र विवाहों को देखा जाय तो कम से कम उन की पहली पीढ़ी में तो लड़कों की उत्पत्ति अपेक्षाकृत बहुत बढ़ी[3] दिखाई देती है। विशुद्ध सन्तान और मिश्र

---

1. The Irish and the Welsh are much better adapted for crossing with the English than the more closely related Scotch. p. 23.

2. No restrictions in respect of class or caste would be entertained.—"Social Decay and Regeneration." p. 318.

3. In crosses between European races there is a higher ratio of male births at least in the first generation.—"*Heredity and Eugenics.*" Page 230.

सन्तान में लड़के और लड़कियों की संख्या आगे लिखे के अनुसार है। विशुद्ध–लड़कियाँ १००, लड़के १०६·२७, मिश्र—लड़कियाँ १०० और लड़के १२१·५६ जात–पाँत तोड़क विवाहों का यह बहुत बड़ा लाभ है।

विभिन्न रक्तों के मिलने से उत्पन्न होने वाली सन्तान निकृष्ट और निकम्मी नहीं होती, उसका वंशोच्छेद नहीं होता, और उस में दोष भी नहीं आते। इतना ही नहीं, विभिन्न रक्तों के मिलाप से उत्पन्न हुई सन्तान समाज के लिए बहुत उपयोगी होती है। उससे पराक्रम और कर्तृत्व के अतिरिक्त, हम देख चुके हैं, नर–सन्तान की भी वृद्धि होती है।

जात–पाँत तोड़क विवाहों के विरोधी एक दूसरी बात भी पेश किया करते हैं। उन का मत है कि 'क' नाम के समूह में कोई एक विशेषता वर्तमान है। उस के रक्त की मिलावट यदि "ख" नाम के जन समूह के रक्त में हो तो "क" का वह विशिष्ट गुण नष्ट हो जायगा। "क" को यदि वह अपना विशिष्ट गुण बनाए रखना हो तो उसे केवल अपने ही समूह की लड़की से विवाह करना चाहिए।

वंश–परम्परा के नियम की भ्रान्त कल्पना से ही उपर्युक्त प्रकार की धारणा बन जाती है। केवल इतना ही कहा जा सकता है कि एक विशेष कर्तृत्व-शक्ति रखने वाला मनुष्य–समूह लिया जाय तो उस की अगली पीढ़ी पराक्रमी एवं कर्तृत्व वाली होगी। यह नहीं कहा जा सकता कि उस का कर्तृत्व अमुक रीति से प्रकट होगा। यह बात भी नहीं कि किसी एक समूह में पीढ़ी दर पीढ़ी एक ही प्रकार का कर्तृत्व नहीं रहता। वरन् वह वंशपरम्परा एवं वातावरण के कारण रहता है। इस का उदाहरण पारसी है। परिस्थिति में परिवर्तन से वही समाज विभिन्न प्रकार का कर्तृत्व दिखला सकता है। और तब वही पराक्रमी कहलायगा। अर्थात् एक ही जन-समूह में मूलतः कई प्रकार की कर्तृत्व शक्तियाँ रहती है। इस लिए इस भय का कोई कारण नहीं कि दूसरे समूहों में इस का संकर होने से इस का विशिष्ट कर्तृत्व करने की शक्ति नष्ट हो जायगी। कुलों के संबंध में भी ऐसी ही बात है। एक कुल में कई प्रकार के कर्तृत्व करने की शक्तियाँ हो सकती है। इस लिए यदि एक कुल के लोगों का किसी भी क्षेत्र के, परन्तु उच्च कोटि के कुलों के साथ विवाह-संबंध करा दिया जाय तो पर्याप्त है। अर्थात् यह बात कभी नहीं भुलाई जा सकती कि रूप, गुण और

संस्कृति का बंधन तो सदा बना ही रहेगा। यह सच है कि व्यक्ति की दशा में उपर्युक्त नियम सिकुड़ जाता या टेढ़ा हो जाता है। अर्थात् गवैये का पुत्र प्रायः अच्छा गवैया होता है। पर यह कोई नियम नहीं कि वह अवश्य ही अच्छा गवैया होगा। कहावत भी है—

होत भले के सुत बुरे भले बुरे से होत।
दीपक से काजल प्रकटे कमल कीच से होत॥

इस लिए उन की एक अलग जाति बनाने के विचार को महत्व नहीं दिया जा सकता। शरीर, मन और बुद्धि की दृष्टि से सबल कुलों से संबंध कराने में इतनी सतर्कता रखने के उपरान्त फिर किसी भी कुल में विवाह करने से विशिष्ट गुणों के नष्ट होने का डर नहीं रहता।

वृत्ति-संकर

यहाँ तक तो हुई रक्त-संकर की बात। अब वृत्ति अर्थात् व्यवसायों की मिलावट पर थोड़ा विचार किया जाता है। हम दिखलायेंगे कि वृत्ति-संकर भी रक्त-संकर के ही समान लाभदायक है। आप देखेंगे कि चातुर्वर्ण्य के मूल में रहने वाली ये दोनों कल्पनाएँ कितनी निःसार है। एक वर्ण के मनुष्य का दूसरे वर्ण का व्यवसाय ग्रहण करने का नाम वृत्ति-संकर या व्यवसाय की गड़बड़ है। इस में सन्देह नहीं कि आज वृत्ति-संकर की उतनी निन्दा नहीं की जाती जितनी कि रक्त-संकर की, तो भी उसे निषिद्ध माना जाता है।

मनु ने एक जगह (अध्याय ३ श्लोक ६४-६५) कहा है कि ब्राह्मणों को वैद्यक, शिल्प, ब्याज-बट्टा, पशु-बेचना और राजा की सेवा नहीं करनी चाहिए। यह भी कहा है कि इन को गाना-बजाना नहीं करना चाहिए (४-१५), किसी भी प्रकार का मांस नहीं खाना चाहिए (५-४५-५१), और यदि कोई श्राद्ध में पकाया हुआ मांस हठपूर्वक नहीं खाता तो वह अभागा २१ बार पशु-योनि में जाता है (५—३५ और ४-६)। एक ओर तो कहा है कि राजा की सेवा नहीं करनी चाहिए, जैसाकि ऊपर बताया, परन्तु इस के विपरीत मनु ने यह भी कहा है कि राजा का मंत्री ब्राह्मण हो (७—५८-५९) और जज ब्राह्मण हो (८—११)।

मनु-स्मृति में ऐसी परस्पर विरोधी बातें बहुत है। ऐसा जान पड़ता है कि मनु का वंशपरम्परा के सिद्धान्त का अन्वेषण मनु-स्मृति का बहुत

महत्वपूर्ण भाग है। इस तत्व को आचरण में लाते समय मनु और उन के शिष्य नितान्त एकपक्षीय हो गये है। कार्ल मार्कस और रूसो के उदाहरण से हमें ऐसा लगता है कि प्रत्येक नवीन तत्त्व का उत्पन्न करने वाला एकपक्षीय ही होता है। वंशपरम्परा के सिद्धान्त का अँगरेज आविष्कारक सर फ्रांसिस गाल्टन भी ऐसा ही था। उस के बहुत से मत अतीव अग्राह्य है। उस की पुस्तक के विषय में कार्ल और पीटरसनने जो कुछ कहा है वही हम मनु स्मृति के विषय मे भी कह सकते है। अर्थात् "हरेडटरी जीनियस" संसार का एक बहुत बड़ा ग्रन्थ है। उस का महत्व इस लिए नहीं कि उस का प्रत्येक सिद्धान्त सच्चा है वरन् उस के सुझाए हुए तत्व के कारण ही उसका महत्व है। * "

कुछ लोग कहते हैं कि अपने वर्ण का व्यवसाय छोड़ कर दूसरा व्यवसाय करने से वंशोच्छेद हो जाता है, इत्यादि मनु की बातें अक्षरशः सत्य हैं। इस लिए हमारे लिए इस की आलोचना करना आवश्यक है।

मेक डूगल ने एक जगह कहा है कि निचली श्रेणियों के लोग उमंगी होते है; वे ऊपर उठते है और कर्तृत्व दिखलाते है। पर उन की पीढ़ियाँ बहुत दिन तक बनी नहीं रहतीं। थोडे ही समय में उन के वंश का अन्त हो जाता है। इस पर हमारे कई भाई कहने लगते है कि देखो, एक अँगरेज़ पण्डित भी कहता है कि एक श्रेणी से दूसरी श्रेणी में जाना, एक वर्ण से दूसरे वर्ण में जाना, और एक जाति से दूसरी जाति में जाना अहितकर है। पर मेक डूगल ने यह कभी नहीं कहा कि निचली श्रेणी के मनुष्य के ऊपर की श्रेणी में जाने से ही उस का नाश हो जाता है। उसे तो यह दिखाना है कि हमारे समाज में पराक्रमी, कर्तृत्ववान् और परिश्रमी लोगों का कुल क्योंकर नष्ट होजाता है। ऊपर के स्तर के पराक्रमी मनुष्यों के कुल का नाश तो निरन्तर हो ही रहा है। इसका भाव यह है कि निचले स्तर के लोग जब ऊपर के स्तर में पहुँच कर कर्तृत्व दिखलाने लगते है तब उन का वंशोच्छेद भी उसी नियम के अनुसार हो जाता है। यहाँ श्रेणी-परिवर्तन, वर्ण-परिवर्तन, और व्यवसाय-परिवर्तन का कुछ भी संबंध नहीं। ऊँचे स्तर में जो भी जायगा वह किसी भी स्तर का हो

---

* Hereditory Genius is one of the greatest books of the world, not as much by what it proves, but by what it suggests.

उस का नाश हो जायगा। उस की बहुत पीढ़ियाँ नहीं चलतीं—यही उस का मत है। यहाँ न वंशपरम्परा के नियम का संबंध है और न दूसरे वर्ण में जाने का। यदि ऐसा होता तो वह स्पष्ट कह देता कि निचले स्तर के लोगों को ऊपर के स्तर में नहीं आने देना चाहिए। पर उलटे वह तो यह कहता है कि निचले स्तर के लोगों के लिए ऊपर उठने का सामाजिक सोपान समाजकी प्रगति के लिए अतीव आवश्यक है। उस ने केवल इतना ही बताया है कि संस्कृति का नाश कैसे और किस क्रम से होता है। ऊपर के वचन में उस ने यही कहा है कि पहले ऊपर के स्तर का और फिर निचले स्तर का कर्तृत्व एक ही कारण से नष्ट होता है और यह कि इस का कारण आर्थिक है, इस का जीवन-शास्त्र से कोई संबंध नहीं।

हेवेलाक एलिस* का भी यही कहना है। केवल उस के कारण का निदान भिन्न है। वह कहता है कि समाज में बडे उत्तरदायित्व के काम किसी भी घराने का मनुष्य करे, अधिक चिन्ता और अशान्ति के कारण उस का वंशोच्छेद शीघ्र ही हो जाता है। वहाँ उस ने घराना कहा है, अमुक अमुक जाति का घराना नहीं कहा। वह घराना नष्ट होता है तो चिन्ता के कारण और बहुत अधिक दबाव (increased work for nervous system) के कारण, एक वर्ण से दूसरे वर्ण में जाने के कारण नहीं। इस चिन्ता और अशान्ति का काम जो भी करेगा, चाहे वह ब्राह्मण हो और चाहे शूद्र, उसका वंशोच्छेद हो जायगा। अर्थात् वह कहता है कि वह शीघ्र ही निपूता हो जाता है। परन्तु उस ने यह नहीं कहा कि ऊपर की श्रेणी का काम निचली श्रेणीके घरानों को नहीं करना चाहिए। उलटे यह कहता है कि शेक्सपियर और गैटे जैसा उन्नत मनुष्य होकर तीन पीढ़ी में ही नष्ट हो जाना अच्छा है, किन्तु सामन मछली हो कर युग-युगान्तर तक जीते रहना अच्छा नहीं (पृष्ठ २०)।

जिन लोगों ने मनु के नियत किए हुए व्यवसाय बनाए रखे फिर भी उन के वंशनष्ट होने से न बचे और जिन्हों ने मनु के नियत किए हुए व्यवसाय छोड़ दिए और फिर भी उन के वंश जीते रहे ऐसे लगभग तीस महाराष्ट्र घरानों

---

* As a family attains highest culture and refinement which civilization can yield, that family tends to die out at all events in the male line.

के इतिहास की तालिका श्री. सहस्त्रबुद्धे ने तैयार की है। वह बड़ी ज्ञानवर्धक है। वह हम आगे देते हैं। तालिका में जहाँ यह कहा गया है कि अमुक पीढ़ियाँ जीती रहीं, वहाँ अभिप्राय यह है कि वे दत्तक न ले कर जीती रहीं। दत्तक लेने वाले घरानों को नहीं लिया गया है।

[यह रिपोर्ट परांजपे, बर्वे, गोखले आदि महाराष्ट्र के घरानों के इतिहास, सरदारों की वंशावलियों और पेशवाओं के दफ्तर आदि से तैयार की गई है।]

संख्या	घराने का नाम और जाति	व्यवसाय	कितनी पीढ़ीयाँ चलीं
१	त्र्यम्बकराव दाभाडे, मराठा क्षत्रिय	सेनापति	लड़का नहीं। पीढ़ी १
२	नाना फड़नीस, ब्राह्मण	मंत्री	लड़का नहीं। पीढ़ी १
३	भास्कराचार्य ब्राह्मण	शास्त्री	लड़का नहीं। पीढ़ी १
४	बापू भट्ट परांजपे, ब्राह्मण	वैद्यक और याज्ञिक	पोता नहीं। पीढ़ी २
५	जयपूर के घराने, क्षत्रिय	राजा	पोता नहीं। पीढ़ी २
६	हरि धोण्डदेव परांजपे, ब्राह्मण	दसग्रन्थी	पोता नहीं। पीढ़ी २
७	कागलकर घाटगे, क्षत्रिय	योद्धा, कारबारी	३ पीढ़ियाँ
८	बालकृष्ण नारायण दीक्षित पाटंकर *	अग्निहोत्री	आज वंश नहीं।
९	न्यायमूर्ति रानडे, ब्राह्मण	जज	लड़का नहीं। पीढ़ी १
१०	रामशास्त्री प्रभुने, ब्राह्मण	जज	आज वंश नहीं।
११	रामचंद्र पंत, ब्राह्मण	मंत्री	६ पीढ़ियाँ। आज दत्तक
१२	सालंखे पटड्कर, क्षत्रिय	योद्धा सरदार	६ पीढ़ियों के बाद एक शाखा के सिवा सब निःसन्तान।
१३	डफले सर बाजीराव, क्षत्रिय	लड़ाकू सरदार	पोता नहीं। पीढ़ियाँ २
१४	गायकवाड़, क्षत्रिय	राजे	५ पीढ़ी आजतक
१५	मोरया गोसावी, ब्राह्मण	सन्त	८ पीढ़ी। आज वंश नहीं।

* इन के भाईने ब्राह्मणपन छोड़कर सरदेशमुखी ले ली। इस का वंश है।

[जिन्हों ने अपने मनु के नियत किए हुए व्यवसाय छोड़ दिए और फिर भी उनका वंश चलता रहा, ऐसे लोगों के उदाहरण आगे दिए जाते है। उन में से प्रत्येक घराने का उत्तराधिकारी आज भी है।]

संख्या	घराने का नाम और जाति	व्यवसाय। यह मनु का नियत किया व्यवसाय नहीं	आज कितनी पीढ़ियां चलीं
१	बालाजी आबाजी चिटनीस, क्षत्रिय	लिखने का काम	९ पीढ़ी
२	बारम्तेकर जोशी, ब्राह्मण	साहूकार	१० पीढ़ी
३	महेन्दलेकर, ब्राह्मण	सरदारगी	लगभग ८ पीढ़ी
४	पटवर्धन, ब्राह्मण	सरदारगी	लगभग १० पीढ़ी
५	खाण्डेकर, ब्राह्मण	उड़ीसा का सूबेदार सरदार	७ पीढ़ी
६	रामचन्द्र गणेश कानडे, ब्राह्मण	लड़वैये	७ पीढ़ी
७	रामचन्द्र परांजपे, ब्राह्मण	साहूकार	७ पीढ़ी
८	केशव भास्कर परांजपे, ब्राह्मण	वस्त्र का व्यापार	११ पीढ़ी
९	परांजपे कुल में १५ घराने, ब्राह्मण	वस्त्र का व्यापार	१० पीढ़ी
१०	बालाजी महादेव परांजपे, ब्राह्मण	बंबई के दुर्ग पर देशमुख	७ पीढ़ी
११	गोखले, ब्राह्मण	आदिलशाह के समय से साहूकार फिर पेशवा के समय से सरदार।	लगभग २० पीढ़ी
१२	बर्वे घराने, ब्राह्मण	सरदार और साहूकार।	बहुत सी शाखाएँ ९ पीढ़ी
१३	पाणसे, ब्राह्मण	सरदार	लगभग १२ पीढ़ियाँ
१४	पुण्डे, ब्राह्मण	शिवाजी के समय से साहूकार।	वंश चल रहा है
१५	मावलड्कर सरदेसाई	सर देशमुख	३३ पीढ़ियाँ कई शाखाएँ जारी हैं

ऊपर की तालिका को देखने से ऐसा लगता है कि अपने वर्ण का व्यवसाय छोड़ कर दूसरा व्यवसाय करने अर्थात् वृत्ति-संकर और वंश-नाश का आपस में कुछ भी संबंध नहीं।

जो जिस की इच्छा हो वैसा व्यवसाय करे और अपना कर्तृत्व दिखा कर ऊँचे पद पर चढ़ सके, यह सुविधा समाज की ओर से सब को मिलनी चाहिए। इसी प्रकार समान संस्कृति और कर्तृत्व देख कर चाहे जहाँ सुदृढ़ कुल में विवाह-संबंध करना चाहिए। इस से समाज की अगली पीढ़ी अधिक पराक्रमी एवं कर्तृत्व वाली होगी। ऊपर की दोनों तालिकाओं से इस परिणाम पर पहुँचने मे हमें कोई बाधा नहीं। रक्त–शुद्धि और वृत्ति–शुद्धि हम ने आजतक बहुत कर ली, पर हिन्दुओं का साम्राज्य विदेशों में तो दूर अपने देश में भी गत डेढ़ सहस्र वर्षों से सुरक्षित नहीं है।

पन्द्रहवाँ परिच्छेद

सच्चा सनातन धर्म कौन सा है ?

किसी गाँव में दो मित्र रहते थे। एक का नाम देवदत्त था और दूसरे का नाम उद्योगपाल। वे दोनों धन कमाने के लिए घर से निकले। कुछ दूर जाने पर उन्हें एक जगह सन के पौधों का ढेर लगा मिल। दोनों ने उन का एक एक गट्ठर बाँध कर सिर पर उठा लिया। कुछ दूर आगे चलने पर उन्हें सन के उतारे हुए छिलके का ढेर देख पड़ा। उद्योगपाल ने सोचा कि जो सन का छिलका उतार कर हम बेचना चाहते है वह यहाँ उतारा हुआ पड़ा है, क्यों न इन पौधों को फेंक कर इस छिलके को ही उठा लें। यह सोच, उस ने पौधों का गट्ठर फेक दिया और सन के रेशों की गठरी बाँध कर उठा ली। उस ने देवदत्त को भी वैसा ही कर ने के लिए कहा। पर देवदत्त ने कहा—मै इत गट्ठर को इतनी दूर से उठा कर लाया हूँ, मै इसे नहीं फेंकूँगा

अब वे दोनों आगे चल पडे। कुछ दूर जाने पर उन्हें सन की बनी हुई सुतली का ढेर लगा मिला। उद्योगपाल ने सोचा कि सन का जो छिलका मै उठाए हुए हूँ, उस की सुतली बनेगी तभी यह बिकेगा, पर यहॅा सुतली बनी बनाई पड़ी है, क्यों न इसे ही उठा लूँ। यह सोच उस ने छिल के का बण्डल फेंक दिया और सुतली की गठरी बॉध कर उठा ली। उस ने देवदत्त से भी वैसा ही करने को कहा। पर देवदत्त ने न माना। वह बोला, मै इसे इतनी दूर से उठाए ला रहा हूँ, अब इसे कैसे फेंक दूँ ?

अब वे फिर आगे चल पडे। कुछ दूर जाने पर उन्हें सुतली के बने टाट का ढेर मिल। उद्योगपाल ने सोचा, सुतली टाट बनाने के काम आती है, पर यहाँ बना बनाया पड़ा है, क्यों न सुतली को फेक कर इसे ही उठा लूँ? यह सोच उस ने सुतली फेंक दी और टाट की गठरी बाँध कर उठा ली। पर देवदत्त सन के पौधों के पूले को ही लिए रहा। आगे चलने पर उन्हे एक जगह चाँदी

के ढेर लगे मिले। उद्योगपाल ने सोचा, मैं यह टाट रुपया कमाने के लिए ही लिए हुए हूँ, यहाँ चाँदी का ढेर लगा है, क्यों न टाट को फेंक कर चाँदी उठा लूँ। तब उस ने टाट फेंक दिया और उसके स्थान में चाँदी की गठरी बाँध ली। पर देवदत्त ने यह कह कर कि मैं इसे इतनी दूर से उठा कर लाया हूँ, सन के पौधों की पूली फेंकने से इंकार कर दिया।

कुछ दूर आगे चलने पर उन्हें सोने के ढेर लगे मिले। उद्योगपाल ने सोचा जिस सोने को पाने के लिए मैं ने चाँदी उठा रखी है वह यहाँ ढेरों पड़ा है, क्यों न चाँदी को फेंक कर इसे उठा लूँ। इस पर उस ने चाँदी फेंक दी और सोना उठा लिया। पर देवदत्त ने सन का पूला फेंकने से इंकार कर दिया। बस उद्योगपाल सोना लेकर और देवदत्त सन की बंधी पोटली लेकर घर लौट आए। उद्योगपाल के घर वाले सोना पाकर बहुत प्रसन्न हुए और देवदत्त के घर वाले उस की मूर्खता को देख रोने लगे। सनातन धर्म के नाम पर पुरानी रूढ़ियों से चिपटे रहने वाले हिन्दू भी देवदत्त के ही समान है। उन्हों ने आज तक पुराना कुछ छोड़ा नहीं और नया कुछ लिया नहीं। इसी से इन की हानि हो रही है।

हिन्दू समाज में आज सनातन धर्म के नाम पर प्रत्येक सुधार या अच्छी बात का विरोध किया जाता है। जो प्रथा समाज में कुछ दिन से चल रही है, चाहे वह कितनी भी हानिकारक क्यों न हो, यदि आप उस का सुधार करने का यत्न करेंगे, तो झट उसे 'सनातन धर्म' बता कर आप का घोर विरोध होने लगेगा। इस लिए सच्चा सनातन धर्म क्या चीज़ है, यह बता देने से सुधार-मार्ग की बहुत सी अड़चनें दूर हो जायँगी, इसी आशा से श्रीयुत बैरिस्टर विनायक दामोदर सावरकर के एक मराठी लेख का सारांश आगे दिया जाता है।

आज "सनातन" और "धर्म" ये दो शब्द जिन अर्थों में प्रयुक्त होते है वे इतने विविध, इतने असंगत और इतने परस्पर विरुद्ध हैं कि वे जिस रूप में हैं उसी रूप में उन को स्वीकार करना अयुक्त प्रतीत होता है। श्रुति और स्मृति से लेकर शनि-महात्म्य तक सारी पोथियों को और वेदों के अपौरुषेयत्व से लेकर बैङ्गन के अखेयत्व (न खाने लायक़ होने) तक सारे सिद्धान्तों को सनातन धर्म की एक समान पदवी मिली हुई है। उपनिषदों के परब्रह्म

स्वरूप के अत्युदार विचार भी सनातन धर्म है और आग के आगे पैर रख कर नहीं सेंकना चाहिए; हलकी धूप में भी नहीं बैठना चाहिए; लोहा बेचनेवाले का अन्न कभी नहीं खाना चाहिए; रोग-चिकित्सक वैद्यभूषण का अन्न फोडे की पीप के समान होता है; और ब्याज खानेवाले साहूकार का अन्न पुरीष की तरह होता है; इस लिए इन के घर में या साथ में बैठ कर भोजन कभी नहीं करना चाहिए (मनु ४-२१०); गोरस का खरबस। (नई ब्याई गौ का पहला दूध), चावल की खीर और बडे आदि खाना निषिद्ध है; प्याज और गाजर खाने से तो द्विज तत्काळ पतित हो जाता है। **पतेद् द्विजः।** (मनु ५—१९); परन्तु जो कोई श्राद्ध के लिए पकाया हुआ मांस हठ से नहीं खाता वह अभागा इक्कीस बार पशु-योनि में जन्म लेता है। (मनु० ५-३५)। "**नियुक्तस्तु यथान्यायं यो मांसं नात्ति मानवः। स प्रेत्य पशुतां याति संभवानेकविंशतिम्।**" ये सब सनातन धर्म है। श्राद्ध में ब्राह्मण को चावल की अपेक्षा सुअर और भैसे का मांस खिलाना बहुत अच्छा है। क्योंकि पितर इस मांस से दस महीने तक तृप्त रहते है। और यदि ब्राह्मण वार्धींणस बकरे का मांस खायँ तो बारह वर्ष पर्यन्त पितरों का पेट भरा रहता है—**वार्धीणसस्य मांसेन तृप्तिर्द्वादश वार्षिकी** (मनु० ३-२७१)! यह भी सनातन धर्म है। और किसी भी प्रकार का मांस नहीं खाना चाहिए— '**निवर्तेत सर्वमांसस्य भक्षणात्!**' मांसाशन के लिए पशु-वध का केवल अनुमोदक भी 'घातक' महापापी है। (मनु० ५-४९-५१) यह भी सनातन धर्म है! मुंह से अग्नि को फूंकना नहीं चाहिए, इन्द्रधनुष को नहीं देखना चाहिए, '**नाश्नीयाद् भार्यया सार्धम्,**' अर्थात् स्त्री के साथ भोजन नहीं करना चाहिए, भोजन करते हुए उसको नहीं देखना चाहिए। दिन में मल-मूत्रोत्सर्ग उत्तराभिमुख ही करना चाहिए, परन्तु रात्रि में दक्षिणाभिमुख (मनु० ४-४३,५०) आदि, ये सब विधि-निषेध उतने ही मानवीय सनातन धर्म हैं जितने कि '**सन्तोषं परमास्थाय सुखार्थी संयतो भवेत्,**' '**सन्तोष मूलं हि सुखं दुःखमूलं विपर्ययः**' (मनु० ४-१२) प्रभृति उदात्त उपदेश मानवीय सनातन धर्म हैं।

इन अनेक प्रसंगों पर बिलकुल परस्पर विरूद्ध विधि-निषेध और सिद्धान्तों को ऐरे गैरे नत्थू-खैरे लोग ही सनातन धर्म नहीं कहते हैं, वरन्

हमारे समस्त स्मृति-पुराणों के सनातन-धर्म ग्रन्थों में भी यही परम्परा प्रचलित है। उपर लिखित सब छोटे-बडे, व्यापक-विक्षिप्त, क्षणिक आचार-विचारों के अनुष्टुपों के अन्त में बिलकुल साफ़ तौर पर प्रायः एक ही '**एष धर्मस्सनातनः**' की राजमुद्रा लगाई हुई मिलती है।

हमारे धर्म-ग्रन्थों में ही ऐसी खिचड़ी नहीं हुई है, वरन् संसार के सभी अपौरुषेय कहलाने वाले प्राचीन और अर्वाचीन धर्म-ग्रन्थों की भी यही दशा है। सहस्रों वर्ष पूर्व के मूसा पैगम्बर से लेकर आजकल के अमेरिका के मोर्मन पैगम्बर तक सभी ने दाढ़ी-मूछ-चोटी की लंबाई-चोड़ाई से लेकर उत्तराधिकारियों तथा दत्तकों के विवाह के नियमों तक अपने सब विधानों पर '**एष धर्मस्सनातनः**' (यह सनातन धर्म है) की ही सरकारी छाप और वह भी ईश्वर के नाम पर लगाई है। ईश्वर ने ये सब विधि-निषेध अखिल मानव-जाति के लिए अपरिवर्तनीय धर्म कह कर बतलाए है। सब मनुष्यों को सुन्नत करनी ही चाहिए, यह भी सनातन धर्म है! और त्रैवर्णिकों को ऐसी कुछ गड़बड़ न करके केवल यज्ञोपवीत संस्कार करना चाहिए, यह भी सनातन धर्म है! केवल लाक्षणिक अर्थ से ही नहीं वरन् अक्षरशः इन सब अपौरुषेय ईश्वरीय धर्म-ग्रन्थों मे एक का मुँह पूर्व की ओर तो दूसरो का पश्चिम की ओर है, और वह भी प्रार्थना के पहले ही पग में। प्रातःकाल में पूर्व की ओर मुंह करके प्रार्थना करना यह भी सनातन धर्थ है, और प्रातःकाल में ही पश्चिम की ओर मुँह करके प्रार्थना करनी चाहिए, यह भी मनुष्य मात्र का सनातन धर्म है। एक ही परमात्माने मनु को यह पहली आज्ञा दी और मुहम्मद को यह दूसरी दी। ईश्वर की अगाध लीला और क्या हो सकती है? अपने आपको सुरक्षित कर के, हिन्दू-मुसलमानों में दंगा करा कर, दूर से तमाशा देखते रहने का अभियोग जिन्ना पर फिजूल ही लगाया जाता है। यह तमाशा आरम्भ करने का प्रथम सौभाग्य जिन्ना साहब को प्राप्त नहीं है। वरन् हिन्दू-मुसलमान दोनों को परस्पर विरुद्ध बातें, अपरिवर्तनीय सनातन धर्म के नाम पर बतला कर उन में झगडा उत्पन्न करने वाले दिल्लगीबाज़ ईश्वर को यह सौभाग्य प्राप्त है। यह उस की मूलकी लीला है। यदि उस की नहीं तो उस के नाम पर ये ग्रन्थ ज़बर्दस्ती से लादने वाली मनुष्य-जाति की मूर्ख श्रद्धा की है।

इन सब असंगत और परस्पर विरुद्ध बातों को —टके सेर भाजी टके

सेर खाजा से—सनातन धर्म की एक सी पदवी देने में मानवी बुद्धि ग़लती खा गई है। सनातन-धर्म शब्द का यह रूढ़ि अर्थ ही इस असंगतिवाद का कारण बन गया है। हमारी यह धारणा है कि इस शब्द के मूल अर्थ की छान बीन करने के बाद, उसके अनुसार, ठीक बातों के लिए इसे प्रयुक्त करने से ही यह निश्चयपूर्वक और निःसंदिग्धता से बताया जा सकता है कि इन मत-मतान्तरों की गड़बड़ में सच्चा सनातन-धर्म कौन सा है। उन शब्दों के अर्थों की छान बीन इस प्रकार है।

२

"सनातन" शब्द का मुख्य अर्थ है शाश्वत, अबाधित, अखण्डनीय, अपरिवर्तनीय। 'धर्म' शब्द अँगरेज़ी शब्द 'लॉ' (Law) की तरह और उसी प्रकार मानसिक प्रक्रिया के कारण अनेकार्थक बन गया है। (अ) प्रथम उसका मूल का व्यापक अर्थ है नियम। जो किसी भी वस्तु के अस्तित्व और व्यवहार का धारण और नियमन करता है वह उस वस्तु का धर्म है। यथा सृष्टि के धर्म, पानी के धर्म, अग्नि के धर्म,। इन का उपयोग इस व्यापक अर्थ में ही होता है। सृष्टि-नियमों के लिए 'लॉ' शब्द का व्यवहार करते ही है, जैसे 'लॉ ऑफ़ ग्रेविटेशन' (Low of Gravitation) (आ) इसी व्यापक अर्थ के कारण पारलौकिक और पारमार्थिक पदार्थों के नियमों के लिए भी 'धर्म' शब्द प्रयुक्त होने लगा, फिर वे नियम चाहे प्रत्यक्षागत हों या न हों। स्वर्ग, नरक, पूर्व जन्म, ईश्वर, जीव, जगत् इनका परस्पर संबंध, इन सब का समावेश 'धर्म' शब्द में ही किया गया। इतना ही नहीं, शनैः शनैः यह 'धर्म' शब्द विशेषतया इस के पारलौकिक विभाग के लिए ही 'सुरक्षित' रखा गया। आज 'धर्म' शब्द का विशेष अर्थ यही होता है। इस अर्थ के अनुसार धर्म 'रिलीजन' (Religon) है।

(इ) मनुष्यों के जो ऐहिक व्यवहार पारलौकिक जगत के उपकारक जान पडे और जिन के संबंध में ऐसा प्रतीत हुआ कि उस पारलौकिक जीवन में वे धारण किए जायँगे वे भी धर्म माने गये। अँगरेज़ी में मूसा, इब्राहीम, मुहम्मद, प्रभृति पैगम्बरों की स्मृतियों में ठसाठस भरे हुए कर्म-काण्ड को लॉ ही कहा गया है। इस अर्थ के अनुसार धर्म का मतलब आचार है।

(ई) ऊपर के आचार को छोड़कर, मनुष्य और मनुष्य के बीच ऐहिक प्रकरण से जो संबंधित व्यवहार होते है, व्यक्ति या राष्ट्र के उन व्यवहार-नियमों को भी पहले धर्म कहा जाता था। स्मृतियों में युद्ध-नीति, राजधर्म, व्यवहार–धर्म,आदि प्रकरणों में ये पिरोए हुए है। परन्तु आज इन में से बहुत सा भाग स्मृतिनिष्ठ, अपरिवर्तनीय, धर्मसत्ता में से निकल कर मनुष्यकृत परिवर्तनीय नियमों की कक्षा में इतने निर्विवाद रूप से समाविष्ट हो गया है कि शास्त्री पण्डितों को भी निषिद्ध प्रतीत नहीं होता। गाड़ी चलाने के निर्बन्ध, गाली-गलौज, चोरी आदि के दण्ड-विधान निर्बन्ध–शासन का प्रदेश है। हमारे यहाँ आज 'धर्म' शब्द रिलीजन के विशेष अर्थ के लिए 'सुरक्षित' रक्खा गया है। उसी प्रकार अँगरेज़ी मे 'लॉ' शब्द निर्बन्व-शासन के विशेषार्थ में प्रयुक्त किया जा रहा है। इस अर्थानुसार धर्म निर्बन्ध (क़ायदा, लॉ) है।

२

'सनातन' और 'धर्म' इन दो शब्दों के अर्थों का आवश्यक रहस्योद्घाटन करने के अनन्तर, अब ऊपर के विभागों में से किस विभाग के लिए यथार्थ रूप में 'सनातन' शब्द प्रयुक्त किया जाना चाहिए, यह निश्चित करना कठिन नहीं है। जैसा कि ऊपर दिखाया जा चुका है, हमारा अपने लिए निश्चित किया हुआ 'सनातन धर्म' का अर्थ शाश्वत नियम है। अपरिवर्तनीय, जो परिवर्तित नहीं होते, इतना ही नहीं, जिन को परिवर्तित करना मानवी शक्ति से बाहर की बात है ऐसे अबाधित जो धर्म होंगे—नियम होंगे—उन्हीं को यथार्थ रूप में सनातन धर्म की पदवी दी जा सकेगी। यह लक्षण ऊपर लिखे धर्म के प्रथम विभाग के सृष्टि-नियमों पर पूर्णतया घट सकता है। प्रत्यक्ष, अनुमान और उनके बिलकुल अविरुद्ध आप्त-वाक्य—इन प्रमाणों के आधार पर सिद्ध होनेवाले और जिन के विषय मे कोई भी व्यक्ति प्रयोग करे तो उस कार्य-कारण भाव की कसौटी पर जो पूर्णतया कसे जा सकते हैं, ऐसे मानवी ज्ञान की सीमा के अन्तर्गत, जो जो सृष्टि नियम और जो जो वैज्ञानिक सत्य आये हैं, उन्हीं को हम अपना सनातन धर्म समझते है। निःशेष परिगणना के लिए नहीं, केवल दिग्दर्शन के लिए आगे लिखे नाम पर्याप्त है—जैसे, प्रकाश, उष्णता, गति, गणित, ज्योतिष, ध्वनि, विद्युत, चुम्बक, रेडियम, भूगर्भ, शरीर, वैद्यक, यंत्र, शिल्प, वानस्पत्य, जैव और तत्सम जो प्रयोगक्षम शास्त्र (Practical Scien-

ces) है उन के जो प्रत्यक्षनिष्ठ और प्रयोगसिद्ध नियम आज मनुष्य-जाति को ज्ञात हुए है, वही हमारा सनातन धर्म है। वे नियम आर्यों के लिए या अनार्यों के लिए, मुसलमानों के लिए या काफिरों के लिए, ईसाइयों के लिए या हीदन के लिए नहीं उतरे है। वे अखिल मानव-समाज पर निष्पक्ष और समभाव से लागू होते है। वह सच्चा सनातन धर्म है। यह सच्चा मानव धर्म है। यह केवल '**कृते तु मानवो धर्मः**' नहीं है, प्रत्युत त्रिकालाबाधित मानव धर्म है। इसीलिए इस पर सनातन धर्म का विशेषण निर्विवाद रूप से लागू होता है। सूर्य, चन्द्र, आप, तेज, वायु, अग्नि, भूमि, समुद्र, आदि पदार्थ किसी लोभ से प्रसन्न होने वाले या नैवेद्य न मिलने से रूठने वाले देवता नहीं है, वरन सनातन-धर्म के नियमो से आबद्ध वस्तुएँ है। उन नियमों को मनुष्य जितना हस्तगत कर लेता है उतना ही वह स्सृष्टि-शक्ति के साथ अचूक व्यवहार कर सकता है। यदि हम छिद्रों से भरी हुई नाव को महासागर मे छोड़ने के बाद, फिर उसे डूबने से बचाने के उद्देश्य से, महासागर को प्रसन्न करने के लिए, नारियल के ढेर के ढेर उस में फेकेंगे और बिलकुल शुद्ध वैदिक मन्त्रों में चिल्लाना आरम्भ करेंगे— '**तस्मा अरं गमाम वो यस्य क्षयाय जिन्वथ। आपो जनयथा च नः।**' तो वह सागर हमारे 'जनो' समेत उस नाव को नौ सौ निन्यानवे प्रति सहस्र प्रसंगो पर डुबाए बिना न रहेगा। और यदि उस जहाज को वैज्ञानिक नियमों के अनुसार ठीक करके, फौलादी पतरों से मढ़ कर, "निडर" बना दिया जायगा, तो उस पर वेदों की होली करके पैर सेकने वाले और पंच महापातक को पंच महापुण्य समझ कर, सुरापान और गोमांस-भक्षण करके मस्त हुए हुए रावण के राक्षस भी चढ़ जायँ तो भी समुद्र उस निडर नाव को नौ सौ निन्यानवे प्रति सहस्र प्रसंगों पर नहीं डुबाता—नहीं डुबा सकता। वह उनको चाहे जिस सुवर्ण-भूमि पर, तोप से गोले बरसाने के लिए, सकुशल ले जाती है। जो बात समुद्र की है वही और महाभूतों की है। उन को अपनाने के महामंत्र शब्दनिष्ठ वेद में या जिन्दावस्ता में, कुरआन में या पुराण में नहीं मिलेंगे। वे प्रत्यक्षनिष्ठ विज्ञान (सायंस) में मिलेंगे। यह सनातन-धर्म इतना पक्का सनातन, इतना स्वयंसिद्ध और इतना अपरिवर्तनीय है कि उस को डूबने या परिवर्तित होने से बचाने के लिए कोई भी 'सनातन धर्म संरक्षक संघ' स्थापित

करने का कष्ट, कलियुग में भी, उठाने की कोई आवश्यकता नहीं है। कारण यह कि इस वैज्ञानिक सनातन-धर्म को परिवर्तित करने की शक्ति मनुष्यों में किसी को भी और कभी भी प्राप्त होना संभव नहीं है।

हम यह भी जानते है कि यह सनातन-धर्म, ये सृष्टि-नियम आज पूर्णतया मानव-जाति को ज्ञात नहीं हैं, और वैसे ज्ञात कभी हो भी नहीं सकते। जो आज ज्ञात प्रतीत होते है, संभव है, कल विज्ञान के विकास से उस विषय का हमारा ज्ञान आगे चल कर कुछ गलत साबित हो जाय। अनेकानेक नियमों के ज्ञान की वृद्धि तो उस में निश्चित रूप से होती ही रहेगी। जब जब वह वृद्धि होगी या उस में सुधार करना होगा, तब तब हम अपनी इस वैज्ञानिक स्मृति में लुक-छिप कर नहीं, लज्जा करते हुए नहीं, और आज के श्लोकों की अप्रमाणिक खेंचा-तानी करते हुए नहीं, वरन् प्रकट रूप से नवीन श्लोक मिला कर सुधार करेंगे और उलटा मानवी ज्ञान के बढ़ जाने से उस सुधार को भूषण स्वरूप समझेंगे। हम स्मृतियों को सनातन और अपरिवर्तनीय नहीं समझते, प्रत्युत सत्य को सनातन और अपरिवर्तनीय समझते हैं। स्मृतियों को बदलना पडेगा, इस भय से सत्य से इंकार करना वैसा ही है जैसा कि घर को बढ़ने से बचाने के लिए बाल-बच्चों को मार डालने का पागलपन करना।

४

ऊपर बतलाया जा चुका है कि 'धर्म' शब्द के प्रथम विभाग के अन्तर्गत सृष्टि-धर्म पर 'सनातन' का विशेषण पूर्णरूप से लागू हो सकता है। 'धर्म' शब्द का जो दूसरा विभाग ऊपर किया है, अब हम उस के अन्तर्गत पारलौकिक और पारमार्थिक नियमों का विचार करेंगे। आज इस प्रकरण के लिए 'धर्म' शब्द प्रयुक्त किया जाता है। ईश्वर, जीव और जगत-इनके स्वरूप और परस्पर संबंध के अस्तिरूप या नास्तिरूप के विषय में कुछ त्रिकालाबाधित नियम होने ही चाहिएँ। उसी प्रकार जन्म, मृत्यु, पूर्वजन्म, पुनर्जन्म, स्वर्ग, नरक-इनकी वास्तविक स्थिति का निश्चित रूपसे बोधक ज्ञान भी त्रिकालाबाधित कहलाने का अधिकारी है। इस लिए इस में संदेह नहीं कि इस पारलौकिक प्रकरण के सिद्धान्त भी सनातन धर्म अर्थात् शाश्वत, अपरिवर्तनीय धर्म है।

परन्तु इस विषय में संसार भर के धर्म-ग्रन्थों में जो बातें और नियम दिखाई देते है उन में से एक को भी हम सनातन धर्म, अपरिवर्तनीय, निश्चित सिद्धान्त नहीं कह सकते। निश्चित वैज्ञानिक नियमों की तरह धर्म-ग्रन्थों का यह पारलौकिक अवस्था का वर्णन प्रत्यक्षनिष्ठ प्रयोग की कसौटी पर बिलकुल कसा नहीं गया। उन का सारा निर्भर शब्द-प्रामाण्य, आप्त-वाक्य और विशिष्ट व्यक्तियों की आन्तरिक अनुभूति पर होता है। इस में भी कोई विशेष बुराई की बात नहीं थी क्योंकि कुछ सीमा तक प्रत्यक्षानुमानिक प्रमाणों के अविरुद्ध शब्द-प्रमाण और आप्त-वाक्य भी प्रमाण होते ही है। परन्तु केवल इस प्रमाण की कसौटी पर भी इन धर्म-ग्रन्थों का पारलौकिक विधान बिलकुल नहीं कसा जा सकता। पहले प्रश्न होता है कि आप्त कौन है ? हमारे धर्म-ग्रन्थ ही उत्तर देते है कि चित्त-शुद्धि के द्वारा आत्मोन्नत, ज्ञानी भक्त और समाधिसिद्ध योगी। इन पूर्ण प्रज्ञ आप्तों मे शङ्कराचार्य, रामानुज, मध्व और वल्लभ का भी तो समावेश करना चाहिए न। महाज्ञानी कपिल मुनि और योग सूत्रकार पतञ्जलि को भी नहीं छोड़ा जा सकता। उदाहरण के लिए इतने ही आप्त पर्याप्त है। यदि आप्त-वाक्य शब्द-प्रमाण है तो इनका उन विशिष्ट अवस्थाओं का अनुभव भी एक ही होना चाहिए। परन्तु उन में से प्रत्येक आप्त पारलौकिक और पारमार्थिक सत्यका जो स्वरूप और जो नियम बतलाता है वह एक दूसरे से भिन्न ही नहीं, प्रत्युत परस्पर विरुद्ध भी है। कपिल मुनि बतलाते है, पुरुष और प्रकृति ये दो ही सत्य है; ईश्वर-वीश्वर हम कुछ नहीं जानते। शङ्कराचार्य फ़रमाते है, पुरुष और पुरुषोत्तम ईश्वर—'**मायोपाधि**" और माया-बाधित है। '**ब्रह्म सत्यं, जगन्मिथ्या जीवो ब्रह्मैव नापरः**।' अद्वैत ही सत्य है ! रामानुज कहते है, बिलकुल ग़लत है। यह प्रच्छन्न बौद्धवाद है ! विशिष्टाद्वैत ही सत्य है ! मध्ववल्लभ कहेंगे जीव और शिव, भक्त और देव, जड़ और चेतन—इनको एक कहते हो ? द्वैत ही सत्य है। समाधि-सिद्ध पतंजलि महाराज फ़रमाते है— '**तत्रपुरुष विशेषो ईश्वरः**'।

इस प्रकार यदि इन महान साक्षीदारों के स्वानुभूत शब्दों से बुद्धि चकरा जाय तो आश्चर्य ही क्या है ? तो भी हम ने इन योगी-सिद्धों की साक्षियों में उस परम योगसिद्ध की, उस तथागत बुद्ध की साक्षी नहीं ली। ईश्वर-विषयक यह यच्चयावत विधान-समूह उस की समाधि-सिद्ध स्वानुभूति में केवल ब्रह्मजाल

निकम्मा सिद्ध हुआ। स्वानुभूति और समाधिमय ज्ञान पारलौकिक, वास्तविक अवस्था को जानने के लिए अवाधित और श्विसनीय प्रमाण नहीं हो सकते। कम से कम अब तक नहीं हो सके। अब यह बतला देना ही पर्याप्त है कि शब्द प्रमाण की स्थिति भी ऊपर के आप्त-प्रमाण की तरह ही है। अपौरुषेयवेद को जिस कारण से अपौरुषेय मानना चाहिए उसी करण से तौरेत, ज़बूर, बायबिल, कुरआन, अवेस्ता को स्वर्ण ग्रन्थ—(एक या दोनों) को भी ! संसार में लगभग पचास–एक ईश्वर–प्रदत्त ग्रन्थ प्रख्यात हैं। उन सब को अपौरुषेय मानना पड़ता है। प्रत्येक अपौरुषेय ग्रन्थ में ईश्वर ने उस के सिवा दूसरे प्रत्येक अपौरुषेय धर्म-ग्रन्थ के पारलौकिक स्थिति-विषयक दिए हुए ज्ञान और नियमों से विभिन्न असंगत और बिरुद्ध ज्ञान दिया है। वेद बतलाता है—स्वर्ग का राजा इंद्र ही है, परन्तु बायबिल के स्वर्ग में इंद्र का पता डाकवाले को भी नहीं। देवपुत्र ईसामसीह के हाथ में समूचे स्वर्ग की चाबी है। देव और देव–पुत्र दोनों एक ही है (Trinity in Unity, Unity in Trinity)। कुरआन के स्वर्ग में लाइलाहा इललिल्ला, मुहम्मद रसूल अल्लाह (अल्लाह के सिवा और कोई परमेश्वर नहीं; मुहमद परमेश्वर का भेजाहुआ दूत है।) इस के सिवा कोई तीसरी बात नहीं। रेड इण्डियनों के स्वर्ग में सुअर ही सुअर और घने जंगल हैं। परन्तु मुसलमान पुण्यवानों के स्वर्ग मे ऐसी नापाक चीज़ दवा के लिए भी न मिलेगी। और इन में से प्रत्येक का कहना है कि स्वर्ग वैसा ही है जैसा मैं बतलाता हूँ। यही नहीं कि प्रत्यक्ष ईश्वर ने यह बतलाया है, वरन् मुहम्मद आदि पैग़म्बर ऊपर गये, वहाँ रहे और स्वयं सब कुछ देख कर वापस लौट आए। उन्हों ने भी यही बतलाया। वही बात नरक की है। मूर्तिपूजक और याज्ञिक की बात तो जाने दीजिए। यज्ञ में बलि चढ़ाए हुए बकरे भी स्वर्ग में ही जाते हैं। पुराणो में मृत्यु के उपरान्त का इतना पक्का पता दिया गया है। किन्तु कुरआन क़सम खा कर कहता है कि नरक की जगह–चाहे उस में कितनी ही भीड़ क्यों न हो— यदि किसी के लिए सुरक्षित रखी जायगी तो इन प्रतिमा–पूजक और अग्नि–पूजक सज्जनों के लिए ही। देखिए, मृत्यु के बाद मिलेने वाले नरक का कितना निश्चित पता दिया है। शब्द शब्द में भरी हुई इन असंगतियों को कहाँ तक दिखाएँ। ये सब धर्म-ग्रन्थ अपौरुषेय

हैं ! इस लिए यदि उन को सच मान लिया जाय तो उन में वर्णित पारलौकिक वस्तु-स्थिति शब्द प्रमाण से भी सिद्धान्तभूत सिद्ध नहीं होती—

अन्योन्य व्याघातात् !

यदि उन सब को मनुष्य-कल्पित समझकर झूठ माना जाय तब तो वे सिद्धान्तभूत हो ही नहीं सकती—**वदतो व्याघातात्** ! और यदि उन में से कुछ को सच्चा और कुछ को झूठा मानें तो यह सिद्ध करने के लिए कि अमुक कैसे सच्चा है और अमुक कैसे झूठा है, उनके अपने शब्दों के सिवा और कोई प्रमाण न होने से वे सिद्धान्तभूत नहीं हो सकतीं, कदापि नहीं हो सकतीं—

स्वतंत्र प्रमाणाभावात् !!

इस लिए पारलौकिक स्थिति का आज जो वर्णन उपलब्ध है वह प्रत्यक्ष, अनुमान, या शब्द इन में से किसी भी प्रमाण से सिद्ध न होने से सनातन धर्म, त्रिकालाबाधित और अपरिवर्तनीय सत्य नहीं कहला सकता। वैसे किसी भी विधेय को वैसा सिद्धान्त का स्वरूप प्राप्त होते ही हमारी स्मृतियों में स्थान मिल ही जायगा। परन्तु आज फिर भी वह विषय प्रयोगावस्था में है। आप्तों के और अपौरुषेय ग्रन्थों के तद्विषयक विधान सिद्धान्त नहीं हैं, क्लृप्तियँ (हाईपाथेसिस) हैं। बहुत ही हुआ तो सत्याभास हैं, सत्य कदापि नहीं। उनके जानने का प्रयत्न आगे होना चाहिए। तथापि यथासंभव इन विषयों की क्लृप्तियों का निर्माण करके यह सिद्ध करने के कारण कि उस स्वर्गीय मृत और अमृत के प्राप्त करने के लिए इतना दीर्घ प्रयत्न करके भी इतनी दिशाओं में उनका पता नहीं चलता और अपने देव-तुल्य अवतारों से अखिल मानव-जाति की गोद को धन्य बनाने के लिए नचिकेता से लेकर नानक तक के पुण्य श्लोकों का और प्रेषितों का, इन श्रुतियों का और इन स्मृतियों का हम मनुष्यों पर जो ऋण है उस से हम कदापि उऋण नहीं हो सकते। इस कृतज्ञ भावना को प्रकट किये बिना हम से आगे का अक्षर लिखा ही नहीं जाता।

५

अब धर्म के अन्तिम दो अर्थों का—आचार और निर्बन्ध का—विवेचन शेष रह गया है। इन दोनों अर्थों के अनुसार 'धर्म' शब्द के लिए 'सनातन' का विशेषण प्रयुक्त हो ही नहीं सकता। मनुष्य के जो ऐहिक

व्यवहार के पारलौकिक जीवन के लिए उपकारक समझे जाते हैं उनके लिए हम ' आचार ' शब्द का प्रयोग करते है । अर्थात् जैसा कि ऊपर बतलाया गया, पारलौकिक जीवन के विषय में, अस्तिपक्ष में या नास्तिपक्ष में कोई भी निश्चित सिद्धान्त मालूम न होने के कारण उसके लिए कौन-सा ऐहिक आचार उपयुक्त होगा यह निश्चित करना असंभव है । हिन्दुओं के ही नहीं, मुस्लिम, ईसाई, पारसी, यहूदी प्रभृति सभी धर्म-ग्रन्थों में परलोक की अपेक्षा कर्म-काण्ड की आधार-शिला ही रेत के ढेर पर रखी गई है । ' क्ष ' भू द्वीप है या गाँव है, वन है या वीरान है, पूर्व में है या उत्तर में, है भी या नहीं— इन बातों का ही जहाँ निश्चय नहीं हुआ है, उस ' क्ष ' भू में सुखपूर्वक निवास करने के लिए किस मार्ग से जाना चाहिए और कौन सी खाने-पीने की सामग्री वहाँ काम देगी, इस के सूक्ष्म एवं अपरिवर्तनीय नियम बनाना कितने बडे अनुमान का काम है । इसलिए अमुक ऐहिक आचार से परलोक में अमुक फल मिलता है, यह बतलाने वाले किसी भी नियम को आज भी सनातन धर्म अर्थात् शाश्वत, अपरिवर्तनीय और अबाधित नियम बिलकुल नहीं कहा जा सकता ।

अब शेष रहा प्रश्न निर्बन्धो का और मनुष्य-मनुष्य के शिष्टाचार का । यद्यपि इन को भी स्मृतियों में " **एष धर्मस्सनातनः** " कहा गया है तो भी वे सदा परिवर्तनीय ही होते हैं और होने भी चाहिऐ । स्मृतियों में भी सत्यादि युगों के सनातन धर्म में से कुछ कलियुग में त्याज्य माने है । बात क्या है ? इसी प्रकार बहुत से "**एष धर्मः सनातनः** " आगे के अध्यायों में आपद्धर्म के अनुष्टुपों से निकाल दिए जाते है । बात क्या है ? बात यही है कि विपत्ति या संपत्ति के समय में भी युग-भेद से परिस्थिति-भेद होते ही इन निर्बन्धों का बदलना ही श्रेयस्कर होता है । अर्थात् वे अपरिवर्तनीय, सनातन नहीं हैं, परिवर्तनीय हैं । मनु ने राजधर्म में युद्ध-नीति का जो सनातन धर्म बताया है उस में चतुरङ्गदल का विस्तारपूर्वक उल्लेख किया है । परन्तु वहाँ तोपखाने या वैमानिक दल का नाम-निर्देश तक नहीं है । और यह जो बताया गया है कि सेना के अग्रभाग में शौर सेनी लोगों को रहना चाहिए, वह इस लिए बतलाया गया है कि वह मनु के युग में हितकर था । इन नियमों को अपरिवर्तनीय सनातन धर्म समझकर यदि हमारे सनातन धर्म संघ आज भी

केवल धनुर्धरों को आगे रख कर और आठ घोड़ोंवाला रथ सजा कर किसी यूरोप के अर्वाचीन महाभारत में शत्रु को कम्पायमान करने के लिए कृष्ण का पंचजन्य फूँकते हुए चढ़ाई करदें तो पंचजन्य के रहते हुए भी उनको वापस लौटना पडेगा—क्या यह बतलाने की आवश्यकता है ? हिन्दू–सेना के अग्रभाग में जबतक मनु–निर्दिष्ट शौरसेनीय प्रभृति सैनिक थे, तब तक मुसलमान हिन्दुओं को मिट्टी में मिलाते हुए आगे बढ़ते रहे। परन्तु मनुस्मृति में जिनका नाम–ग्राम कुछ भी नहीं वे मराठे, सिख और गुरखे जब हिन्दू–सेना के अग्रभाग में हुए, तब उन्हीं मुसलमानों को उसी मिट्टी में मिल जाना पड़ा। आचार, रूढ़ि और निर्बन्ध ये सब मनुष्यों के ऐहिक व्यवहार के नियम है। इन को परिस्थिति के अनुसार परिवर्तित करते ही रहना चाहिए। जिस परिस्थिति में जो आचार या निर्बन्ध मनुष्य के धारण या उदाहरण में सहायक और हितप्रद होगा वही उसका उस परिस्थिति में धर्म, आचार और निर्बन्ध होगा— '**नहि सर्वहिता कश्चिदाचारः सम्प्रवर्तते। तेनैवान्यः प्रभवति सोपरोबाधते पुनः।**' (महाभारत, शान्तिपर्व)।

सारांश

१. जो सृष्टि–नियम विज्ञान के प्रत्यक्षनिष्ठ प्रयोगांत में सर्वथैव अबाधित, शाश्वत, सनातनसिद्ध हो चुके है केवल वही सच्चे सनातन धर्म है ।

२. हमें पारलौकिक परिस्थिति का प्रयोगसिद्ध ज्ञान बिलकुल हुआ ही नहीं है। इसलिए यह विषय अभी तक प्रयोगावस्था में है, यह समझकर उसके विषय में अस्तिरूप या नास्तिरूप कुछ मत बना लेना ठीक नहीं है। उस पारलौकिक प्रकरण के विषय में तरह तरह की क्लृप्तियाँ बतलानेवाले कोई भी धर्म–ग्रन्थ अपौरुषेय या ईश्वर–प्रदत्त नहीं है, वरन् मनुष्यकृत या मनुष्य–स्फूर्ति है। उन क्लृप्तियों को प्रमाणहीन होने के कारण सनातन धर्म, शाश्वत या सत्य नहीं कहा जा सकता ।

३. मनुष्य के सारे ऐहिक व्यवहार, नीति–रीति तथा निर्बन्ध इस संसार में उस के लिए हितप्रद है, इस का निश्चय प्रत्यक्षनिष्ठ कसौटी से ही करना चाहिए और उस के बाद ही उन का पालन करना चाहिए। इस '**परिवर्तिनि संसारे**' वे मानवी व्यवहार–धर्म सनातन हो ही नहीं सकते और उन का

होना इष्ट भी नहीं है। महाभारत का कहना ठीक ही है—'**अतःप्रत्यक्ष मार्गेण व्यवहार विधि नयेत्।**'

यूरोप और अमेरिका में पाँव रखते ही जो शब्द सब से अधिक हमारे कान में पड़ता है वह है "अप टू डेट" अर्थात् "अद्यवत्।" हम यदि वहाँ बूट पालिश की डिबिया खरीदने जायँ तो भी दूकानदार फ़ौरन हम से कहेगा—"महाशय, यही डिबिया लीजिए।" क्यों, यही क्यों? ऐसा प्रश्न पूछते ही वह उत्तर देगा—"क्योंकि देखिए, यह बिलकुल अप टू डेट है।" इसी प्रकार जब हम दरज़ी के पास जाते है, तो वह कोट, कमीज़, पतलून, पायजामा लेहंगा आदि का एक एक नमूना दिखा कर उन में से उत्तम और ग्राह्य नमूना आगे रख देता है। वह उत्तम और ग्राह्य क्यों है, इस के सारे कारण एक शब्द में व्यक्त करने के लिए वह फ़ौरन कहता है—"यह बिलकुल अप टू डेट है।" "बिलकुल अद्यवत् है।" वहाँ प्रत्येक वस्तु अप टू डेट है, अप टू डेट यन्त्र, अप टू डेट पुस्तक, अप टू डेट वेष, अप टू डेट ज्ञान, अद्यवत सुविधाएँ, अर्थात् जो कुछ है वह उन उन पदार्थों में से सर्वोत्कृष्ट प्रकार का है। उनकी कलकी बंदूक़ की अपेक्षा आज की बंदूक़ बढ़िया है, कल के विमान की अपेक्षा आज का विमान उत्तम है, कल के ज्ञान की अपेक्षा आज का ज्ञान सरस है। वे परसों लंडन के इस सिरे के कमरे में बैठ कर लण्डन के उस सिरे के कमरे में बैठे हुए मनुष्य से (टेलीफोन द्वारा) बात-चीत करते थे। कल वे उसी लण्डन के उसी कमरे में बैठ कर स्काटलेण्ड के घर में बैठे हुए मनुष्य से बातचीत करने लगे। और आज लण्डन के उसी कमरे में बैठ कर अमेरिका में बैठे हुए मित्र की ओर मुँह करके प्रातःकाल का बाजार-भाव पूछते हैं और फ़ौरन ही मुँह फेर कर बंबई में बैठे हुए दूकानदार को प्रातःकाल ही बतला देते हैं। इस प्रकार उनका आज उनके कल के आगे लगातार दौड़ रहा है। कल पिछड़ रहा है—निकम्मा बन रहा है। आज की यूरोप-अमेरिकन संस्कृति का विशेष नाम है अप टू डेट-अद्यवत्। परन्तु हमारे हिन्दू राष्ट्र में जो

संस्कृति आज भी हमारी मनोभूमि में अपनी गहरी जड़ें घुसेड़ कर और सारे जीवन में व्याप्त होकर फैली हुई है उस संस्कृति का मुख्य लक्षण यदि किसी एक शब्द में बतलाया जा सकता है तो वह "**श्रुति–स्मृति–पुराणोक्त**" है। यह अध्यवत्–अप टू डेट–के बिल्कुल उलट है। यदि आप किसी यूरोपियन से पूछेंगे कि अमुक वस्तु, प्रथा, ग्रन्थ, ज्ञान या पद्धति सर्वोत्कृष्ट क्यों है, तो वह फौरन एक शब्द में उत्तर देगा—"क्यों कि वह अप टू डेट है।" इस के विपरीत कौन ज्ञान, यंत्र, प्रथा, ग्रंथ, प्रणाली, सुधार या परिवर्तन ग्राह्य या अग्राह्य, योग्य या अयोग्य है, इसका निर्णय करनेके लिए हम यह बिलकुल नहीं सोचते कि वर्तमान काल में वह उपयुक्त और प्रगतिकारक है या नहीं—पहले की अपेक्षा बढ़िया है या नहीं। हम सब से पहले जो बात देखते और जिस पर विचार करते है वह यह होती है कि क्या वह श्रुति-स्मृति-पुराणोक्त है या नहीं। हमारी संस्कृति का अत्यन्त लज्जास्पद भूषण, जिस पर हम मिथ्या गर्व करते हैं, यह है कि गत दस पाँच सहस्र वर्षों में सामाजिक, राजनीतिक या धार्मिक विधि-निषेध या कौशल में हम इंच भर भी आगे नहीं बढे। अमेरिका में जहाँ भी देखो यही विचार किया जा रहा है कि मै कल की अपेक्षा आज आगे बढ़ा हूँ कि नहीं; सदा कुछ न कुछ अधिक सीख कर अधिक सयाना हो रहा हूँ या नहीं; बाप से बेटा सवाया निकला है कि नहीं। इधर हमारी अवस्था यह है कि ताज़ा कल का तो कहना ही क्या, वैदिक कल की अपेक्षा भी आगे नहीं बढे। गत पाँच सहस्र वर्षों में अधिक सयाने नहीं बने। बस इसी पर अभिमान किया जा रहा है। हमें सदा यही भय लगा रहता है कि जो बात मेरे पिता को ज्ञात नहीं थी, जिसे वे नहीं समझ सके थे यदि वही मैं जान गया तो फिर मेरे पिता का पितृत्व ही क्या रहा। हमारी प्रतिज्ञा यह होती है कि हमारे पूर्वज त्रिकाल ज्ञानी थे। जिस बात का ज्ञान उन को नहीं था उस को मैं जानता हूँ, यह मानने या वैसा कुछ सीखने का अर्थ है उन की उस त्रिकालाबाधित ज्ञानमत्ता का अपमान। इस लिए हमारे हाथों वैसा पाप तो नहीं हो रहा, जो वे जानते न थे वह मैं जानने तो नहीं लग गया, बस यही हमें चिन्ता है। वैदिक काल में जिस बैल गाड़ी में बैठ कर हमारी संस्कृति चल रही थी उसी बैल-गाड़ी में बैठ कर इस आग-गाड़ी के युग में भी र र र र करती हुई चल रही है।

कोई काम अच्छा है या बुरा, हितकर है या अहितकर, इसका हम कुछ भी विचार नहीं करते। केवल "**एष धर्मः सनातनः**" (यह सनातन धर्म है) की राजमुद्रा लगने से ही हम उसे आचरणीय मानने लगते हैं। पुराने को छोड़ना नहीं और नये को अपमाना नहीं चाहिए, बस यही सरकारी छाप सब जगह लगा दी गई है। स्पर्श–बंदी, रोटी–बंदी, बेटी–बंदी और व्यवसाय–बंदी आदि जिन सामाजिक प्रथाओं ने आज हिन्दू समाज को कुचल दिया है, उन प्रथाओं का अन्त करने का प्रश्न उत्पन्न होते ही फिर हम पूंछने लगते हैं कि इन के विषय में शास्त्राज्ञा क्या है।

सोलहवाँ परिच्छेद

हिन्दुओं के लिए जीवन और मृत्यु का प्रश्न

वैज्ञानिकों ने सजीव प्रणी के जो लक्षण माने हैं उन में प्रधान लक्षण यह है कि सजीव जन्तु भोजन को पचा कर अपने शरीर का अंग बना लेता है और बाह्य सुख-दुःख का अनुभव करता है। जब किसी जन्तु में खाद्य को पचा कर हाड-मांस में परिणत करने की शक्ति नहीं रह जाती और वह बाह्य सुख-दुःख का अनुभव करने में असमर्थ हो जाता है तब हम उसे निर्जीव या मृत कहने लगते हैं। जो बात व्यक्ति की है वही समाज की है। जो समाज दूसरे लोगों को अपने में पचा नहीं सकता, जो पराए को अपना नहीं बना सकता, जो अपनी हानि-लाभ के प्रति उदासीन है, वह अधिक काल तक संसार में जीता नहीं रह सकता। उसका दिन पर दिन क्षीण होकर नष्ट हो जाना अवश्यम्भावी है। इस लक्षण की कसौटी पर जब हम हिन्दू समाज को परख कर देखते हैं तब हमें घोर निराशा होने लगती है। उन की संख्या दिन पर दिन कम होती जा रही है। इस का मुख्य कारण हिन्दुओं की वही अतिरिक्त पवित्रता की भावना है जिस का उल्लेख श्रीरामचन्द्र और सीता के संबंध में पहले हो चुका है। इस आवश्यकता से अधिक या फ़ालतू पवित्रता की भावना से समाज को होने वाली हानि को हिन्दू-स्मृतिकारों ने न समझा हो, और उसे समझ कर उस का प्रतिकार करने का यत्न न किया हो, सो बात नहीं। स्मृतियों में अनेक ऐसी व्यवस्थाएँ मिलती हैं जिन में बलात् भ्रष्ट की गई या उठा कर ले जाई गई स्त्री को विलकुल निर्दोष और पवित्र माना गया है। पराशर स्मृति कहती है—

अदुष्टा सन्तता धारा वातोद्धूताश्च रेणवः।
स्त्रियो वृद्धाश्च बालाश्च न दुष्यंति कदाचन्।

अर्थात्—बहता हुआ जल अपवित्र नहीं होता और न ही वायुसे उड़ती हुई धूलि के कण। स्त्रियां चाहे बूढ़ी हों और चाहे कुमारी, कभी भी भ्रष्ट नहीं होतीं।

फिर—यथाभूमिस्तथा नारी तस्मात्तां नतु दुषयेत्।
अर्थात्—पृथ्वी और नारी दोनों समान हैं। इस लिए उन को दूषित न करे।

अत्रिसंहिता (२०१-२०२) कहती है कि जिस स्त्री को किसी विधर्मी ने एक बार भ्रष्ट कर दिया हो वह प्रजापत्य व्रत से और ऋतुस्नान से शुद्ध हो जाती है। देवल स्मृति (४७) का मत है कि जिस स्त्री पर बलात्कार किया गया है यदि उसे गर्भ नहीं रहा तो वह तीन रात में शुद्ध हो जाती है। यदि विधर्मी से इच्छा पूर्वक या अनिच्छा पूर्वक गर्भ रह भी जाय तो भी कृच्छ सान्तपन और घृतसेक से स्त्री की शुद्धि हो जाती है (४८-४९)। अग्निपुराण का मत है कि ऋतुमति होते ही स्त्री शुद्ध हो जाती है (१६५। ६-७)

गौतम की पत्नि अहल्या की कथा कई जगहों मे कई तरह से लिखी मिलती है। पर जैसी स्वाभाविक वह महाभारत के शान्तिपर्व में दी गई है वैसी दूसरी जगह नहीं। शान्तिपर्व में गौतम के अभिशाप से अहल्या का पत्थर बन जाना और रामचन्द्र के चरण स्पर्श से उसका फिर जी उठना जैसी अप्राकृतिक बात कोई नही। वहाँ केवल इतना ही कहा है कि अपनी स्त्री अहल्या को व्यभिचार मे लिप्त देख गौतम ने अपने पुत्र चिरकारी को उसे मार डालने का आदेश किया। पर चिरकारी ने सोचा कि पति ही स्त्री का रक्षक होता है, इस लिए स्त्री के चरित्र के बिगड़ने का दायित्व भी पति का ही है। यह सोच उसने माता को मारा नहीं। इस के कुछ काल उपरान्त जब गौतम का क्रोध शान्त हुआ तो उन्हें अपने बिना विचारे दिए हुए आदेश पर पश्चात्ताप हुआ। पर जब वे अपने तप के स्थान से लौटे और देखा कि अहल्या जीती है तो उन्हें बहुत सन्तोष हुआ। चिरकारी का कथन है कि स्त्री अपराध नहीं करती, अपराध पुरुष करता है। यदि आज के हिन्दू होते तो अहल्या को और उस को स्वीकार करनेवाले उस के पति गौतम दोनों को वहिष्कृत कर देते। पर तत्कालीन हिन्दू-समाज ने वैसा कुछ नहीं किया। खेद है कि आज के हिन्दुओं ने उपरलिखित शास्त्राज्ञाओं पर आँखें बंद कर ली है, और गौतम के अहल्या-स्वीकार को भुला कर केवल राम का सीता-त्याग ही स्मरण रक्खा है।

बहुत-से पण्डितों का मत है कि वैदिक युग में, वरन् सूत्र युग में भी अमुक जाति के हाथ का खाना चाहिए और अमुक के हाथ का नहीं खाना चाहिए, ऐसा कोई प्रतिबंध न था (The Evolution of Castes, by Sham

Shastri, p. 6.) सब लोग एक दूसरे के हाथ का खाते-पीते थे। पर बाद को अतिरिक्त पवित्रता का झूठा भाव ज्यों ज्यों प्रचण्ड होता गया त्यों त्यों ब्याह–शादी और खान-पान के बंधन कडे होते गये। लड़कियों को पढ़ाने और युवावस्था तक अविवाहित रखने का निषेध कर दिया गया, ताकि कहीं पढ़–लिख कर युवावस्था में वे किसी दूसरी जाति के युवक से विवाह कर के वर्णसंकर सन्तान न उत्पन्न करने लगें। इस अतिरिक्त पवित्रता की रक्षा के लिए ब्याह–शादी और खान–पान पर जो कडे प्रतिबंध लगाए गये, उन का फल या कुफल क्या हुआ, इस का पता पाठकों को आगे दी हुई ऐतिहासिक और सच्ची घटनाओं से लग सकेगा।

१. बंगाल के टिपरा जिले में माहीपाल या मछली बेचनेवाले मुसलमान रहते हैं। पहले ये हिन्दू कैवर्त थे। कहते हैं, एक समय इन के निकटवर्ती एक गाँव में बहुत जोर का हैजा फैला। उस से वहाँ के सब लोग मर गये। केवल एक छोटा–सा बालक बच रहा। उस बालक पर एक कैवर्त स्त्री को दया आई। उस ने बालक को लेकर पाल लिया। वह गाँव मुसलमान जुलाहों का था। जब वह लड़का कुछ बड़ा हुआ तो चर्चा होनी लगी कि वह तो मुसलमान का लड़का है। इस लिए जिस स्त्री ने उसे पाला है और जो लोग उस स्त्री के साथ खान-पान करते रहे है, वे सब धर्मभ्रष्ट हैं, वे सब मुसलमान हैं। कैवर्तों ने समाज के नेताओं की बहुतेरी अनुनय-विनयकी, क्षमा माँगी, पर उन की एक न सुनी गई। उनको हिन्दू समाज से ढकेल कर बाहर निकाल दिया गया। वे कुछ दिन तक प्रतीक्षा में रहें कि अब भी उन्हें हिन्दू-समाज दुबारा अपनी गोद में ले लेगा। पर उन को हताश होना पड़ा। फलतः आज वे कट्टर मुसलमान हैं *

२. ढाका (बंगाल) में एक लंबा–ऊँचा, हृष्ट–पुष्ठ, बाँका ब्राह्मण कुमार नित्य ब्रह्मपुत्र नदी में स्नान करने जाया करता था। उसका मार्ग ढाका के नवाब के महल के निकट से होकर जाता था। नवाब की एकलौती बेटी झरोखे में से उसे नित्य जाते देखती थी। नवाब–नन्दिनी का ब्राह्मण–कुमार पर प्रेम हो गया। उसने अपने पिता से कहा। पिताने लड़के को बुला कर अपनी बेटी से विवाह करने को कहा। पर ब्राह्मण कुमार ने एक मुसलमान युवती के साथ

* "भारत वर्ष में जाति–भेद," पृष्ठ १८५

विवाह करने से इंकार कर दिया। इस पर नवाब ने अपनी बेटी को हिन्दू हो जाने की अनुमति दे दी। पर रूढ़िवादी पण्डितों ने कहा कि किसी मुस्लिम को हिन्दू बनाने की भी आज्ञा शास्त्र में नहीं। तब नवाब ने लड़के को मुसल्मान हो जाने के लिए कहा। पर उसने इंकार कर दिया, इस पर क्रोध में आकर नवाब ने लड़के का वध कर डालने की आज्ञा दे दी।

ब्राह्मण कुमार वधस्थल में गर्दन झुकाए खड़ा है। उस के मुण्ड को रुण्ड से अलग कर डालने के लिए वधिक की खड्ग उठ चुकी है। इतने में नवाब–नन्दिनी लड़खड़ाती हुई कुमार के सामने आकर खड़ी हो जाती है। वह वधिक से कहती है—इनका नहीं, मेरा वध करो; मैं अपने को प्रियतम के चरणों में बलिदान करूँगी। यह देख ब्राह्मण-कुमार का हृदय द्रवित हो जाता है। उसे मुसलमान नवाब की पुत्री और एक हिन्दू कन्या मे गुणोंको दृष्टि से कोई अन्तर नहीं दीखता। वह उसे हृदय से ग्रहण कर लेता है और विवाह करने के लिए सहमत हो जाता है। इस पर उसे छोड़ दिया जाता है।

युवक ने अब अपने पिता से और पण्डे-पुरोहितों से नवाब-नन्दिनी को हिन्दू बना लेने की प्रार्थना की। पर सब ने यह कह कर इंकार कर दिया कि धर्म-शास्त्र इसकी आज्ञा नहीं देता। तब वह युवक और युवती दोनों पुरी में पहुँचे। उन्होंने निश्चय किया कि अपने हृदयोंकी पवित्रता की साक्षी देकर हम जगन्नाथजी के चरणोंमें विवाह-बंधन में बँध जायँगे। पर पण्डों ने उन्हें जगन्नाथ के दर्शन न करने दिए। उन्हों ने लातें और घूँसे मार कर दोनों को निकाल दिया। इस पर युवक में प्रतिहिंसा की आग भड़क उठी। वह मुसलमान बन गया और उसने संपूर्ण बंग देश को मुसलमान बना डालने का बीड़ा उठाया। इतिहास में वह "**काला पहाड़**" के नाम से प्रसिद्ध है। (राष्ट्र–मीमांसा–लेखक सावकार, संपादक—नाथूराम शुक्ल, जबलपुर पृ. १११–११६)

उपर्युक्त "काले पहाड़" के सदृश पंजाब में भी एक "**काला मिहिर**" हो गया है। ब्राह्मणों ने उस के साथ अन्याय किया था। उसे वह जन्मभर न भूल सका और बदला लेता रहा। उस का हिन्दू नाम जयमल था। उस की कब्र के निकट ब्राह्मणों को जाने की आज्ञा नहीं। (Glossary, Punjab & N. W. P. Vol. III p. 425)

३. जिन को आज 'मलकाने' मुसलमान कहा जाता है, वे पहले हिन्दू राजपूत थे। वे हिन्दू धर्म की रक्षा के लिए मुसलमानों से लड़ रहे थे। इतने में किसी ने झूठी अफ़वाह उड़ादी कि शत्रु ने मलकानों के कुओं में गोमांस फेंक दिया है। बस इतने पर ही, बिना किसी प्रकार की जाँच-पड़ताल किए, उनको मुसलमान विघोषित कर दिया गया। मलकानों ने हिन्दू-समाज में रहने का बहुतेरा प्रयत्न किया। पर उन की एक न चली। अन्त में वे सब मुसलमान हो गये।

४. तेरहवीं शताब्दी की बात है, रतनजू नामक एक छोटी अवस्था का लड़का काश्मीर की उपत्यका में आया। किसी प्रकार राजा सहदेव की राजसभा में उस का प्रवेश हो गया और वह एक ऊँचे पद पर पहुँच गया। उसका अपना कोई धर्म और राष्ट्र न था। मौलाना मुहम्मद काज़म मुरादाबादी अपने इतिहास में लिखते है कि रतनजू हिन्दू धर्म पर बड़ा प्रेम रखता था, वह उसे ग्रहण करना चाहता था। पर हिन्दू उसे अपने समाज में लेने को सम्मत न थे। वह प्रति दिन एक पण्डित से गीता की कथा सुना करता था। एक दिन पण्डित ने गीता के १८ वें अध्याय के ४७ वें श्लोक की व्याख्या करते हुए कहा कि अपना धर्म चाहे विगुण भी हो तो भी उसे छोड़कर दूसरे का अच्छा धर्म ग्रहण करना भयावह है। इस पर रतनजू ने पूछा, क्या मै आपका धर्म ग्रहण नहीं कर सकता? पण्डित ने कहा—"बिलकुल नहीं"। इस उत्तर से हताश होकर रतनजू ने निश्चय किया कि कल सवेरे जो भी व्यक्ति मुझे सब से पहले दृष्टि-गोचर होगा, मै उसीका धर्म ग्रहण कर लूँगा। उस के इस निश्चय का ज्ञान बुलबुल शाह नामक एक मुसलमान फ़क़ीर को भी हो गया। दूसरे दिन सवेरे तड़के वह लोटा लिए रतनजू के महल के नीचे पहुँचा। उसे देख, रतनजू उसके निकट पहुँचा और बोला—

"क्या आप मुझे अपने धर्म में ले सकते है?"

"इस्लाम का द्वार मनुष्य-मात्र के लिए खुला है। एक प्रमुख राजाधिकारी मेरा धर्म-बंधु बनना चाहता है, इस से बढ़कर प्रसन्नता की बात मेरे लिए क्या हो सकती है? बुलबुल शाहने उत्तर दिया।

इस पर वह मुसलमान हो गया। और उसने इस्लाम का खूब प्रचार किया। उसके पुत्र शाह मीर ने राजसिंहासन पर अधिकार कर के राजा महदेव के पुत्र

की रानी कोना को बलात् घर में डाल लिया। पर रानीने पेटमें छुरा भोंक कर आत्महत्या करली। कहते है, जिन काश्मीरी पण्डितों ने मुसलमान बनने से इंकार किया उनको रतनजू और शाह मीर ने बोरियों में बंद कर के झेलम नदी में डुबा दिया। श्रीनगर में जहाँ ये लोग डुबाए गये थे, वह स्थान अब तक भी "**बट मज़ार**" के नाम से प्रसिद्ध है।

यह तो कुछ पुरानी बातें है। अब ताज़ा घटनाएँ सुनिए—

५. कुछ वर्ष की बात है, डसका (पंजाब) के निकटवर्ती एक गाँव का निवासी परशुराम नाम का एक ब्राह्मण मुसलमान हो गया। कुछ काल के उपरान्त लाहौर (वच्छो वाली) आर्य समाज में उसका मुंडन करके उसे पुनः हिन्दू बना लिया गया। उसकी दो कन्याएँ थीं। उनको कन्या-महा विद्यालय, जालन्धर में भरती करा दिया गया। परशुराम भी वैदिक पाठशाला, गुजराँवाला में शिक्षा पाने लगा। परन्तु उसकी स्त्री को संभालने का कोई प्रबंध न हो सका। उसके लिए किसी हिन्दू मुहल्ले में जगह न मिल सकी, जहाँ आर्य समाजी अथवा हिन्दू स्त्रियाँ उसका स्वागत करने वाली हों। उस को आर्य समाज मन्दिर के निकट एक मुस्लिम मुहल्ले में मकान ले दिया गया। परशुराम पाठशाला में पाँच छः घंटे पढ़ कर रात को घर आता था। परन्तु उसकी स्त्री की शिक्षा-दीक्षा का कोई प्रबंध न था। एक दिन उस की स्त्री गुजराँवाला-गुरुकुल में गई। वहाँ उसे काँसे के बर्तन में पानी न दिया गया, उस से दूराव किया गया। इस बीच में उसका लड़का मर गया। उस के साथ समवेदना प्रकट करने के लिए मुहल्ले की मुसलमान स्त्रियाँ तो आईं परन्तु कोई हिन्दू स्त्री उस के पास तक न फटकी। इस से उसे बहुत रंज हुआ। उन्हीं दिनों उस के बच्चा होनेवाला था। हिन्दू और आर्यसमाजी स्त्रियों का ऐसा रूखा व्यवहार देख कर वह पति से बोली—"तुम चाहे हिन्दू रहना चाहते हो तो बेशक रहो, परन्तु मैं तो हिन्दू रह कर अपनी मिट्टी ख़राब नहीं करना चाहती।" परशुराम ने विवश होकर अपनी दोनों लड़कियाँ जालंधर से वापस बुलालीं और अपने गाँव में जाकर पुनः मुसलमान हो गया।

६. शेख़ुपुरा ज़िले के अन्तर्गत शाहकोट नामक स्थान के निकट चक नम्बर १८२ नाम का एक छोटा सा गाँव है। वहाँ मुहम्मद लक्खा नाम का एक सम्पन्न मुसलमान रहता था। वह अपने मित्र आत्मा

सिंह के उपदेश और संगति से सिक्ख बन गया। उसके दो लड़कियाँ और एक लड़का था। जब विवाह का समय आया तब उस प्रदेश का कोई हिन्दू-सिख उसकी लड़कियों को लेने के लिए तैयार न हुआ। परन्तु आत्मा सिंह ने दोड़-धूप करके किसी दूसरे प्रदेश के दो हिन्दुओं के साथ उनका विवाह करा दिया। कुछ कालके उपरान्त उसका लड़का भी विवाह-योग्य हुआ। अब उसने आत्मासिंह से उसके विवाह के लिए कहा। परन्तु लाख यत्न करने पर भी उसके लड़के के लिए हिन्दू अथवा सिख लड़की न मिल सकी। आत्मासिंह के अपने परिवार मे विवाह-योग्य लड़कियाँ थीं। मुहम्मद लक्खा ने उस से कहा कि उन में से एक मेरे लड़के के लिए दे दो। परंतु आत्मासिंह को साहस न हुआ। वह घबरा गया। इस से मुहम्मद लक्खा के हृदय पर बड़ी चोट लगी। उसने अपनी दोनों लड़कियाँ सुसराल से बुलालीं और सारे का सारा परिवार पुनः मुसलमान हो गया। मुहम्मद लक्खा का वह पुत्र, जिसका नाम शाह मुहम्मद है, आज कल कहीं तहसीलदार है।

७. उज्जैन में गौस अली नाम के एक सज्जन थे। वे नज़रअली मिल्स में मैनेजर थे। जन्म से मुसलमान होने और इस्लामी नाम रखने पर भी वे विश्वास से आर्य समाजी थे। बीस-पच्चीस वर्ष तक वे अपने खर्च से आर्य समाज के वार्षिकोत्सव कराते रहे। अपनी लड़की, शान्ता, उन्हों ने कन्या-महाविद्यालय, जालन्धर में और लड़के शायद हिन्दू विश्वविद्यालय में पढ़ाए थे। इतने पक्के आर्य समाजी को जब सन्तान की ब्याद-शादी का अवसर आया तब हिन्दुओं में उन को न लड़कियॉ मिल सकीं और न लड़का। विवश होकर उन के दोनों लड़कों, ज़ाकर अली और अब्दुल्सत्तार, को मुसल्मानों में विवाह करना पड़ा। लड़की ने डाक्टर बन जाने पर भी शायद अभी तक विवाह नहीं किया है।

८. जिस वर्ष मौलाना मुहम्मद अली और शौकत अली की माता का देहान्त हुआ उसी वर्ष की बात है। श्री भाई परमानन्दजी मौलाना मुहम्मद अली के पास समवेदना प्रकट करने गये। उस समय बात-चीत में मौलाना मुहम्मद अलीने श्री भाईजी से कहा कि आप लोग व्यर्थ ही "शुद्धि" और "अछूतोद्धार" का रोडा अटकाकर इस्लाम की प्रगति को रोकना चाहते हैं। इस में आप को कभी सफलता नहीं हो सकती। भाईजी ने पूछा, क्यों? मौलानाने उत्तर

दिया—देखिए, यह भङ्गिन जा रही है। मैं इसे मुसलमान बनाकर आज ही बेगम मुहम्मद अली बना सकता हूँ। क्या आप में या मालवीयजी में यह साहस है ? मैं किसी भी हिन्दू को मुसलमान बना कर आज ही अपनी लड़की दे सकता हूँ। क्या कोई हिन्दू नेता ऐसा कर सकता है ? मैं आज 'शुद्ध' होता हूँ। क्या कोई मेरी स्थिति का हिन्दू नेता मेरे लड़के को लड़की देगा ? यदि नहीं तो फिर आप 'शुद्धि' और 'अछूतोद्धार' का ढोंग रच कर इस्लाम के मार्ग में रोड़ा क्यों अटका रहे है।

९. कुछ वर्ष की बात है, ज्वालापुर (हरिद्वार) में एक मौलवी साहब और आर्य समाज के उपदेशक श्री० मुरारीलालजी का वाद-विवाद हुआ था। मौलवी साहब इस्लाम को सर्वोत्तम धर्म बताते थे और मुरारीलालजी वैदिक धर्म को। मौलवी महाशय उपदेशक महाशय की युक्तियों की ताब न ला सके। जनता में उन पर ताली पिट गई। तब मौलवी महाशय ने अपना अमोघअस्त्र निकाला। उन्होंने कहा, पण्डित महाशय ! आप कहते है, वैदिक धर्म सच्चा है और मै कहता हूँ इस्लाम। लीजिए इस का निर्णय अभी हो जाता है। मैं वैदिक धर्म को अच्छा समझकर इस्लाम को छोड़ता हूँ। मेरे लड़कियाँ हैं और लड़का भी। मेरे लड़के को आप अपनी लड़की दीजिए और मेरी लड़कियों के लिए योग्य हिन्दू वर ढूँढ़ दीजिए। मै विवाह करने को तैयार हूँ। बोलिए, आप तैयार है ? उपदेशक महाशय पर वज्रपात हो गया। वे सन्न से रह गये। पाँच मिनट तक उन से कुछ भी उत्तर न बन पड़ा। तब मौलवी महाशय ने ललकार कर कहा—पण्डित महाशय ! आप क्या इसी बिरते पर वैदिक कर्म को सच्चा और सर्वोत्तम कह रहे थे ? आप आइए इस्लाम में। आप अपनी लड़की भी न दीजिए। मेरी लड़की आप के लड़के के लिए उपस्थित है। बस उपदेशक महाशय की सारी विजय एक क्षण में पराजय में परिणत हो गई।

१०. सुना है, नवाब छतारी ने भी किसी समय हिन्दू बनने की इच्छा प्रकट की थी। उन की शर्त यह थी कि मेरी लड़की और लड़के के विवाह के लिए मेरे जैसे ही किसी ताल्लुकेदारों का लड़का और लड़की मिलनी चाहिए। खेद है, हिन्दू उन की इच्छापूर्ति में असमर्थ रहे। नवाब छतारी के पूर्वज हिन्दू राजपूत थे। कहते हैं, इन के परिवार में जिस लड़की का पहले ही पहल

मुस्लिम–प्रथानुसार अपने निकट–संबंधी से विवाह हुआ था, उसने आत्मग्लानि के कारण आत्म–हत्या कर ली थी।

मौलाना मुहम्मद अली कुरेशी–शान्ति स्वरूपजी, अब्दुल गफूर–धर्मपाल बी० ए०, मौलाना गुलाम हैदर–महाशय सत्यदेवजी, मौलवी अब्दुल कबीर–महाशय धर्मवीरजी, असगारी बेगम–शान्ति देवी जी और पचासों शिक्षित 'शुद्ध' किये गये सज्जनों, यहां तक कि महर्षि दयानन्द के करकमलों द्वारा शुद्ध किये गये, देहरादून के श्री अलखधारी जी और उनकी सन्तान की कैसी दुर्गति हुई है और आर्य समाजियों ने इन मामलों में अपनी कैसी कायरता तथा निःसारता बताई है, यहां उसका उल्लेख व्यर्थ है। उस सब को सुविज्ञ पाठक भली भांति जाने है क्योंकि यह सब ताज़ा ही घटनायें है।

ऊपर लिखी घटनाओं को पढ़ कर किस हिन्दू के हृदय पर चोट न लगेगी और कौन हिन्दू न चाहेगा कि हमारे समाज में भी विधर्मियों को पचाने की शक्ति हो। परन्तु विचार-पूर्वक देखने से पता लगेगा कि हिन्दू चाहें भी तो वे विधर्मियों को आत्मसात् नहीं कर सकते। इस का कारण उन की सदोष समाज-रचना है। ऊँच–नीच मूलक वर्ण-व्यवस्था को मानते हुए हम किसी भी अहिन्दू को हिन्दू नहीं बना सकते। जाति-भेद के कारण प्रत्येक हिन्दू अपनी ही जाति के संकीर्ण क्षेत्र के भीतर ब्याह–शादी करता है। जो पठान, मुग़ल, अंगरेज, यहूदी, जापानी हिन्दू बनना चाहेगा हिन्दुओं की कोई भी जाति उसे अपने में लेने को तैयार न होगी। इस लिए वह हिन्दू–समाज में न रह सकेगा। भीलों, गोंडो, सन्थालों और कोलों को भारत में रहते सहस्त्रों वर्ष हो गये। परन्तु हिन्दू उन्हें अपने समाज का अंग न बना सके। वे आज तक भी जंगली अवस्था में ही है। जब तक ईसाई और मुसलमान इस देश में नहीं आए थे तब तक इन भील–गोंडों की ओर से हिन्दुओं को कोई भय नहीं था। परन्तु जब से इस्लाम और ईसाई मत ने अपना जाल इन लोगों में फैलाना आरम्भ किया है तब से वही भील–गोंड हिन्दुओं के लिए भय का कारण बनने लगे है। जो इस्लाम सब मोमिनों को भाई समझता है उसका सामना जन्ममूलक ऊंच–नीच वाला हिन्दू–समाज कैसे कर सकता है? नवीं शताब्दी तक काबुल में भी पालवंश के हिन्दू राजा राज्य करते थे। पर आज अमृतसर से आगे भी कोई हिन्दू मुश्किल से मिलेगा। हिन्दुओं के इस दिन पर

दिन घटने और पीछे हटने का प्रधान कारण इन की अतिरिक्त पावित्र्य-भावना-मूलक जात-पाँत ही है। हिन्दुस्थान और पाकिस्तान का बँटवारा हो जाने के बाद सहस्रों नहीं लाखों मुसलमान पूर्व पंजाब से पाकिस्तान जाना नहीं चाहते थे। वे रो रो कर कहते थे कि हमें हिन्दू बनालो; हम अपनी आवास-भूमि छोड़कर जाना नहीं चाहते; यहाँ की रूखी-सूखी रोटी हमें उस अज्ञात प्रदेश पाकिस्तान की चुपड़ी रोटी से कहीं अच्छी है; हमारे पूर्वज भी कभी ऐसे ही राज विप्लव के समय में मुसलमान हुए थे; अब इस राज विप्लव में हमें पुनः हिन्दू बनालो। पर हिन्दू उन्हें लेने को तैयार न हुए। अपनी असमर्थता को स्पष्ट स्वीकार न कर के हिन्दू बहाना यह करते थे कि ये मुसलमान शुद्ध हृदय से हिन्दू नहीं बन रहे है। मैंने इन भोले भाइयों को बहुतेरा समझाया कि पाकिस्तान मे हमारे जो हिन्दू मुसलमान बने हैं क्या वे शुद्ध हृदय से बने है; ये लोग इस समय चाहे शुद्ध हृदय से हिन्दू धर्म को ग्रहण न भी कर रहे हों, पर इन की अगली पीढ़ी तो बिलकुल भूल जायगी कि हमारे पूर्वज कभी मुसलमान थे।

किसी दूसरे मनुष्य को अपने समाज का अंग बनाने के लिए उस के साथ रोटी-बेटी-व्यवहार का होना आवश्यक है। जिसके साथ आप खान-पान और व्याह-शादी नहीं कर सकते वह कभी भी आपका रक्त-मांस नहीं बन सकता। यही कारण है कि हिन्दू बहु संख्यक दीखने पर भी अगणित अल्प मतों का असंगठित समूह हैं। केवल संख्या मे बहुत अधिक होने से कुछ लाभ नहीं। लाभ तभी है जब उस समाज में संगठन भी हो। बहुधा देखा जाता है कि थोडे से संगठित व्यक्ति भी भारी भारी असंगठित भीड़ों को मार कर भगा देते हैं। हिन्दुओं के संगठन में सब से बड़ी बाधा जात-पाँत ही है। इसके कारण हिन्दू-समाज नारङ्गी की भाँति ऊपर से एक दीखने पर भी भीतर से उसकी फाँकों के सदृश पृथक् पृथक् जातियाँ हैं। इन बहुसंख्यक जातियों और उपजातियों का आपस में खान-पान और व्याह-शादी की दृष्टि से उतना ही संबंध है जितना चिड़िया-घर के पशु-पक्षियों का आपस में होता है।

इस में संदेह नहीं कि हिन्दू धर्म किसी समय मिश्नरी धर्म रहा है, अर्थात् वह अहिन्दुओं को अपने में पचाता रहा है। वेसनगर में प्राप्त शिलालेख से पता लगता है कि तक्षशिला-वासी दियम के पुत्र ग्रीक राजा हेलियोडोरस ने भागवत

बन कर गरुड़ध्वज बनवाई थी। कनिष्क और हुविष्क आदि राजा विदेशी थे। वे सब हिन्दू समाज में घुलमिल गये थे। काडवाइसस शैव या परम माहेश्वर बन गया था। ये तरुष्कवंशीय राजा थे। इन्हों ने शुषूल आदि देशों में मठ-चैत्य आदि बनवाए थे (राज–तरङ्गिणी १।१७०) श्रीनगर के राजा मिहिरकुल ने मिहिरेश्वर महादेव की स्थापना की थी। नहपान का जमाई उषवदात दूसरी शताब्दी के आरम्भ में बड़ा धर्मी राजा था। इस प्रकार शक, हूण, यवन, कोची, मीना आदि लोगों के दल भारत में आकर हिन्दू बनते रहे है। राजपूत और जाट लोग भी बाहर से ही आए हुए हैं। परन्तु इस संबंध में एक बात स्मरण रखनी होगी। ये विदेशी दल के दल आए और हिन्दू-संस्कृति को ग्रहण कर अलग अलग जातियों के रूप में रहने लगे। इन को यहाँ के पुराने अधिवासियों के साथ खान-पान और ब्याह–शादी आदि सामाजिक संबंध स्थापित करने की आवश्यकता नहीं हुई। वे आपस में ही बेटी–व्यवहार कर लेते थे। उन के बाद जब थोडे थोडे लोग—अकेले दुकेले व्यक्ति–हिन्दू-समाज में सम्मिलित होने के इच्छुक हुए तो हिन्दू–समाज रूपी विशाल भवन की छोटी–छोटी कोठरियों—जातियों–उपजातियों—में उन को कोई स्थान नहीं मिल सका। सब कहीं "प्रवेश वर्जित" का ही साइन बोर्ड लगा मिला। इस लिए बाहर से आनेवाले लोगों के लिए हिन्दू-समाज का द्वार बंद हो गया। हाँ, अतिरिक्त पवित्रता की भावना ने हिन्दू–समाज रूपी कुण्ड में जो छेद कर रक्खा है उस में से टपक टपक कर हिन्दू नर–नारियाँ दूसरे समाजों में बराबर जा रही हैं। आज हिन्दुस्थान और पाकिस्तान में जो दस करोड़ के लगभग मुसलमान हैं वे सब अरब, ईरान या तुरकिस्तान से आए हुए मुसलमानों की सन्तान नहीं। उन में १०० पीछे ९५ से भी अधिक हिन्दुओं से मुसलमान बने नर–नारियों के ही वंशज हैं। मलकाने राजपूत, मूलेजाट, मेव, बोहरी, मेमन, खोजिए, इत्यादि लोग पहले सब हिन्दू थे।

जबतक हिन्दू जाति–भेद को नहीं छोड़ते तबतक न केवल यही कि उनका आपस में संगठन नहीं होगा, वरन् हिन्दू–मुस्लिम फ़िसाद भी कभी बंद न होंगे। इसका एक विशेष कारण है। समाज–शास्त्र का एक नियम है कि एक देश में रहनेवाले दो मनुष्य–समूह यदि आपस में खान–पान और ब्याह–शादी करने से इंकार करते हैं तो उन में एक दूसरे को ऊँच नीज समझने का

दूषित भाव अवश्य उत्पन्न हो जाता है। उसका अनिवार्य परिणाण परस्पर का विद्वेष, ईर्ष्या और वैमनस्य होता है। जिन लोगों में आपस में खान-पान और ब्याह-शादी होती है उनमें यदि लड़ाई झगड़ा होता है तो वह कुछ काल के उपरान्त शान्त हो जाता है। भाई-भाई, पति-पत्नी, हिन्दू-सिख, अँगरेज़-जर्मन के झगडे और फिसाद वर्ष, दो वर्ष, दस वर्ष रह कर अन्त में शान्त हो जाते है। कारण यह कि उन को आपस में जोड़नेवाली बातें उन को लड़ाने वाली बातों से अधिक होती है। उन का परस्पर रोटी-बेटी-व्यवहार होता है। आज के अँगरेजों के पूर्वज इँग्लेण्ड के "गुलाबों के युद्ध" और क्रामवेल के युद्ध में एक या दूसरे पक्ष की ओर से आपस में लडे थे। पर एक पक्ष की ओर से लड़ने वालों के वंशजों का दूसरे पक्ष की ओर से लड़नेवालों के वंशजों के प्रति आज कोई विद्वेष-भाव नहीं है। वे उस लड़ई-झगडे को भूल गये है। परन्तु हमारे यहाँ भारत में आज के शूद्र, आज के ब्राह्मणों को क्षमा करने को तैयार नहीं, क्यों कि इन ब्राह्मणों के पूर्वजों ने इन शूद्रों के पूर्वजों पर नीचता या शूद्रता का कलंक लगाया था। हिन्दू राजपूतों ने मुसलमान राजपूतों के पूर्वजों को पुनः अपने में मिलाने से इन्कार करके उनका जो तिरस्कार किया था उसे वे आज तक नहीं भूल सके और न भूलेंगे ही। इसी लिए हिंदू-मुसलमान का फिसाद अनन्त काल तक नहीं बंद हो सकता। जो हिंदू भय, लालच या धोखे से पतित होकर मुसलमान बने थे उन्हों ने उस समय बहुतेरा यत्न किया कि वे फिर हिन्दू बना लिए जायँ। परन्तु हिन्दुओं ने न तो उनके रोटी-बेटी-संबंध द्वारा अपने में पचाना स्वीकार किया और न उनको नीच और अपवित्र समझकर उनका तिरस्कार करना ही छोड़ा। ऐसी दशामें उन मुसलमानों ने देखा कि यदि हमें भारत में स्वाभिमान-पूर्वक रहना है तो उसके लिए एक ही उपाय है। वह यह कि जैसे भी हो, हम अपनी संख्या को उतना बढ़ा लें कि फिर ये बहुसंख्या वाले हिन्दू हमें कुचल न सकें, हमारे साथ अछूतों का जैसा दुर्व्यवहार न कर सकें। उन्हें भय बना रहता है कि यदि हम अल्प संख्या में रहे तो जो ब्राह्मण हिन्दू शूद्र के साथ भी समता और बंधुता का व्यवहार करने को तैयार नहीं वह हम विधर्मियों के साथ समता और बंधुता का व्यवहार कैसे कर सकता है। इसी लिए प्रत्येक मुसलमान-स्त्री-पुरुष, बालवृद्ध-के हृदयमें इस्लाम को बढ़ाने की-हिन्दुओं

को मुसलमान बनाने की–चिन्ता सदा बनी रहती है। किसी गैर–मुस्लिम को मुस्लिम बनाना प्रत्येक मुसलमान एक पुण्यकर्म समझता है। इसी लिए वह लड़की देकर और लड़की लेकर, दोनों प्रकार से, इस्लाम का प्रचार करने में संकोच नहीं करता। कारण यह कि इस में उस की आत्म रक्षा है। मसजिद के सामने बाजा बजाने, हिन्दी भाषा और वन्दे मातरम् गीत का विरोध करने और बकराईद पर गौ का जुलूस निकालने का वह जो हठ करता है वह तो अपने भीतरी रोष को प्रकट करने का उसका केवल एक बहाना है। यदि हिन्दू और मुसलमान के सामाजिक संबंध अच्छे होते तो मुसलमान कभी भी इस प्रकार हिन्दूओं को चिढ़ाने की कुचेष्टा न करते। अब देश का विभाजन हो चुका है। इस से चार करोड़ के लगभग मुसलमान भारत में रह गये है। निस्सन्देह वे कुछ काल तक हिन्दुओं से दबकर चुप रहेंगे। पर विश्वास रखिए, यदि हिन्दुओं ने जाति–भेद को न छोड़ा और मुसलमानों से पूर्ववत् घृणा जारी रखी तो कुछ ही काल में हिन्दुस्थान को भी पुनः बाँटने की नौबत आ जायगी और इस देश में कभी शान्ति न रह सकेगी। स्वदेश की रक्षा और शान्ति के लिए यह आवश्यक है कि हिन्दू जाति–भेद को छोड़ दें, ताकि जो मुसलमान और ईसाई स्वेच्छानुसार इन में मिलना चाहें वे सरलतापूर्वक मिल सकें, और विभिन्न धर्म–विश्वास रखने वाले लोग भी आपस में प्रेम से रह सकें।

हिन्दुओं के धर्म में त्रुटि नहीं। इन का ब्रह्मवाद, इन का तत्त्वज्ञान, इन की संस्कृति आज भी संसार में अनुपम है। वह सदा संसार के बडे बडे विचारकों को आकर्षित करती रही है।

मुग़ल–काल खण्ड में हिन्दू धर्म ने बैरम खाँ के पुत्र रहीम खाँ खान खानाँ, रुस्तमखाँ उपनाम रसखान और ताज जैसे स्त्री-पुरुषों को आकर्षित किया था। इस का प्रमाण उन की कविता में मिलता है। रहीम कहता है—

कमला थिर न रहीम कहिं, यह जानत सब कोय।
पुरुष पुरातन की वधू, क्यों न चंचला होय॥
गहि सरनागति राम की भवसागर की नाव।
रहिमन जगत उधार कर और न कछू उपाव॥
धूलि धरत गज सीस पर कहु रहीम केहि काज?
जिस रज मुनि-पत्नी तरी सो ढूँढ़त गजराज॥

रसखान कृष्ण-भक्ति में लीन हो बोल उठा था—

या लकुटि अरु कामरिया पर,
राज तिहुं पुर को तजि डारौं।
आठहुँ सिद्धि नवों निधि को,
सुख नन्द की गाय चराय बिसारों।
रसखान कभौं इन आँखन ते,
ब्रज के बन बाग तड़ाग निहारौं।
कोटिन हूँ कल धौत के धाम,
करील के कुंजन ऊपर वारौं।

फिर परमेश्वर से प्रार्थना करता हुआ वह कहता है कि मरने के बाद मेरा दूसरा जन्म हो तो इस प्रकार हो—

मानुस हौं तो वही रसखान,
बसौं ब्रज-गोकुल-गाँवके ग्वारन।
जो पशु हौं तो कहा बस मेरो,
चरौं नित नन्द की धेनु मझारन।
पाहन हौं तो वही गिरि को,
जो कियो ब्रज—छत्र पुरन्दर कारन।
जो खग हौं तो बसेरौ करौं,
वही कालिन्दी कूल कंदम्ब की डारन।

फिर ताज तो इन दोनों से बढ़ गई है। वह कहती है—

सुनो दिल जानी मेरे दिल की कहानी तुम,
हुस्न ही बिकानी बदनामी भी सहूँगी मैं।
देव पूजा ठानी औ नमाज़ हू भुलानी,
तजे कलमा कुरान साड़े गुननि गहूँगी मैं।
साँवरा सलोना सरताज सर कुल्लेदार,
तेरे नेह दाग में निदाघ ह्वै रहूँगी मैं।
नन्द के कुमार कुरबान ताणी सूरत पै,
हौं तो मुग़लानी हिन्दुआनी ह्वै रहूँगी मैं।

कलमा कुरान छोड़ आई हूँ तिहारे पास,
भाव में भजन में दिलको लगाऊँगी।
पाऊँगी विनोद भर के सुबह शाम,
गाऊँगी तिहारे गीत नेक न लजाऊँगी।
खाऊँगी प्रसाद प्रभु-मंदिर में जाय जाय,
माथे पै तिहारी पद-रज को चढ़ाऊँगी।
आशिक दीवानी बन पद पूजि-पूजि,
श्याम की तात मैं राधिका-सी बन जाऊँगी।

इन मुसलमानों की ऐसी भक्ति को देखकर भारतेन्दू कवि हरिश्चन्द्र ने ठीक ही कहा है—

इन मुसलमान हरिजनन पर कोटिन हिन्दू वारिए।

स्वयं सम्राट् अकबर हिन्दू बनना चाहता था। उसने जहाँ अपना और अपने पुत्र का विवाह हिन्दू राजपूत स्त्रियों से किया था वहाँ राजपूत सरदारों का मुसलमान राज कुमारियों के साथ विवाह कराने का भी यत्न किया था। राय मल्लिनाथ के लड़के कुँवर जगमल का विवाह सिंध की नवाब-नन्दिनी गीन्दोली से कराया गया था। अकबर ने अपने पुत्र सलीम को हिन्दी सिखलाई थी। अपने पोते खुसरो के छः वर्ष की आयु में भदन्त भट्टाचार्य के पास हिन्दी सीखने भेजा था। दारा ने संकृत उपनिषदों का अनुवाद कराया था। इस से बढ़कर वे हिन्दू-धर्म पर और क्या आस्था दिखला सकते थे? पर खेद है, जात-पात के रोगी हिन्दू उन को पचाने में असमर्थ रहे। वैष्णव लोगों के प्रचार से बहुत से मुसलमान धर्म-विश्वास की दृष्टि से तो निस्सन्देह हिन्दू बन गये, पर रोटी-बेटी-व्यवहार की दृष्टि से वे अहिन्दू ही रहे! फलतः वैष्णवों का सारा प्रचार निष्फल रहा।

हिन्दुओं का धर्म जितना पवित्र है, इन की समाज-रचना उतनी ही दूषित एवं गंदी है। वह एक प्रकार से हमारे पवित्र धर्मरूपी स्वादिष्ट खीर पर राख बखेर रखी है। हिन्दू शारीरिक, बौद्धिक और आर्थिक रूप से भी किसी से कम नहीं। इन में बड़े बड़े वैज्ञानिक, दार्शनिक, व्यापारी और शूर उत्पन्न होते हैं। इन सब गुणों के रहते हुए भी वे पनप नहीं पाते, इनका संगठन नहीं हो पाता। इसका कारण इन की जाति-भेद-मूलक सामाजिक व्यवस्था ही है। इस्लाम में

जहाँ सैकड़ों त्रुटियाँ हैं वहाँ सामाजिक समता एवं बंधुता का एक ऐसा बहुमूल्य गुण है जो उन सब त्रुटियों को दबा कर इस्लाम को संसार में बराबर फैलाता जा रहा है। इस के विपरीत हिन्दुओं में सैकड़ों देवदुर्लभ सद्गुण रहते हुये भी जाति-भेद का एक ऐसा घातक दुर्गुण है जो गत १३०० वर्ष से इसे दिन पर दिन डुबाता जा रहा है।

गुरु गोविंद सिंह ने हिन्दुओं की शूद्र जातियों में अपूर्व वीरता उत्पन्न कर दी थी। इन की कायरता को दूर करने के लिए एक जगह उन्हों ने अपने शिष्यों या सिक्खों को संबोधित करके कहा है—

यवनन के बाहु सहस्र नहीं।
मुख चार व नैन हज़ार नहीं॥
नहिं सार के उनके शरीर बने।
बनी काठ की तेरी तलवार नहीं॥
बल में वे अधिक नहीं तुम से।
वे सिंह नहीं तुम स्यार नहीं।
तुम सिंह हो सद्गुरु नानक के।
क्यों तुर्क को देत पछार नहीं॥

निस्संदेह हिन्दुओं और मुसलमानों में उपर्युक्त बातों में कोई अन्तर नहीं। पर एक बात में भारी अन्तर था। हिन्दू और सिख जात-पाँत के घातक रोग में ग्रस्त थे और तुर्क इस रोग से मुक्त। इसी से हिन्दुओं का पग आज तक पीछे और पीछे ही हटता आ रहा है।

जो लोग कहते हैं कि हिन्दुओं को संगठित करके इस लिए मज़बूत बनाना चाहिए कि जिस से फिर मुसलमान उपद्रव न कर सकें उन्हें सोचना चाहिए कि शिवाजी, प्रताप और गोविन्द सिंह से बढ़कर मुसलमानों का वहिष्कार करना उनके लिए संभव नहीं। सर विलियम हण्टर लिखते हैं कि अँगरेज़ों ने भारत का राज्य मुग़लों से नहीं वरन् दो हिन्दू-संघों—सिक्खों और मराठों—से लिया था। पंजाब सिक्खों के पास था और हिन्दुस्थान मराठों के पास। इस प्रकार यद्यपि हिन्दुओं ने राजनीतिक रूप से इस्लाम को परास्त कर दिया था, तो भी सामाजिक रूप से इस्लाम बराबर बढ़ता रहा। वह सिक्खों के राज्य में भी बढ़ा और मराठों के राज्य में भी। इस समय भी

हैदराबाद राज्य में मुसलमान शासक के अधीन इस्लाम बढ़ रहा है और नेपाल में हिन्दू राजा के अधीन भी। कारण यह है कि इस्लाम की समाज-रचना समता और बंधुता-मूलक होने से ऊँच नीच मूलक हिन्दू समाज रचना से श्रेष्ठ और सुदृढ़ है। हिन्दुओं को सुदृढ़ और संगठित बनाने के इच्छुक सज्जन अपने समाज के इस दोष को दूर करने का यत्न नहीं करते। वे यह नहीं देखते कि जेस हिन्दुत्व की रक्षा की वे दुहाई देते है उस के प्रति द्विज को तो प्रेम हो सकता है, पर शूद्र और अछूत उसकी रक्षा के लिए प्राण देने को क्यों उद्यत हों? वे तो समझते है कि चाहे किसी का राज्य हो हम तो सदा शूद्र ही बने रहेगे, हम तो कभी द्विज न बन सकेंगे। यदि हिन्दू अपना वर्ण-भेद मिटा दें, तो जहाँ उनका अपना परस्पर संगठन सुदृढ़ हो जाय, वहाँ मुसलमानों का वैर-विरोध भी शान्त हो जाय। लड्का में बहुत से बौद्ध ईसाई हो गये थे। परन्तु बौद्धों ने उन का सामाजिक वहिष्कार नहीं किया। वे उन के साथ पूर्ववत खान-पान और ब्याह-शादी करते रहे। इसका परिणाम यह हुआ कि कुछ ही वर्षों में बे सब पुनः बौद्ध हो गये। यदि हिन्दू भी मुसलमानों से भेदभाव छोड़कर उनसे घनिष्ठता बढ़ाएँ तो दोनों का परस्पर प्रेम बढ़ ककता है।

परन्तु जाति-भेद को रखते हुए हिन्दुओं का मुसलमानों से खान-पान करना न संभव है और न हितकर ही। कारण यह कि हिन्दुओं को डर लगता है कि कहीं हम मुसलमान न हो जायँ, कहीं मुसलमान हमारी लड़कियाँ न ले जायँ। यदि जाति-भेद न हो तो जहाँ मुसलमान हिन्दुओं को पचा जाते हैं वहाँ हिन्दू भी मुसलमानों को आत्मसात् कर सकते हैं। इस से दोनों दलों का परस्पर संदेह और भय दूर हो जाय। मुसलमान यदि एक हिन्दू लड़की को ले जायँगे तो हिन्दू दस मुस्लिम लड़कियों को पचा लेंगे। आपस में ब्याह-शादी भी होने लगेगी। इस प्रकार धर्म एक व्यक्तिगत वस्तु हो जायगी। उसका समाज के साथ कोई संबंध न होगा। साकारवादी, निराकारवादी, एक ईश्वरवादी, बहुदेववादी, शैव, शाक्त, वैष्णव, ब्राह्म, देव समाजी आदि की भाँति हज़रत मुहम्मद को मानने और रोज़ा-नमाज़ के पाबंद लोग भी मुहम्मदी हिन्दू रहेंगे। इस से दोनों सम्प्रदाय भाई-भाई की भाँति आपस में मिल जायँगे। यदि हिन्दुओं में कोई अच्छी और सुन्दर बात होगी तो मुसलमानों को उसे ग्रहण

करने में तनिक भी संकोच न होगा। इसी प्रकार मुसलमानों की समता और बंधुता हिन्दुओं को लेने में लाभ ही रहेगा। इस समय हिन्दुओं का अपना दुर्व्यवहार ही दूसरों को उन से मिलने नहीं देता और इस दुर्व्यवहार का कारण उन का जाति-भेद है।

सन् १९३२ की बात है। लङ्का-निवासी बौद्ध हिन्दू श्री० ई० कॉन्दी नामक एक इक्कीस वर्षीय नवयुवक साईकिल पर संसार-पर्यटन के लिए निकला। भारत की सीमा के साथ साथ एशिया के बहुत से देशों की यात्रा के बाद जब वह भारत आया तो उसे बड़ा कष्ट अनुभव हुआ। उसने शिकायत करते हुए बताया कि मैं एशिया के इतने देशों में घूमा हूँ, पर मुझ से किसी ने नहीं पूछा—तेरी जात क्या है? मेरा केवल इतना कहना कि मैं एक पर्यटक हूँ, दूसरे देशों के विधर्मी लोगों को मुझे अपने यहाँ ठहराने और सहायता देने के लिए पर्याप्त होता था। पर हिन्दुओं के हिंदुस्थान में घुसते ही सब से पहला प्रश्न यह होता था—"तेरी जाति क्या है?" इस से मुझे बहुत कष्ट होने लगा। मनुष्य को जिस वस्तु की आवश्यकता है, उस का पता लेकर उसको सहायता और शरण देने के स्थानमें "तेरी जाति क्या है?" यह मालूम करके किसी से घृणा और किसी पर प्रेम करना, यह हिन्दुओं का बहुत बड़ा दुर्गुण है। एक ब्राह्मणों के सिवा शेष सब लोगों का थोडा बहुत अपमान इस में अवश्य होता है। कई स्थानों में इस जात-पाँत के प्रताप से मुझे पीने के लिए पानी तक नहीं मिला। मुझे डबरों और जोहड़ों के ऐसे गंदे और सडे हुए पानी से प्यास बुझानी पड़ी है जिसे पशु भी न पी सकते थे। भारत में ब्राह्मण जाति को शेष सब जातियाँ श्रेष्ठ मानती हैं, इस बात को दृष्टि में रखकर अन्त में मैंने बाज़ार से डेढ़ दमड़ी का जनेऊ मोल लिया और उसे अपने गले में ऐसे ढंग से लटकाया कि वह आसानी से अपने आप लोगों को दिखाई देता रहे। इस उपाय से मुझे अपमान और त्रास से छुटकारा मिला।

एक मनुष्य ने कॉंदी को समझाया कि गले में जनेऊ डाल रक्खो और जब कोई जाति पूछे तो बडे गर्व से कह दो—"मलयाली ब्राह्मण हूँ।" पहले तो यह बात उसे अच्छी नहीं लगी। वह कहने लगा, मैं झूठ नहीं बोल सकता।

पर कुछ दिन बाद पुनः विचार करने और दो तीन बार सडे हुए जोहड़ का पानी पीने से उस ने अपना सत्याग्रह छोड़कर मित्र का परामर्श मान लिया। फिर भी वह यथा संभव झूठ बोलने से बचता था। जब कोई उस से उस की जाति पूछता तो वह बड़ी अकड़ से अपना सफेद जनेऊ दिखा देता। पर यदि कोई अधिक खोजी मनुष्य उस के ब्राह्मण होने का विश्वास न करता, क्योंकि आज कल सभी शूद्र-अति शूद्र जनेऊ पहन लेते हैं, तब वह काँदी एक विचित्र ढंग से हिन्दी-मिश्रित संस्कृत में ये दो शब्द बोलता—"मलयाली ब्राह्मण" उस के ब्राह्मण होने में किसी को संदेह न हो, इस विचार से वह यथा संभव ब्राह्मणों के यहाँ ही उतरता। कारण यह कि वहाँ उसे बना बनाया भोजन मिल जाता। कायस्थ आदि ब्राह्मणेतरों के घर उतरने से उसे अपने हाथ से रसोई बनानी पड़ती थी। ब्राह्मण की जाति को भ्रष्ट करने का पाप कायस्थ आदि छोटी जाति के हिन्दू अपने सिर क्यों लेंगे? *

कई हिन्दू कहा करते हैं कि मुसल्मान गो मांस खाते हैं, इस लिए उन के साथ हिन्दुओंका मिलना कठिन है। पर बहुत से हिन्दू सुअर भी तो खाते है। हमारा विश्वास है, यदि दोनों का आपस में मेल-मिलाप बढ़ जाय तो निश्चय ही मुसलमान गो मांस खाना छोड़ देंगे। इस समय वे चिढ़कर कुरान की बात सुनने को भी तैयार नहीं। कुरान की प्रतिज्ञा नहीं कि वह सारे संसार के लिए है। कुरान का अरबी रीति-रिवाज और कावा की पूजा केवल अरब निवासियों के लिए है। कुरान स्पष्ट शब्दों में कहता है कि अरबी रसूल और अरबी कुरान अरब के लिए आया है। प्रत्येक देश और जाति का अधिकार है कि उस को उपदेश और पुस्तक उस की अपनी भाषा में आए—

"**कोई जाति नहीं, कोई देश नहीं जहाँ कि हमने नबी उस देश या जाति की बोली के साथ नहीं भेजा**—(कुरान)

कुरान किसी देश या जाति में फूट नहीं डलवाना चाहता। रसूले अरबी हज़रत मुहम्मद साहब अरब को एकता के सूत्र में पिरोने आए थे। उन्होंने

* जनवरी १९३३ की "क्रान्ति" में उद्घृत मराठी "समता" बंबई से।

अपने देश को संगठित करने के लिए योरुशलम के काबे को छोड़कर मक्का को काबा बनाया था। वे कैसे पसंद कर सकते हैं कि भारत के अधिवासी भारत के काबे का परित्याग और अरब के काबे को स्वीकार करके आपस में सिर-फूटौवल करें ? हिन्दुओं की जात-पाँत ने ही मुसलमानों को भारत की संस्कृत और हिन्दी भाषा को अपनाने से रोक रक्खा है।

जो लोग जात-पाँत को रखते हुए अछूतपन को दूर करना चाहते हैं वे रोग के मूल को बनाए रखकर उसके बाह्य लक्षणों को छिपाना चाहते हैं। देखिए, महात्मा गांधी द्वारा संस्थापित हरिजन सेवक संघ, दिल्ली के प्रधान मंत्री बापा अमृतलाल ठक्कर लिखते हैं—" अस्पृश्यता का जो स्वरूप इस समय भारत में प्रचलित है उसका संबंध यद्यपि मैला काम करने और मैला भोजन खाने के साथ है, परन्तु ये बातें उसका आधार नहीं। संस्था के रूप में अछूतपन जाति-भेद का ही युक्ति-संगत परिणाम है। यह जाति-भेद हिन्दू समाज-रचना का एक अंग प्रतीत होता है। इसलिए वर्तमान जाति-भेद को मिटाने या रूपान्तरित करने से ही अस्पृश्यता पूर्ण रूप से मिट सकती है। परन्तु हमारा संघ इन दोनों कामों में से एक भी नहीं कर रहा, क्योंकि हमारा लक्ष्य अधिक सीमित है।" (हरिजन सेवक संघ-दिल्ली, की रीपोर्ट १९३२-१९३३, पृष्ठ ११)

जाति-भेद एक क्रमबद्ध अछूतपन है। इस के कारण सब हिन्दू एक दूसरे के लिए अछूत हैं। अन्तर केवल अंश का है। कोई थोड़ा अछूत है और कोई बहुत। किसी के यहाँ आप भात खा सकते हैं पर बेटी-व्यवहार नहीं कर सकते। किसी के यहाँ आप भात नहीं पक्की रसोई खा सकते हैं। इस के भी आगे, किसी का खाना तो दूर उसे आप छू भी नहीं सकते। जिन लोगों को आज अछूत कहा जाता है, वे जात-पाँत रूपी कोढ़ से पीड़ित हिन्दू-समाज का वह अंतिम गलित अंग हैं जहाँ यह कोढ़ नासूर के रूप में बह रहा है, अन्यथा इस कोढ़ का विष तो सारे समाज में व्याप्त है।

जाति-भेद ने ब्राह्मण को श्रेष्ठ और शूद्र को नीच ठहरा कर मानवता का दिवाला निकाल दिया है। इस से एक ओर ब्राह्मण तो " भूदेव " बन गया है और परमेश्वर के समान पूजा जाता है, दूसरी ओर शूद्र इतना गिर गया है

कि उस में आत्म प्रतिष्ठा का भाव ही नहीं रहा। आगे कुछ घटनाएँ दी जाती हैं जिन से यह बात स्पष्ट हो जायगी।

शूद्र लोग द्विजों की दीर्घकालीन दासता के कारण इतने गिर गये हैं कि यदि द्विज उन की स्त्रियों के साथ व्यभिचार करें तो वे क्रुद्ध होने के स्थान में इसे अपना सौभाग्य समझते हैं। अतएव, मलाबार में यदि नम्बूद्री ब्राह्मण नायर (शूद्र) जाति की स्त्रियों को रखेल बनाकर रखें तो नायर लोग इसे बड़ी प्रतिष्ठा की बात समझते हैं। वहाँ नम्बूद्री ब्राह्मण नायर लड़की से नियमपूर्वक विवाह नहीं करता। वह अपने घर रहता है और नायर लड़की अपने मायके में रहती है। नम्बूद्री रात को उस के घर जाता है और सवेरे चला आता है। इस प्रकार के विवाह को "संबंधम्" कहते हैं। ब्राह्मण नायर लड़की के घर खान-पान बिलकुल नहीं करता। कहते हैं, एक नम्बूद्री ब्राह्मण को रात को प्यास लगी। पर वह नायर लड़की के किसी बर्तन में पानी नहीं पी सकता था। अब करता तो क्या करता। उसे शास्त्राज्ञा का स्मरण हो आया। शास्त्र कहता है 'रत्न एवं स्त्री-मुख कभी अपवित्र नहीं होता।' इस लिए उसने नायर लड़की से कहा कि तू अपने मुख में पानी भर कर मेरे मुँह में डाल दे। स्त्री ने वैसा ही किया। इस से ब्राह्मण की प्यास भी बुझ गई और धर्म भी बचा रहा।

मलाबार की उन्नितिरी जाति में प्रथा है कि यदि किसी लड़की को नम्बूद्री ब्राह्मण अपनी स्त्री न बनाए तो उस का विवाह सीधे उन्नितिरी जाति के युवक से नहीं हो सकता। उसे पहले अपने से ऊपर की तिरुविप्पाड़ जाति के किसी पुरुष से चार दिन के लिए विवाह करना होता है। विवाह सयानी लड़कियों का होता है और वे चार दिन-रात एक कोठरी में पुरुष के साथ रहती हैं, नंगी हो-कर तेल की मालिश करती हैं। फिर तिरुविप्पाड़ भेंट-पूजा लेकर चला जाता है। अब उस कन्या का विवाह किसी उन्नितिरी से किया जा सकता है।

ट्रावंकोर का राजा शूद्र जाति का है। पर उसे क्षत्रिय बनाने के लिये एक सोने की गाय बनाई जाती है। उसके पेट में राजा को रखा जाता है, तब वह गाय के गर्भ से जन्म लेकर क्षत्रिय हो जाता है। बाद को वह सोने की गाय ब्राह्मणों को दान करदी जाती है।

महाराष्ट्र के पश्चिम भाग में एक हिन्दू स्वतंत्र राज्य की स्थापना करने के बाद जब शिवाजी ने अपना राज्यभिषेक करना चाहा तो ब्राह्मणों ने वैदिक रीति से उन का संस्कार कराने से इंकार कर दिया। कारण यह कि वे शिवाजी को शूद्र समझते थे। उनका मत था कि कलियुग में कोई क्षत्रिय है ही नहीं। इस विषय में सब से अधिक विरोध शिवाजी के प्रधान मंत्री मोरोपन्त पिङ्गले नाम से ब्राह्मण ने किया। बाद को शिवाजी के निजी मंत्री बालाजी आवजी नाम के एक कायस्थ ने बनारस के गागभट्ट नामक एक ब्राह्मण को बहुत-सा रुपया देकर बड़ी कठिनाई से वेद-मंत्रों द्वारा राज्यभिषेक करने पर सम्मत कर लिया। अभिषेक पर शिवाजी ने ब्राह्मणों को इतना दान दिया कि जिस का कुछ लेखा नहीं। ६ जून १६७४ को शिवाजी का राज्यभिषेक था। उस दिन से उन्होंने अपना राज्यभिषेक संवत् चलाया। पर उनकी मृत्यु के बाद जब राजसत्ता ब्राह्मण पेशवा के हाथ आई तो उसने यह संवत् बंद कर दिया और उसके स्थान में मुसलमानों की रीति से फसली संवत् रक्खा।

इतना ही नहीं, शिवाजी के मरने के बाद उनके दो पुत्रों को फिर शूद्र ठहरा दिया गया। दूसरे शाहू का उपनयन संस्कार पेशवा के आदेश से पौराणिक अनुष्ठान से किया गया, वैदिक से नहीं।

शिवाजी के दूसरे पुत्र के वंशज कोल्हापुर में राज्य करते थे। सन् १९०२ ई० में कोल्हापुर के स्वर्गस्थ राजा शाहू महाराज ने अपने पुरोहित को वैदिक रीति से संस्कार कराने की आज्ञा दी। पर उसने ऐसा करने से इंकार कर दिया, क्योंकि वह कोल्हापुर के राजवंश को शूद्र समझता था। इस पर महाराजा ने आज्ञा दी कि जो ब्राह्मण हमें शूद्र समझते हैं वे हमारे राज्य से निकल जायँ, क्योंकि शास्त्र कहता है कि ब्राह्मण को शूद्र राजा के राज्य में नहीं रहना चाहिए। इसपर बहुत से ब्राह्मण अपना बोरिया-बिस्तर बाँध कर राज्य से निकल आए।

केरल में ब्राह्मणों ने क्षत्रियत्व का एक नया लक्षण गढ़ लिया है, अर्थात् राजवंशी नायर कन्या में ब्राह्मण से उत्पन्न हुआ पुत्र। कोचीन के राजा की अपनी सन्तान केवल मेनन होती है और पत्नी केवल पत्नी। रानी होगी बहन जो किसी ब्राह्मण की पुत्री है और किसी ब्राह्मण की ही स्त्री भी और जिसका बेटा गद्दी पर बैठा है। प्रायः कोचीन में किसी माता को रानी बनने का अवसर नहीं मिलता, क्योंकि राज वंश की बहनों, भांजियों और भाँजियों

की बेटियों के सभी लड़के आयु के अनुसार कोचीन की गद्दी पर बैठने का अधिकार रखते हैं।

साधारण लोगों की बात तो दूर रही, मलाबार में राजा भी जब विवाह करता था तो पहली रात अपनी नव विवाहिता पत्नी को ब्राह्मण के पास समागम के लिए भेजता था। लुडोविको डी वारथेमा नामक एक पर्यटक अठारहवीं शताब्दी के मध्य में भारत आया था। मलाबार का वर्णन करते हुए वह लिखता है :—

"जब राजा विवाह करता है तो वह इन ब्राह्मणों में से योग्यतम और सब से प्रतिष्ठित मनुष्य को चुनता है और उसे पहली रात अपनी स्त्री के साथ सुलाता है ताकि वह उस के साथ समागम करे। यह समझिए कि ब्राह्मण यह काम प्रसन्नतापूर्वक करता है। राजा को उसे चार पांच सौ डोकट (एक मुद्रा) देने पड़ते हैं।"—Voyage of Varthema, Vol. I, p. 14.

एक दूसरा पर्यटक, हमिलटन, लिखता है :—

"जब कालीकट का राजा जमूरण विवाह करता है तो उस के लिए आवश्यक है कि जब तक नम्बूद्री ब्राह्मण उसकी पत्नी का रसास्वादन न कर ले तब तक वह स्वयं उस के साथ समागम न करे। ब्राह्मण यदि चाहे तो स्त्री को तीन रात अपने पास रख सकता है, क्योंकि स्त्री के विवाह के प्रथम फल उस प्रभु की भेंट होने चाहिएँ जिसे वह पूजती है।"

बूचानन नामका एक और विद्वान् लिखाता है—"तिमूरी वर्श की स्त्रियों को प्रायः नम्बूद्री ब्राह्मण ही गर्भवती करते हैं।"

एक समय था, जब शूद्र जाति का कोई मनुष्य ब्राह्मण का चरणामृत लिए बिना भोजन नहीं कर सकता था। चरणामृत उस पानी को कहते हैं जिस में ब्राह्मण ने अपना पैर धोया हो। सर प्रफुल्लचन्द्र राय ने एक समय बताया था कि बाल्यकाल में वे देखा करते थे कि कलकत्ता में नीच जाति के बच्चे हाथ में प्याला लिए पंक्तिबद्ध सड़क के किनारे घण्टों खडे रहते थे ताकि कोई ब्राह्मण आए तो उसका चरणामृत लेकर घर जायें और उनके माता-पिता इस चरणामृत को पीने के बाद भोजन कर सकें। शूद्र जातियाँ अब तक भी ब्राह्मण को पूज्य और पवित्र मानती हैं। वे अब तक भी अपढ़ से अपढ़ ब्राह्मण को "स्वामी" या "महाराज" कहकर पुकारती हैं।

इतना ही नहीं, पुराना हिन्दू क़ानून कहता है कि ब्राह्मण चाहे किसी की हत्या भी कर दे, तो भी उसे फाँसी नहीं दी जा सकती। ईस्ट इण्डिया कंपनी भी सन् १८१७ तक इस कानून पर आचरण करती रही। सुना है कि अभी हाल तक भी ट्रावङ्कोर और काश्मीर के रजवाड़ों में ब्राह्मण को फाँसी नहीं दी जाती थी।

"समाचार है, मलबार के उत्पलम नामक गांव में इज़वा जाति का शिवरामनू नामक एक १७ वर्षीय लड़का एक सवर्ण हिन्दू की दूकान पर नमक मोल लेने गया। उस ने मलयालम भाषा में "उप्पू" माँगा। मलाबार में प्रथा है कि केवल सवर्ण हिन्दू ही नमक को उप्पू कह सकते हैं। अछूत होने के कारण शिवरामनू को "पुली चुटन" शब्द का प्रयोग करना चाहिए था। इस लिए सवर्ण दूकानदार को बहुत क्रोध हो आया। उसने लड़के को इतने ज़ोर से पीटा कि वह मर गया।"—"बम्बई समाचार," ४ नवम्बर १९३६.

"कालीकट के कुलाडी नामक ग्राम में एक नवयुवती का बच्चा कुएँ मे गिर पड़ा। स्त्री ने शोर मचाया। पर जो लोग वहाँ उपस्थित थे उन में से किसी ने भी कुएँ में उतरने का साहस न किया। एक परदेसी पास से होकर जा रहा था। वह कुएँ में छलाँग मार कर बच्चे को निकाल लाया। बाद को जब लोगों ने उस परोपकारी से पूछा कि तुम कौन हो, तो उसने बताया कि मैं अछूत हूँ। इस पर उसे बहुत गालियाँ दी गईं और पीटा गया कि तू ने कुआँ भ्रष्ट कर दिया है।"—"बम्बई समाचार," १९ दिसंबर १९३६.

"इलाहबाद हाईकोर्ट ने एक नृशंस हत्या के अभियोग का निर्णय किया है—एक ब्राह्मण अपने अछूत भाईयों को उठाने का यत्न करता था। उस से अप्रसन्न होकर दूसरे कट्टर पंथी ब्राह्मणों ने उसकी स्त्री के सामने उसे पीट पीट कर मार डाला।"—"इण्डियन नैशवल हेरल्ड," ३०-४-२८

महाराष्ट्र में सुनार शताब्दियों से दैवज्ञ ब्राह्मण होनेका दावा कर रहे हैं। वे कहते है कि हमें जनेऊ पहनने और वैदिक संस्कार कराने का अधिकार है। १८ वीं शताब्दी में ब्राह्मण पेशवाओं की आज्ञा से इन को सताया जाता था। उनके जनेऊ छीन लिए जाते थे। वैदिक कर्म-काण्ड करने पर उनको कठोर दण्ड दिया जाता था। और विवाह में दूल्हा को पालकी में बैठने और उसके सिर पर छत्र लगाने से रोका जाता था। ये लोग विवश होकर रात को

कहीं छिप कर विवाह करते थे। "ट्रायब्ज़ एण्ड कास्ट्स आफ़ बाम्बे," भाग ३, पृष्ठ ३३९

वास्तव में हिन्दू-समाज में प्रचलित उपर्युक्त प्रकार की हानिकारक प्रवृत्ति का दायित्व उतना उन की स्मृतियों और शास्त्रों पर नहीं जितना कि समझा जाता है। हम पीछे दिखा चुके हैं कि शास्त्र में सब प्रकार के विधि-निषेध हैं और यह भी स्पष्ट आज्ञा है कि केवल किसी एक शास्त्र-वचन के आधार पर ही किसी विषय का निर्णय करना ठीक नहीं, पर समाज में जब एक बार कोई रूढ़ि चल पड़ती है, फिर लोग शास्त्र-वचन की भी परवाह न करके रूढ़ि से ही चिपटे रहते हैं। "पुरानी कोई बात छोड़ो नहीं, नई कोई बात जोड़ो नहीं।" हिन्दू समाज का यही सिद्धान्त चिरकाल से चला आ रहा है।

सन् १८०० के लगभग की बात है। पेशवा के सेनापति परशुराम भाऊ पटवर्धन की कोई आठ नौ वर्ष की लड़की दुर्गा विधवा हो गई। इस से सेनापति को बहुत दुःख हुआ। उसने पदत्याग का निश्चय किया। पर पेशवा ने यत्न किया कि उस कन्या का पुनः विवाह करा दिया जाय। उसने शंकराचार्य से अनुमति माँगी। पर शंकराचार्य ने अनुमति देने से इंकार कर दिया। तब पेशवा ने काशी के कई सौ पण्डितों से पुनर्विवाह के पक्ष में व्यवस्था ले ली। यह देख शंगराचार्य भी सहमत हो गये। पर पूना के कुछ पण्डित दुर्गा की माता के पास जाकर गिड़गिड़ए कि काशी के पण्डितों ने पुनर्विवाह के पक्ष में व्यवस्था बेशक दे दी है, पर आप जैसे उच्च कुल में विधवा-विवाह होने से बड़ा अनर्थ हो जायगा; इस लिए आप सेनापति से कह कर विवाह रुकवा दीजिए। पण्डितों का जादू चल गया। दुर्गा का विवाह न हो सका।

इसी प्रकार जयपुर के राजा दूसरे जयसिंह ने विधवा-विवाह जारी करना चाहा। पर पण्डितों ने चालाकी से राजा की वृद्ध माता से धर्म—हानि की दुहाई देकर इसे बंद कर देने को कहा। राजमाता ने पण्डितों की बात मान ली। उसने अपने पुत्र को रोकते हुए कहा कि किसी दूसरी विधवा का विवाह तो पीछे करना, पहले मेरा पुनर्विवाह कराओ। इन तीक्ष्ण शब्दों को सुन जयसिंह को अपना वह आन्दोलन बंद कर देना पड़ा।*

* "हिन्दुओंकी अवनति की मीमांसा," पृष्ठ १०९ और १२४

सत्रहवाँ परिच्छेद

हिन्दुओं को जाति-भेद से क्या मिला

जाति-भेद सामाजिक रूप से हिन्दुओं के लिए बहुत हानिकारक सिद्ध हुआ है। इसके कुछ कुप्रभावों का उल्लेख आगे किया जाता है। हिन्दुओं की संख्या-वृद्धि सन्तोषजनक नहीं। वह दूसरी जातियों, विशेषतः मुसलमानों की अपेक्षा बहुत काम है। इसका बड़ा कारण यह है कि हिन्दुओं में, विशेषतः उन की कथित ऊँची जातियों में, गरीबों का विवाह नहीं हो पाता। ऊँचे वर्ण के दरिद्र हिन्दू प्रायः अविवाहित ही रह जाते हैं। दूसरे देशों का अनुभव बताता है कि प्रायः दरिद्र माता पिता के ही अधिक सन्तान हुआ करती है। धनियों के यहाँ सब कहीं कम बच्चे होते है। इसका अर्थ यह है कि हिन्दुओं की वह श्रेणी जो संख्या-वृद्धि कर सकती है प्रायः बिन-ब्याही ही रह जाती है।

इसका कारण हमारी सदोष समाज-व्यवस्था है। जाति-भेद के कारण हिन्दू लड़के-लड़कियों का विवाह अपनी तंग जाति-बिरादरी के भीतर ही हो सकता है। इसके अतिरिक्त, जैसे मुसलमान समाज में चाचा-ताऊ और फूफा-मामा के बच्चों के विवाह आपस में हो जाते हैं, वैसे हिन्दुओं में नहीं होते। इस से बिवाह की मंडी में जो प्रतियोगिता होती है उस के कारण निर्धन हिन्दू को कोई नहीं पूछता। पर जब कोई दरिद्र हिन्दू मुसलमान हो जाता है तो उधर उस का विवाह तुरंत हो जाता है। कारण यह कि मुसलमानों में यह आवश्यक नहीं कि अपनी ही जाति-बिरादरी के भीतर विवाह हो। मुसलमान एक वेश्या तक से विवाह कर सकता है और वह विवाह उनके समाज में बिलकुल धर्म-संगत है। जाति-भेद के कारण ही विधवा-विवाह का प्रचार नहीं होता। बिरादरी-पद्धति के रहते बाल्य-विवाह का रुकना भी कठिन है। कारण यह कि साधारण मनुष्य को डर रहता है कि हमारे बच्चे क्वाँरे न रह जायँ। इस लिए वे शीघ्र से शीघ्र उनके विवाह करके अपने कर्तव्य-भार से मुक्त हो जाना चाहते हैं।

जाति-भेद के कारण ही हमारा "शुद्धि" आन्दोलन सफल नहीं हुआ। जब एक जाति का हिन्दू दूसरी जाति के हिन्दू से भी बेटी–व्यवहार नहीं कर सकता तो दूसरे धर्म से आनेवाले के साथ कौन ब्याह–शादी करेगा ? यदि जाति-भेद न हो तो बाहर से आनेवाले व्यक्ति, अच्छे अच्छों में और बुरे बुरों में मिल जायँ।

भारत के मुसल्मानों में हिन्दुओं में से निकले होने और उनके पड़ोस में बसने के कारण जाति-भेद का भाव थोड़ा–बहुत है अवश्य। पर वे इस को एक बुराई समझते हैं। वे जिस प्रकार हिन्दू जाति-भेद को अपने धर्म का अंग मानते हैं वैसे मुसलमान नहीं मानते। उन में यदि कोई जाति से बाहर विवाह कर लेता है तो उसे बहिष्कृत नहीं कर दिया जाता। दोनों समाजों के भाव में यह बड़ा अन्तर है।

हिन्दू-समाज-रचना इस प्रकार की है कि इस में निर्धन, पतित, आलसी और स्वतंत्र विचार वाले के लिए बहुत कम स्थान है। ऐसे ही हिन्दू अधिक तर ईसाई और मुसलमान बनते हैं। निर्धन को हिन्दू–समाज में स्त्री नहीं मिलती और न उस की योग्यता एवं रुचि के अनुकूल काम मिलता है। जिस काम को वह कर सकता है, उसे उसका समाज पसंद नहीं करता, और जिस काम को उसका समाज पसंद करता है वह उस से हो नहीं सकता। फलतः वह भूखों मरता है। वह समझने लगता है कि यदि मै ईसाई या मुसल्मान हो जाऊँ तो न केवल मेरा विवाह ही हो जायगा वरन् मुझे काम भी मिल जायगा। इसी लालच में आकर बहुतसे हिन्दू–धर्म परिवर्तन कर लेते हैं। हिन्दू रहते हुए वे चमडे का व्यापार न कर सकते थे। वे महनत मज़दूरी करना अपना अपमान समझते थे। मुसल्मान या ईसाई होकर वे सब कुछ कर सकते हैं। मैं एक भङ्गी को जानता हूँ। वह टट्टी उठने का काम छोड़कर ताँगा चलाना चाहता था, इस लिए उसे ईसाई बन जाना पड़ा। कारण यह कि वह समझता था कि उस के हिन्दू रहते, कोई सवर्ण हिन्दू उसके ताँगे में बैठना पसंद न करेगा। ईसई हो जाने पर यह बाधा दूर हो जायगी। लायलपुर में एक आर्य समाजी डाक्टर इसलिए मुसल्मान हो गया कि वह मद्रास का रहने वाला था, पर पंजाब में बस गया था। मद्रास के हिन्दू को पंजाब के हिन्दू किस प्रकार अपना भाई समझते! उसके लड़के थे और लड़कियाँ भी। जब तक वह हिन्दू था उसके बच्चों का विवाह न हो सका। मुसल्मान होते ही वे सब ब्याहे गये।

कोई हिन्दू स्त्री विवशता की दशा में वेश्या हो जाती है। इस दशा में वह हिन्दू नहीं रह सकती, वेश्या बनना तो बड़ी दूर की बात है। आप किसी हिन्दू स्त्री को किसी प्रकार बदनाम कर दीजिए। लोगों में फैला दीजिए, कि वह व्यभिचारिणी है। वह अपने समाज से अवश्य निकल जायगी। हिन्दू-समाज प्रतिबंधों पर आधारित है। यह काम न करो, वह काम न करो, इस के हाथ का न खाओ, उसके साथ न छुओ। ऐसी बातें आलसी और स्वतंत्र विचार रखने वाले, दोनों प्रकार के मनुष्यों को हिन्दू समाज से बाहर ढकेल देने के लिए पर्याप्त है। मनुष्य सामाजिक प्राणी है। वह समाज में रहना चाहता है और संमान-पूर्वक रहना चाहता है। यदि उसका समाज उसे संमान से न रखेगा तो वह समाज का परित्याग कर देगा।

कई हिन्दू केवल इसलिए मुसलमान हो गये है कि उनकी बिरादरी की बहुसंख्या मुसलमान हो गई थी। वे कहते थे कि हम हिन्दू रहना चाहते थे, पर हिन्दूओं की दूसरी बिरादरियाँ हमारे साथ बेटी-व्यवहार करने को तैयार न थीं।

हिन्दूओं की अनेक जातियाँ ऐसी हैं जिन में पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियाँ कम हैं और कई दूसरियों में स्त्रियों की संख्या पुरुषों से अधिक है। पहली दशा में स्त्रियाँ बिकती हैं और व्यभिचार फैलता है। दूसरी दशा में बडे बडे दहेज माँगे जाते हैं और बहुत सी-लड़कियाँ कुँआरी रह जाती हैं।

हिन्दुओं की अधिकांश संख्या कायर है। राजपूत आदि कुछ लोग जो भीरू नहीं भी हैं, वे भी दूसरी जातियों के सामने हार खाते रहे हैं। इसका कारण क्या है?

हिन्दुओं का पालन-पोषण और रहन-सहन एक ही संकुचित क्षेत्र के भीतर होता है। उसी संकीर्ण क्षेत्र के भीतर वे ब्याह-शादी करते हैं। अब यह एक स्वाभाविक बात है कि जो जातियाँ शताब्दियों से दूकानदारी, नौकरी या दूसरे असैनिक काम करती आ रही हैं वे लड़ने का काम भूलकर डरपोक एवं भीरु बन जायँगी। यदि बनिए के लड़के का विवाह राजपूत लड़की से और ब्राह्मण लडकी का विवाह जाट लड़के से हो तो यह दोष नहीं रहेगा।

दूसरी बात यह है कि बनियों के लड़के-लड़कियां एक ही प्रकार के वाता-वरण में पलते, एक ही प्रकार के खेल खेलते, एक ही प्रकार की डराने वाली बातें सुनते रहने से डरपोक बन जाते हैं। इस का कारण भी हमारी सदोष

समाज-रचना ही है। जो बातें बनिए का लड़का अपने घर में सुनता है और जो संस्कार बाल्यकाल में उस पर पड़ते हैं उन्हीं के प्रभाव से वह कायर बन जाता हैं। जहाँ हमने ब्याह-शादी के लिए पृथक् पृथक् जनसमुदाय बनाने की भूल की है वहाँ विभिन्न जातियों के काम बाँटने में भी भूल की है। कई जातियाँ ऐसी हैं जो शताब्दियों से कभी युद्ध में नहीं गई या जिन्हों ने कोई ऐसा काम नहीं किया जिस में लड़ने-भिड़ने या दूसरे से टक्कर लेने की आवश्यकता हो। इसी के परिणाम से ये जातियाँ या जन-समुदाय कायर हो गई हैं।

वीरता और कायरता का संबंध उतना जन्म से नहीं जितना कि प्रति दिन के उन कार्यों से है जो हमारे स्वभाव बनाते है। अर्थात् वीरता और डरपोकी हमारे दैनिक कार्यों का ही परिणाम है। आप राजपूतों को एक वीर जाति समझते है। आप इस जाति के एक व्यकि को ले लीजिए। उससे कहिए कि हम तुम्हें एक लाख रुपया देते हैं, तुम कोई वाणिज्य करो। वह साफ इंकार कर देगा, और कह देगा कि मुझे व्यापार से डर लगता है; मैं व्यापार करके अपनी नींद हराम नहीं करना चाहता। फिर उस से कहिए कि यदि तुम व्यापार नहीं कर सकते तो आओ राज (मेमार) के साथ काम करो। वह इस काम से भी इंकार कर देगा। वह कहेगा मुझे थवई के साथ काम करने से डर लगता है। इस के विपरीत थवई साधारण--सा बाँस का मचान बाँधकर उस पर बैठ जाता है; एक फुट चौड़ी दीवार पर बे-धड़क चलता-फिरता है। पर 'वीर' राजपूत को इस से डर लगता है। अब राज के संबंध में यह बात बहुत प्रसिद्ध है कि राज की भार्या केवल रातके समय सुहागन होती है। दिन के समय जब राज काम पर जाता है तो वह यही समझती है कि संभव है कि आज मेरा पति किसी मचान से या मकान से गिर कर मर न जाय। जब वह रातको लौट कर आता है तभी वह समझती है कि मै सुहागन हूँ।

यदि कोई राज से कहे कि आओ तुम्हें इस भयावह धंधे से छुटकारा दिला दें, तुम सेना में भरती हो जाओ, युद्ध में मृत्यु की उतनी जोखिम नहीं जितनी तुम नित्य उठाते हो। वह स्पष्ट उत्तर देगा कि मैं सेना में भरती नहीं हो सकता, मुझे उस से डर लगता है।

अब किसी बनिए को बुलाइए और उस से कहिए कि लाख रुपया लो और व्यापार करो। वह कहेगा, यह तो साधारण-सी बात है। वह इस प्रकार की

जोखिम का अभ्यस्त है। बात वास्तव में यह है कि प्रत्येक प्रकार के काम में वीरता एवं साहस की अपेक्षा है। जो काम हम नहीं करते उस से हमें डर लगता है। और जो काम हम करने लग जाते हैं उसके हम अभ्यस्त हो जाते हैं। वीरता और कायरता का यही तत्वज्ञान है।

अब तनिक सोचिए कि क्या कारण है जो हमारे राजपूतों के इतना शूर, साहसी और निडर होने पर भी वे उत्तर-पश्चिम से होने वाले उजड्ड मुसलमानों के आक्रमणों को क्यों न रोक सके? सातवीं शताब्दी में सिंधु देश पर मुहम्मद बिन क़ासिम के आक्रमण से लेकर आज तक गत १३०० वर्षों में हिन्दुओं का पग दिन पर दिन पीछे ही क्यों हटता आ रहा है? नवीं शताब्दी में काबुल में भी हिन्दू राजे राज्य करते थे। पर आज अमृतसर से परे भी हिन्दू पैर नहीं धर सकता। ग़ज़नी का महमूद भारत को १२ वर्ष में १८ बार लूट कर ले गया और किसी राजा या क्षत्रिय जाति ने उसके दाँत खट्टे न किए! इस के उपरान्त भी मुसलमान शासक आपस में लड़ते-भिड़ते रहे, पर किसी हिन्दू को उन से राजसत्ता छीन लेने का साहस न हुआ।

इस का कारण भी हिन्दूओं की विभिन्न जातियों में बेटी-व्यवहार का न होना है। इस प्रतिबंध से जहाँ न लड़ने वाली जातियाँ डरपोक हो जाती हैं वहाँ लड़ने वाली उजड्ड और विचारहीन हो जाती हैं। पर विजय प्राप्त करने के लिए केवल वीरता एवं निडरता ही नहीं, उन के साथ बुद्धि और परिणाम-दर्शिता की भी आवश्यकता है। जो जातियाँ केवल लड़ती-भिड़ती रहती हैं वे उजड्ड, अदूरदर्शी और नीति-शून्य हो जाती हैं। राजपूतों के इतिहास में हम बार बार पढ़ते हैं कि वे बात बात में तलवार पर उतर आते थे; यह जानते हुए भी कि शत्रु की शक्ति अधिक है, केसरी बाना पहन युद्ध में मरने के लिए तैयार हो जाते थे। वे लोग केवल लड़ना मरना जानते थे, लड़ाई जीतने की कला उन को न आती थी। जौहर की प्रथा क्या थी? परले दर्जे की मूर्खता। इस प्रकार की प्रथा यद्यपि ऊपर से वीरोचित प्रतीत होती है, पर इस का फल शत्रु के पक्ष में निष्कण्टक राज्य और स्वदेश के लिए स्थायी दासता है। आजकल यदि कोई सेनानायक ऐसी परिस्थिति में सेना को पीछे हटने की आज्ञा न दे तो उस का कोर्ट मार्शल कर दिया जाय।

अपनी अपनी संकुचित जाति-बिरादरी के भीतर ही विवाह करते रहने का

कुफल यह हुआ है कि मनुष्य को पूर्ण मनुष्य बनाने वाले सद्गुण अलग अलग जातियों में पुंजीभूत हो गये हैं। ब्राह्मण बुद्धिमान तो है पर साथ ही वृथाभिमानी भी है। क्षत्रिय वीर तो है पर साथ ही अदूरदर्शी भी। वैश्य व्यापार-कुशल तो है पर साथ ही कायरता की सजीव प्रतिमा भी। शूद्र परिश्रमी तो है, पर साथ ही उस की आत्मा इतनी कुचली हुई है, उस की उभंग इतनी दबी हुई है कि उस में वह मानवी प्रतिष्ठा ही नहीं रह गई जिस के बिना यह जीवन दूभर मालूम होने लगता है। भारत लड़ाईयों में इसलिए नहीं हारता रहा कि उसके सैनिक अयोग्य और निकम्मे थे। वरन् उस के हारते रहने का कारण इस के अयोग्य सेनानायक थे। विजयी सेनापति बनने के लिए राजपूत की वीरता और ब्राह्मण की दूरदर्शिता का मिलाप आवश्यक है। यदि ब्राह्मण और राजपूत का आपस में बेटी-व्यवहार हो, तभी इन दोनों गुणों वाली सन्तान उत्पन्न हो सकती है। पर जाति-भेद ने दोनों के विवाह पर रुकावट लगा दी है। इस लिए जात-पाँत को मानने वाला समाज अच्छे लड़ाके सिपाही तो चाहे उत्पन्न कर सके, पर विजयी सेनानायक उत्पन्न नहीं कर सकता। महाराजा रणजीतसिंह को भी अपनी सेना के लिए फ्रेञ्च सेनापति रखने पडे थे। देखिए पहले अँग्रेज़ों ने संयुक्त प्रान्त के लोगों की सेना से पंजाब के सिखों को जीता, फिर जब सन् १८५७ में संयुक्त प्रान्त की सेनाओं ने विद्रोह किया, तो अंग्रेज़ों ने उन्हीं सिखों की सेना से विद्रोही सेना को नष्ट कर दिया। कहने का अभिप्राय यह कि जिस सेना का सेनापति अँग्रेज़ होता था वही जीत जाती थी।

अपनी ही संकुचित जाति में विवाह करने और पैतृक व्यवसाय करते रहने से उस समाज में कई प्रकार के दोष उत्पन्न हो जाते है। जो जाति सदा बौद्धिक व्यवसायमों में लगी रहती है वह प्रायः घमण्डी हो जाती है, डरपोक हो जाती है, वह हाथ से काम करना भूल जाती है, और अन्ततः उस में मानसिक दुर्बलता भी बढ़ जाती है। कारण यह कि ज्ञानके साथ आचरण का होना भी आवश्यक है। ऐसी बौद्धिक जाति एक प्रकार की वितण्डवादी बेशक बन जाती है, पर उस का दृष्टिकोण विशाल नहीं होता। वे लोग सब प्रकार की बातें नहीं सोच सकते, वे लड़ाइयाँ नहीं लड़ सकते, वे किसी उद्योग-धंधे में सफल नहीं होते।

इसी प्रकार जो जातियाँ केवल लड़ने-भिड़ने में, या केवल वाणिज्य-व्यापार में, या केवल मेहनत-मज़दूरी में शताब्दियों से लगी हुई हैं, उन का भी

एकाङ्गीन बढ़ाव हुआ है। भला साचिए तो सही, कि जो व्यक्ति आप भङ्गी, जिस का बाप-दादा भंगी, जिस की स्त्री-बच्चे भंगी, जिस के अड़ोसी-पड़ोसी भङ्गी और जिसकी आने वाली सन्तान भी भङ्गी हो, वह सिवा भङ्गी के और क्या हो सकता है ? यदि उस में मानवता का भाव इतना लुप्त हो चुका हो कि वह एक हाथ से मल-मूत्र उठाता हुआ दूसरे हाथ से साथ ही साथ रोटी भी खाता जाए, तो इस में आश्चर्य ही क्या है ?

जाति-भेद से हमारे उद्योगे-धंधों की भी बड़ी हानि हो रही है। देखिए, कोई वस्तु जितनी अधिक मात्रा में तैयार हो उतनी ही वह सस्ती पड़ती है। पर रहन-सहन की दृष्टिसे भारत के विभिन्न प्रदेश एक दूसरे से भिन्न हैं। इसलिए उनकी आवश्यकताएँ भी भिन्न भिन्न है। देश के एक ही भाग में बसने वाले विभिन्न वंशों एवं जातियों की भी यही दशा है। इस अवस्था का सब से महत्वपूर्ण परिणाम यह है कि यद्यपि देश बहुत विशाल है तो भी माल छोटे पैमाने पर ही तैयार होता है। हिन्दुओं की आवश्यकताएँ मुसलमानों की आवश्यकताओं से भिन्न है। उनका पहनावा एक दूसरे से भिन्न है। और भारत के अनेक स्थानों में दोनों समाजों के दरज़ी भी भिन्न भिन्न है। केवल हिन्दुओं को ही लीजिए। बंबई जैसे नगर को देखिए। वहाँ दो बडे समाज है—गुजराती और मराठी। इन दोनों का पहरावा अलग अलग है। इस लिए उन के दरज़ी एक नहीं हो सकते। गुजराती के लिए गुजराती दरज़ी होना चाहिए और मराठे के लिए मराठा। तभी वह उन के, विशेषतः स्त्रियों के, कपडे बना सकेगा।

फिर गुजराती और मराठा खाना एक नहीं। इस लिए दोनों को विभिन्न प्रकार के रसोइए चाहिएँ। उन के भोजनालय और निवास स्थान भी एक नहीं हो सकते। केवल इसलिए नहीं वि उनको विभिन्न प्रकार के आहार की आवश्यकता है, वरन् इसलिए भी कि उन के परोसने के ढंग में भी थोड़ा-बहुत अन्तर है। बाहर से देखने पर ये प्रभेद चाहे तुछ प्रतीत हों, परन्तु वे बडे प्रभावशाली है। जब किसी प्रदेश में बहुत से ऐसे समाज बसते हों जिन के खान-पान और रहन-सहन की रीति एक दूसरे से भिन्न हो और फलतः जिन की आवश्यकताएँ भी भिन्न हों, तो उन के एक दूसरे में घुल-मिल कर एक समाज बनने में जितना भी विलम्ब होगा, देश के आर्थिक विकास में

उतनी ही हानि होगी। माल को बहुत बडे पैमाने पर तैयार करना और कार्य-संपादन में विशेषता प्राप्त करना उच्चतर आर्थिक जीवन के लक्षण हैं। वहाँ इन दोनों का अभाव हो जाता है।

जो लोग जाति-भेद को रखते हुए हिन्दू-समाज का सुधार करना चाहते हैं वे नहीं समझते कि वे क्या कर रहे हैं। कई लोग ऐसे हैं जिनका जन्म भङ्गी के घर हुआ है पर उनकी प्रवृत्ति सैनिक बनने की है। ऐसे लोगोंको जाति-भेद सैनिक नहीं बनने देता। कई युवक ऐसे हैं जिन का जन्म ब्राह्मण के घर हुआ है, पर उन में कोई बौद्धिक कार्य करने की न तो रुचि है और न योग्यता ही। वे बडे सफल मोची या निपुण बढ़ई बन सकते हैं। पर यह जाति-भेद उन को अपना पैतृक धंधा करने पर विवश करता है। इस से वे उस में कोई उन्नति नहीं कर पाते। गले पड़ा ढोल बजाते हैं। इस से उन की और समाज की, दोनों की, हानि होती है।

पैतृक व्यवसाय करने वाले की प्रगति रुक जाती है। पैतृक व्यवसाय करने वाला गायक मीरासी और भाट असफल है। सिनेमा में सफल गायक आप को एक भी ऐसा न मिलेगा जिसका पैतृक व्यवसाय संगीत हो। पैतृक व्यवसाय से चिपटा हुआ बढ़ई, लोहार और चमार वहीं खड़ा है जहाँ उस के पिता, पुरखे शताब्दियों पहले खडे थे। भरत का पैतृक मोची आज भी तीन रुपये से अधिक मोल का जूता नहीं बनाता, जबकि यूरोप के मोची बीस बीस, पचीस पचीस रुपए के बूट बनाते हैं। इस का कारण यह है कि व्यवसाय को पैतृक बना देने से एक तो प्रतियोगिता का डर नहीं रहता, जिस से मनुष्य ढीला पड़ जाता है, दूसरे बाहर से नया रक्त न आने से व्यवसाय को उन्नत करने के लिए प्रतिभा का अभाव हो जाता है। जात-पाँत में फँसा हुआ हिन्दुओं जैसा समाज महात्मा गाँधी, राजगोपालाचार्य और मोतीलाल नेहरू तो उत्पन्न कर सकता है, पर स्टालिन, चर्चिल और माऊँट बेटन नहीं, जो सफल राज्य-प्रबंधकर्त्ता होने के साथ साथ विजयी सेनानायक भी हैं। जात-पाँत से मनुष्य का सर्वाङ्गीन विकास नहीं होता। इस से ऐसे मनुष्य उत्पन्न हो गये हैं जिनका सिर कद्दू के बराबर बड़ा है, तो पैर सींक की तरह पतले हैं; पेट कुप्पे की भाँति बाहर को निकला हुआ है, तो भुजाएँ तिनका तोड़ने में भी असमर्थ हैं। पूर्ण मनुष्य वही है, जिस के सब अंग ठीक अनुपात में हों।

समाज वही उत्तम कहला सकता है जिस के सदस्यों के सब अंग उन्नत और सुदृढ़ हों। आवश्यकता पड़ने पर सब के सब सिपाही, दूसरे अवसर पर सब के सब व्यापारी और तीसरे अवसर पर सब के सब अध्यापक बन सकते हों। यह नहीं कि यदि सैनिकों की आवश्यकता हो तो केवल राजपूतों में से भरती हो, व्यापारियों की आवश्यकता हो तो केवल बनियों में से, और जब अध्यापकों की आवश्यकता हो तो केवल ब्राह्मणों में से भरती करना पडे। इस प्रकार की काम करने वालों की बाँट जहाँ भी होगी वहाँ सारी जाति दुर्बल हो जायगी। अस्थायी विभाजन हानिकारक नहीं, पर स्थायी विभाजन प्राण-घातक हलाहल है।

विभिन्न काम करने वाले जन–समूह दूसरे देशों में भी हैं। पर वहाँ उनका समूहीकरण अस्थायी है, हमारे यहाँ की भाँति जन्म से या स्थायी नहीं। वहाँ जो आज श्रमजीवी है, वही कल किसान बन जाता है। उस का बेटा पादरी बन जाता है और भाई सेना नायक। वहाँ अस्थायी श्रेणियाँ (Classes) है, स्थायी जातियाँ (Castes) नहीं। श्रेणी बदली जा सकती है, पर जाति नहीं। यही कारण है कि हमारे यहाँ सब भारत–वासियों के सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक हितों का साझा नहीं। जो बात जाट के लिए अमृत है वही बनिए के लिए विष है। जिन लोगों के साथ आपका खान-पान और ब्याह–शादी है उनके प्रति आपके हृदय में प्रेम होना स्वाभाविक है। जाति–भेद को बनाए रखकर जो लोग देश में एक राष्ट्र बनाना चाहते हैं या साम्प्रदायिकता को मिटा देना चाहते हैं वे नहीं जानते कि वे क्या कर रहे हैं। जिस हिन्दू का सारा सामाजिक जीवन, जन्म से मरण पर्यन्त, बिलकुल साम्प्रदायिक है, जिसकी छोटी सी संकीर्ण जाति ही उसका समूचा संसार है, उस से आप कैसे आशा कर सकते हैं कि वह राजनीतिक क्षेत्र में, अपनी जातिवालों और दूसरी जातिवालों को बराबर समझने लगेगा। यह बात सर्वथा अस्वाभाविक है। असंबलियों के चुनाव के दिनों में यह बात स्पष्ट हो जाया करती है। पंजाब का ब्राह्मण अपने पड़ोसी कहार को छोड़कर बिहार के भिन्न भाषा भाषी ब्राह्मण को अपना भाई क्यों समझता है? क्यों कि वह कहार के यहाँ बेटी–व्यवहार नहीं कर सकता, पर बिहारी ब्राह्मण के साथ कर सकता है। यह स्वाभाविक है। रक्त सदा पानी से गाढ़ा रहता है। जो व्यक्ति

अग्रवाल सभा या जाट महासभा का मंत्री है और कांग्रेस की वेदी से कहता है कि सब भारतवासी मेरे राष्ट्र–बंधु है, बह अपनी आत्मा को झुटलाता है और संसार को घोखा देना चाहता है। आपको संसार में ऐसा कोई स्वतंत्र राष्ट्र नहीं मिलेगा जिस के सदस्य, केवल जन्म के ही कारण, अपने दूसरे देश–भाई से खान-पान और ब्याह–शादी करने से इंकार करते हों। इस देश में इस समय जो गुप्त रूप से जाटस्थान, राजपूतस्थान, आदि वासियों का झार-खण्ड आदि बनाने की चेष्टाएँ हो रही है, ये सब जाति–भेद का ही स्वाभाविक परिणाम हैं। जाति–भेद को मानने वाला हिन्दू बेशक डींग मारे कि मै पहले हिन्दुस्थानी और बाद को हिन्दू हूँ, पर सचाई यह है कि वह पहले तो कहाँ बाद में भी हिन्दुस्थानी नहीं, हिन्दुस्थानी तो दूर वह हिन्दू भी नहीं। वह तो ब्राह्मण, अग्रवाल या जाट है। यदि जाति–भेद को न मिटाया गया तो यह जाति–भेद भारत की इस कथित स्वतंत्रता को मिटा देगा। प्रकृति पहले भी कई बार—शिवाजी के समय, सिखों के समय, और सन् १८५७ में—भारत को स्वतंत्र होने का अवसर देती रही है। पर जाति–भेद का रोगी भारत उस स्वतंत्रता को बनाए रखने में सदा असमर्थ रहा है। इतिहास से शिक्षा लेने की आवश्यकता है। राष्ट्र को बाहर के शत्रुओं से उतना भय नहीं, जितना अपने भीतर के इस बोदेपन से। हिन्दू की अपनी संकुचित जाति के और उपजाति के प्रति भक्ति, विशाल राष्ट्र–भक्ति को दबा देती है।

जाति–भेद ने हिन्दू की महत्वाकांक्षा को मार डाला है। उस में उन्नति करने की उमंग ही उत्पन्न नहीं होती। भङ्गी समझता है, मै तो सदा भंगी ही रहूँगा; उन्नत्ति कर के मै ब्राह्मण नहीं बन सकता। ब्राह्मण समझता है, मेरी जन्म की उच्चता को कोई छीन नहीं सकता। इसलिए अपने को उन्नत करने की उस में कोई उमंग उत्पन्न नहीं होती। सुनार गहने गढ़ता है, चमार जूते बनाता है; पर साथ ही अनुभव करता है कि इस व्यवसाय के कारण ही समाज मुझे शूद्र और नीच समझता है; इसलिए उस का अपने काम में प्रेम नहीं होता। जिस काम से मनुष्य को प्रेम न हो, जिसे वह अपने अपमान का कारण समझे, उसे वह उन्नत नहीं कर सकता। इसीलिए हमारे शिल्पियों और कलाकारों की दशा बहुत कम सन्तोषजनक देखी जाती है।

हिन्दू समाज की रचना ऐसी है जिस से कोई बाहर से आकर हिन्दुओं

में मिल नहीं सकता है और जो इन में से निकल जाना चाहता है उसे रोका नहीं जा सकता। हिन्दू समज में केवल द्विज ही रह सकता है। भंगी, चमार, ढेढ़ आदि अस्पृश्य ही नहीं; कोई लोहार, नाई, माली, कुम्हार, तेली, कलवार, धोबी, कहार आदि कारीगर-जाति का मनुष्य भी सम्मानपूर्वक नहीं रह सकता। वह चाहे जितना भी विद्वान, सदाचारी, धनी और गुणी क्यों न हो, उस की जाति का पता लगते ही, दो कौड़ी का द्विज भी उस का तिरस्कार करने लगता है। जिस साहस के साथ रेल पर कुली का काम करने वाला ब्राह्मण बाज़ार में खड़ा होकर " मै ब्राह्मण हूँ " कहता है उसी सहस के साथ एक नाई वकील कभी अपनी जाति नहीं बता सकता। वह सामाजिक तिरस्कार से डरता रहता है। इसीलिए कायस्थ अपने को वर्मा, नाई अपने को कुलीन ब्राह्मण शर्मा, कलवार अपने को हयहय क्षत्रिय और अहलूवालिया, बढ़ई अपने को धीमान ब्राह्मण और रामगढ़िया, सुनार अपने को मैड़ राजपूत, और कुम्हार अपने को प्रजापति ब्राह्मण और वीर राजपूत, सिहोरे अपने को शिवहरे अथवा जायसवाल कहने लगे है।

एक चुटकिला प्रसिद्ध है। तीन मनुष्य रास्ता चलते चलते इकट्ठे हो गये। उन में से एक दूसरे से पूछने लगा कि तुम कौन होते हो? वह बोला अहलू-वालिया। फिर दूसरे ने पहले से पूछा, तुम कौन जाति हो? वह बोला राम गढ़िया। तब उन्हों ने तीसरे की जाति पूछी। इस पर वह बोला-देखो भाई, यदि तुम अहलू वलिया हो और यह राम गढ़िया है, तो मै बहावल पुरिया हूँ, पर यदि तुम कलवार हो और यह बढ़ई है, तो मै जुलाहा हूँ।

समाज की यह दशा अच्छी नहीं। जिन को केवल जन्म के कारण आप अछूत और शूद्र समझकर घृणा करते हैं उन का आप के प्रति कभी सद्भाव नहीं हो सकता। कोई अछूत और कोई शूद्र उसे नीच समझने वाले द्विज से प्रेम कैसे कर सकता है? थोड़ा सा भी दबाव पड़ने पर वह धर्मान्तर और समाजान्तर के लिए तैयार हो जायगा।

कुछ लोग कहा करते हैं कि जाति-बिरादरी का संबंध होने से मनुष्य का चरित्र बिगड़ने में देर लगती है; वह बिरादरी के डर से कोई कुकर्म नहीं करता; यदि किसी कारण वह गिर भी जाय तो बिरादरी के डर से फिर अपने को संभाल लेता है। इस प्रकार का तर्क करने वाले लोग भूल जाते हैं कि जिस

प्रकार कुछ अवस्थाओं में जाति-बिरादरी के संबंध किसी व्यक्ति को पतित होने से रोकते हैं, उसी प्रकार कई दूसरी बिरादरियाँ अपने सदस्यों को ऊपर उठने से रोकती है। क्या कारण है कि हिन्दुओं की कुछ श्रेणियाँ सदा से भिखमँगी बन गई है? उनको माँगकर खाने से ग्लानि क्यों नहीं होती? क्या कारण है कि नायक प्रभृति हिन्दुओं की कुछ जातियों में से अपनी लड़कियों से वैश्यावृत्ति कराने की लत्त नहीं छूटती? हिन्दुओं में साँसी, बाज़ीगर, डोम, गगडे और कंजर आदि कई ऐसी मानव-श्रेणियाँ है जो केवल इसलिए अपनी बुरी लत्त को नहीं छोड़ती क्योंकि उन की चारों ओर की परिस्थिति, और उनके सगे-संबंधी सब के सब उसी पतित अवस्था में रहते है। उनको यह विचार तक नहीं होता कि वे नीच हैं। यदि जाति-बंधन न हो, और सब प्रकार के लोग आपस में ब्याह-शादी करें तो न कोई जाति इतनी पवित्र हो जाय कि स्वयंपाकी ब्राह्मणों की भाँति लकड़ियाँ भी धोकर जलाए, और न कोई जाति इतनी गिर जाय कि भंगी की भाँति मल-मूत्र से सने हाथों से ही रोटी खाती जाय। यह जाति-प्रथा सृष्टि-नियम के विरुद्ध युद्ध, है। इसलिए समाज के लिए हानिकारक है। यदि यह बाँट प्रकृति को अभीष्ट होती तो भङ्गन और ब्राह्मण के मेल के सन्तान न होती।

राष्ट्र का लक्षण विभिन्न विद्वान् विभिन्न रीतियों से करते हैं। पर यह एक अटल सत्य है कि जिस जन-समुदाय का या जिस देश के अधिवासियों का रक्त साझा न हो, जो आपस में बेटी-व्यवहार न करते हों, वे कभी एक राष्ट्र नहीं बन सकते। भाषा-भेद, धर्म-भेद अन्त में मिट जाता है। उदाहरणार्थ, अमेरिका में विभिन्न भाषाएँ बोलने वाली जातियाँ जाकर बसीं, और कालान्तर में एक राष्ट्र बन गईं। इङ्गलेण्ड में रोमन केथोलिक और प्राटेस्टण्ट ईसाई धार्मिक मतभेद के रहते भी एक राष्ट्र बन गये। चीन में बौद्ध, मुसलमान और ईसाई एक राष्ट्र बन चुके है। इस से सिद्ध है कि भाषा और धर्म का भेद राष्ट्र-निर्माण के मार्ग में बाधा नहीं डाल सकता। यह सौभाग्य हिन्दुओं को ही प्राप्त है कि उन्होंने एक ऐसी पद्धति निकाल ली है जिस से एक ही राष्ट्र बँट कर अनेक राष्ट्र बन गया है।

लोग पूँजीवाद की निन्दा करते हैं। पर पूँजीवाद जाति-भेद का सामना नहीं कर सकता। वहाँ कुछ मनुष्य धनी हैं और कुछ निर्धन। पर हो सकता है कि

वही धनी किसी दिन दरिद्र हो जायँ और जो आज दरिद्र हैं वे कुछ वर्ष बाद धनी हो जायँ। पर भारत में जो पूँजीपति जाति है वह सदा पूँजीपति रहेगी। उसकी पूँजी उसकी अपनी ही जाति में चक्कर लगाती रहेगी, वह अपने उसी जातिगत वृत्त से बाहर नहीं जायगी। इस लिए सहस्रों वर्षों से बनिए एक जाति के रूप में धनी और कहार एक जाति के रूप में दरिद्र चले आ रहे हैं। इस जाति-प्रथा से सैनिक शक्ति भी एक ही जाति में और विद्या भी एक ही जन-समुदाय में सीमित रहेगी। इस से नीच जातियाँ सदा नीच ही बनी रहेंगी। भङ्गी आज भी भङ्गी है, सहस्र वर्ष पहले भी भंगी ही था, एक सहस्र वर्ष बाद भी भंगी ही रहेगा। क्या हम हिन्दू इसी संस्कृति और सभ्यता पर गर्व करते है? इस प्रकार की इजारादारी प्रकृति को अभीष्ट नहीं। इस इजारादारी को पहले मुसलमान आक्रमणकारियों ने खड्ग के बल से तोड़ा और इस के बाद अँग्रेजों ने।

हिन्दुओं में साठ लाख भिख-मंगे साधु होने का कारण भी जाति-भेद है। जिस समाज में मनुष्यों को अपनी स्वाभामिक प्रवृति के अनुकूल काम करने का अवसर न मिले और उनको ऐसे काम सौंपे जायँ जिनमें उनकी रुचि न हो, तो समाज में दीर्घसूत्रता और उदासीनता उत्पन्न हो जाती है। उसी आलस्य और उदासीनता का परिणाम हिन्दू-समाज में भिख-मँगों की इतनी अधिक संख्या है। यदि इन भिख-मँगों को उन की अपनी अपनी रुचि के अनुसार काम दिया जाता तो वे कदापि इस कुत्सित वृत्ति को ग्रहण न करते। एक ब्राह्मण का लड़का चमड़े का काम करना चाहता है। पर उस की जाति-बिरादरी इस काम को अच्छा नहीं समझती। ऐसी अवस्था में वह विवश होकर ब्राह्मण के लिए मनु का नियत किया हुआ व्यवसाय करने लगता है। पर वह काम उसकी स्वाभाविक प्रवृति के विरुद्ध है। इसलिए वह उसे छोड़कर साधु बन जाता है। जब उसे साधारण रीति से माँगने से पर्याप्त भिक्षा या दान नहीं मिलता, तो वह पाखंड रचता है। तीर्थों और मेलों में आप को बहुत से साधु ऐसे मिलेंगे जिनमें से किसी ने अपनी भुजा सुखा रखी है, किसीने नाखून बढ़ा रखे हैं, कोई लोहे के काँटों पर लेटा है। ये सब पाखंड उनको इसीलिए करने पड़ते हैं।

सुना है माइसोर विश्वविद्यालय के वाइस चांसलर डाक्टर सर ब्रजेन्द्रनाथ

सील जाति से नाई है। यदि उनको उनका पैतृक व्यवसाय करने पर बाध्य किया जाता तो देश की प्रतिभा की कितनी बड़ी हानि होती? कलीराम नामक एक २० वर्षीय अहीर नवयुवक ने गतयुद्ध में विक्टोरिया क्रास प्राप्त किया था। क्या उसे उस का पैतृक व्यवसाय भेड़-बकरी पालने पर विवश करना हितकर होता?

कुछ लोग कहा करते है कि जाति-भेद न होता तो हिन्दू जाति नष्ट हो जाती। उनसे हम यही कहेंगे कि हिन्दू जाति जात-पाँत के कारण नहीं, वरन् धार्मिक सहिष्णुता, विचार-स्वातंत्र्य, श्रेष्ठ संस्कृति, उच्च तत्वज्ञान, और अद्वितीय ब्रह्मवाद जैसे अपने दूसरे सद्गुणों के कारण ही जीवित रही है, यद्यपि इसका यह जीवन जात-पॅात के रोग ने मृत्यु से भी बुरा बना रखा है।

अठारहवाँ परिच्छेद

भारत के राजनीतिक इतिहास पर एक दृष्टि

आज से कोई ढाई सहस्त्र वर्ष पूर्व हमारे एक बहुत बडे पूर्वज ने, वस्तुतः संसार के सब से बडे महापुरुष ने, जाति-भेद की विषमताओं और हानियों के विरुद्ध अनवरत प्रचार किया था। कारण यह कि उस की दूरदर्शी आँख ने जाति-भेद के भीतर हिन्दू समाज के विनाश का बीज देख लिया था। संपूर्ण भरत खण्ड उस का मतानुयायी बन गया था। जब तक भारत में बौद्ध धर्म का प्रचार रहा यह देश स्वतंत्र और सबल बना रहा। तब भी विदेशी आक्रमणकारियों के लिए यह देश उसी प्रकार खुला पड़ा था जैसा कि आज है। परन्तु यह इतना बलवान था कि किसी को भी इसकी ओर आँख उठाकर देखने का साहस न होता था। कोई १२०० वर्ष तक भारत स्वाधीन एवं अखण्ड बना रहा। महाराज अशोक का साम्राज्य अराकान से हिन्दूकुश तक फैला हुआ था। इतना बड़ा प्रदेश भारत में आँग्रेजों के अधीन भी नहीं था। भगवान बुद्ध की शिक्षा के प्रभाव से जाति-भेद रुपी पिशाच दब गया था और फलतः हिन्दुओं मे पराक्रम एवं पुरुषार्थ की ऐसी वृद्धि हुई थी कि सत्तर सत्तर वर्ष के बुड्ढे बीहड़ बनों और दुर्गम पर्वतमालाओं को लाँघ कर तिब्बत, चीन और संसार के दूसरे देशों में धर्म प्रचार के लिए पहुँचे थे। उस समय चीन, जापान, ब्रह्मा, लङ्का, अफ़गानिस्तान, खुतन और मध्य एशिया प्रभृति नाना देशों की समूची प्रजा भारत को अपनी पुण्य भूमि समझकर वंदना करती थी। परन्तु ज्यों ही देश की शत्रु स्वार्थी पुरोहित-शाही ने बौद्ध धर्म के विरुद्ध षड्यंत्र रचकर जाति-भेद को फिर से प्रचलित किया और भारत का शासन-सूत्र पुष्यमित्र जैसी पुरोहित शाही के हाथ की कठ पुतलियों के हाथ में आया त्योंही देश अधःपतन की ओर अग्रसर होने लगा। भारत पर उत्तर-पश्चिम से आक्रमण होने लगे। रक्त की नदियाँ बह

निकलीं। हिन्दू राष्ट्र उन नृशंस विदेशियों के प्रबल प्रहार को रोकने में असमर्थ हो गया। तब उस महान हिन्दू-राष्ट्र की—हाँ, उस राष्ट्र की जिसकी अध्यात्मिक ज्योति अब तक भी समूचे एशिया महाद्वीप को आलोकित कर रही है और जो सुदूर नार्वे एवं मेक्सिको तक पहुँची थी—इस लज्जाजनक अधोगतिका, इस की चिरकाल-व्यापी दासता का, क्या कारण हुआ? भारत का जल-वायु वही है, वही हिमालय और वही गङ्गा है, वही हम हैं, वरन् हमारी संख्या तब से बहुत बढ़ गई है, फिर भी हम संसार में सब से अशक्त राष्ट्र है। अवश्य ही हमारी समाज रचना में कोई दोष आगया है, जिस से हम इतने अशक्त हो गये है। हमारे मानसिक दृष्टिकोण में अवश्य कोई भारी त्रुटि है, जिस से हम संख्या में बहुत अधिक होने पर भी मुट्ठी भर विदेशियों से हार खाते रहे हैं।

अन्तर्मुख होकर थोड़ा भी विचार करने से हमारी दरिद्रता, हमारी राजनीतिक दासता और हमारी सामाजिक अधोगति का वास्तविक रहस्य हम पर प्रकट हो जायगा। भारत अभी तक भी वही भारत है जो कभी समूचे संसार का गुरु था। समाज-रचना के सिवा हमारी और कोई भी चीज़ नहीं बदली। परन्तु इस समाज व्यवस्था ने हमें घुन की तरह खा डाला है। उसने भारत की एकता के आघर को ही नष्ट कर डाला है। उस ने भाई को भाई से लड़ा दिया है। भाई को भाई का द्रोही बना दिया है। हमारे जिस उच्च चरित्र की किसी समय भूमण्डल में धाक थी वह भ्रष्ट हो गया है। हमारा जीवन दुःखी हो गया है। हम कुत्ते और बिल्ली की भाँति लड़ रहे हैं।

हम लोग अपने दोषों को आप नहीं देख सकते। हम उस पैशाचिक शक्ति के चंगुल में फँसे हुए हैं जिसने हमारे भीतर सामाजिक फूट और भेद उत्पन्न किए है और जो उस फूट और उन प्रभेदों को अपने नीच स्वार्थ के लिए सदा बनाए रखना चाहती है। परन्तु एक निष्पक्ष विदेशी जिसे हमारी समाज-रचना से कुछ लेना देना नहीं, बता सकता है कि हमारे सामाजिक संगठन को छिन्न भिन्न करने वाली एकमात्र चीज़ हमारी जात-पाँत है। यह एक ऐसी महा व्याधि है जिस का फलाफल इतिहास के पन्नों में पढा जा सकता है। यह वह क्षयरोग है जिसने राष्ट्र को छोटे छोटे टुकड़ों में बाँटकर उसकी मिलकर काम करने की शक्ति को नष्ट कर डाला है। वन के पशु भी शत्रु को देखकर उसका सामना करने के लिए इकट्ठे मिल जाते हैं। मेल की वह बुद्धि जो भेड़ियों और भैंसों

तक में अब तक पाई जाती है, हम मनुष्य कहलाने वाले प्राणियों में लुप्त हो गई है। सोचिए तो सही, उत्तर-पश्चिम की ओर से मुट्ठी पर मुसलमान उठते हैं और अपने से कई गुना अधिक संख्या वाले हिन्दुओं को भगा देते हैं। इसका कारण क्या है? देखिए एक विदेशी विद्वान क्या कहता है:—

"विभिन्न वर्णों और उपवर्णों को सदा के लिए एक दूसरे से पृथक् पृथक् रखने का परिणाम यह हुआ है कि रंग-रूप, आकार-प्रकार, और रहन-सहन की दृष्टि से हिन्दुओं का आपस में कुछ भी सादृश्य नहीं रहा। दूसरे देशों की भाँति यह धनी और निर्धन का, नगर और ग्राम का, स्वामी और सेवक का प्रश्न नहीं। इन का अन्तर तो उस से भी कहीं अधिक गहरा है। किसी एक ज़िले या नगर को ले लीजिए। वहाँ के लोगों को देखकर आपको ऐसा नहीं जान पड़ेगा कि वे सब एक ही राष्ट्र के हैं। वे आप को विभिन्न राष्ट्रों का—वरन् मनुष्य-जाति के विभिन्न वंशों का—समुदाय प्रतीत होंगे, जो एक दूसरे के साथ न खाते-पीते और न ब्याह-शादी करते हैं, और जिन का संसार केवल उन की अपनी ही छोटी-सी बिरादरी है। इस में कुछ भी अतिशयोक्ति न होगी, यदि हम कहें कि जाति-भेद ने भारत के अधिवासियों को २००० से भी अधिक जातियों में बाँट रखा है। इन जातियों का आपस में उस से बढ़कर संबंध नहीं जितना चिड़ियाघर के पशु-पक्षियों का आपस में होता है।

"जो देश सामाजिक रूप से इस प्रकार छोटी छोटी जातियों और उपजातियों में और राजनीतिक रूपसे अनेक छोटे छोटे रजवाड़ों में बँटा हुआ था उसके भाग्य में पहिले ही प्रबल आक्रमणकारी के सामने हार खा जाना स्पष्ट रूपसे बदा गया था। यह आक्रमणकारी इस्लाम था। मुसलिमों को एक बड़ा लाभ था। वे हिन्दुओं के विरुद्ध सब इकट्ठे हो जाते थे। इस्लाम हिन्दू-धर्म का बिलकुल उलट है। उसका सिद्धान्त है कि सब मोमिन (मुस्लिम) भाई हैं। इसने अछूत और नीच वर्ण की बहुत बड़ी संख्या को आकर्षित किया। इस्लाम ग्रहण कर लेने पर उन लोगों की स्थिति शासकों के बराबर हो जाती थी। भारतीय मुसलमानों की संख्या के इतना अधिक होने का कारण यही है। ये अधिकांश में उन हिन्दुओं के वंशज हैं जिन्होंने विभिन्न कालों में इस्लाम ग्रहण किया था।"
(Clashing Tides of colour, by Lothrop Stoddards. pp. 285-286.)

अब तनिक इतिहास के पन्ने उलटिये ।

सातवीं शताब्दी की बात है । सिंध–नरेश दाहर के पिता चचने पण्डे–पुरोहितों की बहकावट में आकर सिंध के जाटों, मेड़ों और लुहाणों को शूद्र ठहरा दिया था। उनके लिए घोडे की सवारी करने, शस्त्र धारण करने, सुन्दर वस्त्राभूषण पहनने और सेना में भरती होने का निषेध कर दिया था । इस से देश में बड़ी द्वेषागिन फैल गई थी । अवसर पाकर जब दाहर के समय में अरब के अबुल क़ासिम ने सिधं पर आक्रमण किया तब दाहर ने प्रजा को देश-रक्षा के लिए लड़ने को कहा । परन्तु ब्राह्मणों ने कहा, हम आप की विजय के लिए देवता से प्रार्थना कर सकते है, लड़ना हमारा काम नहीं । वैश्यों ने कहा, हम से रुपया-पैसा और खाद्य–सामग्री बेशक ले लीजिए, हम युद्ध करना नहीं जानते । शूद्रों ने कहा, हमें क्या—किसी का राज्य हो, हम तो सदा दास ही बने रहेंगे; हमारा काम तो शास्त्रों ने द्विजों की सेवा ही ठहराया है । बस लड़ने के लिए थोडे से क्षत्रिय निकले । उन में भी आधी स्त्रियाँ थीं, कुछ बच्चे थे, कुछ बूढे थे और कुछ रोगी थे जो लड़ न सकते थे । फलतः राजा की हार हुई । वह युद्ध में मारा गया । उस की दो लड़कियाँ पकड़ी जाकर खलीफ़ा के अन्तःपुर मे पहुँचाई गईं । (देखो "चच नामा" और डाक्टर ईश्वरी प्रसाद कृत "मुस्लिम रूल इन इण्डिया ।")

इस संबंध में एक बात और भी ध्यान देने योग्य है । अरब लोग इतने दिन तक सिंध पर चढ़ाई की तैयारी करते रहे । उन्होंने पहले अपने गुप्तचर सिंध में भेजकर यहाँ की वास्तविक दशा का पता लगा लिया और अनुकूल अवसर देखकर आक्रमण किया । इस के विपरीत दाहर ने यह जानने का कभी यत्न ही न किया कि उस के पड़ोसी देश अरब में क्या हो रहा है । वह यह यत्न कर भी नहीं सकता था । कारण यह कि धर्म–भ्रष्ट हो जाने के डर से कोई हिन्दू गुप्तचर बन कर अबर में जाने को तैयार न हो सकता था । जो ब्राह्मण हिन्दू कहार के हाथ का भोजन खाकर पतित हो जाता है वह मुसलमान के हाथ का या उस का छुआ खाकर हिन्दू कैसे बना रह सकता था ?

२. शेरशाह सूरी के समय में हेमचन्द्र (हेमूँ बक्क़ाल) नामक एक बनिए ने अपना नाम विक्रमादित्य रख कर हिन्दू–राज्य स्थापित करना चाहा । उसने दिल्ली आदि कई स्थानों पर मुग़ल सेनाओं को हराया । परन्तु राजपूतों ने उसकी सेना में भरती होने से इंकार कर दिया । वे कहते थे कि हम क्षत्रिय होकर

नीच वर्ण के वैश्य के अधीन काम नहीं कर सकते। फलतः जब हेमचन्द्र को बैरम खाँ से हार हुई तो उन्हीं राजपूतों को मुसलमानों का दास बनने में किसी प्रकार के अपमान का अनुभव न हुआ।

३. काठियावाड़–गुजरात का एक ढेढ़ (अछूत) जब तक हिन्दू रहा, वर्ण-व्यवस्था के ठेकेदारों ने उसे उठने न दिया। परन्तु ज्यों ही मुसलमान बनकर उस ने अपना नाम नासिरुद्दीन खुसरो रखा त्यों ही उसने खिलजी वंश की सारी सत्ता अपने हाथों में ले ली। हिन्दू रहते हुए वह किसी क्षत्रिय स्त्री का स्पर्श तो दूर दर्शन भी न कर सकता था। मुसलमान बनकर उसने राजा कर्णराव की स्त्री देवल देवी के साथ, जिसे अलाउद्दीन ले आया था, विवाह कर लिया। उसने खिलजी राजघराने की स्त्रियाँ अपने बंधु–बान्धवों में बाँट दीं। वह कुरान के उपर मूर्तियाँ रखाया करता था। वह चाहता था कि हिन्दू–राज्य की पुनः स्थापना करे। पर सवर्ण दिन्दुओं ने एक अछूत की सहायता करने से इंकार कर दिया। इसी प्राकार मलिक काफूर भी एक नीच जाति का गुजराती हिन्दू था जो मुसलमान हो गया था।

४. जब अहमद शाह अब्दाली ने भारत पर आक्रमण किया और पानीपत के मैदान में सदाशिवराव भाऊ ने उस का सामना किया, तब मराठों की वीरता और भाऊ के शौर्य को देखकर अब्दाली के छक्के छूट गये। उसने घोडे पर से उतर कर ईश्वर से प्रार्थना की कि यदि इस बार मैं सकुशल स्वदेश को लौट सकूँ तो फिर कभी भारत की ओर मुँह न करूँगा। इसी बीच में, एक दिन रात्रि के समय उसने मराठों की छावनी पर दृष्टि दौड़ाई तो क्या देखा कि सैकड़ों–सहस्त्रों स्थानों पर थोड़ी थोड़ी आगें जल रही है। उसने पूछा, ये क्या है? उसे बताया गया कि मरहटा लोग एक दूसरे के हाथ का बना भोजन नहीं खा सकते; इसलिए वे अपना अलग अलग भोजन बना रहे हैं।

यह सुन अब्दाली को ढाढ़स बँध गई। वह बोला, जो लोग आपस में इकट्ठा खा नहीं सकते उनको जीतना क्या कठिन है। दूसरे दिन जब बारह बजे तो मुसल्मानों ने तो खुरजी में से निकाल कर, घोडे पर बैठे बैठे ही, रोटियां खा लीं। परन्तु मरहटे अपना अपना खाना बनाने में लग गये। अब्दाली ने अवसर देख एक दम उनपर धावा बोल दिया। कोई मरहट्टा नहा रहा था, कोई दाल छौंक रहा था, कोई आटा गूँघ रहा था, कोई खा रहा था। लाखों

सिपाहियों में से दो सहस्र भी अब्दाली का सामना करने के लिए तैयार न हो सके। फलतः मराठा सेना में भगदड़ मच गई। भाऊ मारा गया।

भरतपुर के राजा सूरजमल ने भाऊ को परामर्श दिया था कि अब्दाली के साथ आमने सामने होकर लड़ाई करना ठीक नहीं, उस पर छिप कर छापे मारने चाहिएँ। भाऊ ब्राह्मण था और सूरजमल जाट। भाऊ ने सूरजमल के परामर्श को ठुकराते हुए कहा था—

दोशाळो फाटो भलो साबत भलो न टाट।
राजा भया तो क्या हुआ अन्त जाट का जाट॥

ठीक है, एक जाट शूद्र का दिया सत्परामर्श भी उच्च ब्राह्मण क्यों मानता!

इतिहास में ऐसे ही बीसियों और उदाहरण हैं जहाँ जाति-भेद के कारण हिन्दुओं की पराजय हुई। उन सब का उल्लेख करना यहाँ कठिन है। जिस मराठा राज्य की स्थापना महाराज शिवाजी ने इतने यत्न से की थी उस के विनाश का मुख्य कारण भी जाति-भेद ही था। पेशवा ऊँचे वर्ण के ब्राह्मण थे और होलकर, भोंसले, शिन्दे आदि सरदार शूद्र। सर यदुनाथ सरकार और लेथब्रिज आदि इतिहासकारों ने इस बात को स्पष्ट रूप से स्वीकार किया है। सरकार की पुस्तक "शिवाजी एण्ड हिज़ टाईम्स" में लिखा है:—

"शिवाजी के प्रयत्न से समूचे देश में एक अस्थायी उत्साह फैल गया और हमने समझ लिया कि देश संगठित हो गया। परन्तु समूचे समाज रूपी शरीर में पड़ी हुई दरारें और छिद्र गुप्त रूप से कार्य करते हैं। उन के कारण हम किसी उच्च आदर्श को चिरकाल तक बनाए नहीं रख सकते। शिवाजी ने इन दरारों को वैसी की वैसी बनाए रखना चाहा। वह मुग़लों के आक्रमण से एक ऐसे हिन्दू-समाज की रक्षा करना चाहता था जो जाति-भेद के विभाजन और अलगाव को ही जीवनका श्वांस समझता है। वह विषमता से भरे हुए गङ्गा-जमुनी समाज को समूचे भारत का बिजेता बनाना चहता था। इस लिए मानो वह बालू की दीवारें तैयार कर रहा था। वह असंभव को संभव बनाने जा रहा था। जात-पाँत से बुरी तरह दबे हुए, भीतर से फटे हुए और बिखरे हुये हिन्दू समाज का भारत जैसे बिशाल महाद्वीप पर स्वराज्य स्थापित करना मनुष्य की शक्ति से बाहर और प्रकृति के नियम के विरुद्ध है।" (पृष्ठ ४३०.)

यह ठीक है कि १५ अगस्त १९४७ के बाद से पाकिस्तान और भारत दो अलग अलग देश बन गये हैं और अधिकांश मुसलमान भारत से निकल कर पाकिस्तान चले गये हैं, पर यह भारत की राजनीतिक समस्या का कोई हल नहीं। अब भी भारत में चार करोड़ के लगभग मुसलमान रह गये हैं। उन के अतिरिक्त ईसाई, यहूदी और पारसी आदि भी कई ऐसी जातियाँ हैं जिनका हिन्दुओं ने सामाजिक बहिष्कार कर रखा है। कहने का तात्पर्य यह है कि जिन कारणों से देश का विभाजन हुआ है वे अभी तक भी पूर्ववत हिन्दुस्थान में वर्तमान है। यह कहना बडे दुस्साहस की बात होगी कि भारत के किसी राजनीतिक दल विशेष ने अँग्रेज़ों को भारत से निकाला है। यह तो अन्तःराष्ट्रीय स्थिति का परिणाम है कि भारत को स्वतंत्र होने का अवसर मिला है। नहीं तो हम पूछते है कि पाकिस्तान ने कौनसा त्याग किया था जो उसे स्वतंत्रता मिली है ? लंका, ब्रह्मदेश, इण्डोनेशिया और फलस्तीन की स्वतंत्रता किस की कुरबानियों का फल है ? सन् १९४२ में जब अँग्रेज़ों की स्थिति बहुत ही भयावह थी, जब जर्मनी और जापान ने उन का नाक में दम कर रखा था, तब उन्होंने किसी दल के दबाव से भारत को न छोड़ा, तो विजयी होने के बाद वे कैसे किसी के डर से भारत छोड़ सकते थे ? भारत ने यदि अपने बल-बूते से स्वतंत्राता प्राप्त की होती तो १५ आगस्त '४७ के बाद देश की वह दुर्दशा न होती जो अब हुई है। धन-जन की जितनी हानि इस कथित अहिंसात्मक क्रान्ति में हुई है उतनी किसी बडे से बडे युद्ध में भी न हुई थी। हम देखते हैं कि जिस जाति से राजसत्ता छिनती है वह दुखी होती है, जैसा कि सन् १८५७ में भारतवासी हुए थे, और जिस के हाथ में वह सत्ता जाती है वह जाति सुखी हो जाती है। पर हमारे यहाँ बिलकुल उलटा हुआ है। हम तो दुःखी हुए हैं और अँग्रेज़ सुखी। यदि हमने अपने बाहुबल से यह स्वतंत्रता प्राप्त की होती, तो हम कभी इतने दुःखी न होते। स्वतंत्रता रुपी अमृतफल प्राप्त करने के पहले ही हम इतने योग्य और समर्थ हो चुके होते कि हम उस अमृत फल को सरलता से पचा सकते। इस से स्पष्ट है कि हमारी स्वतंत्रता की नींव बहुत कच्ची है। यदि हमने अपने दोषों को दूर कर के और अपने चरित्र को ऊँचा उठाके, अपने को स्वतंत्रता का पात्र न बनाया तो यह बहुत दिन तक हमारे पास न ठहर सकेगी। हम फिर किसी की दासता में जा फसेंगे।

सब से बड़ी चट्टान जिसके साथ टकरा कर हमारी स्वतंत्रता रूपी नैया के चकना चूर हो जाने का भय है वह साम्प्रदायिक समस्या है। जब तब भारत में बसने वाले विभिन्न सम्प्रदाय आपस में घुल मिल कर एक नहीं हो जाते, तब तक यहाँ कभी सुख-शान्ति न रह सकेगी। इन सम्प्रदायों और दलों के मिलकर रहने में उन का धर्म-विश्वास नहीं, वरन् सामाजिक बहिष्कार अर्थात् जाति-भेद ही बाधक है। इस जात-भेद के कारण मनुष्य को धर्मान्तर के साथ साथ समाजान्तर भी करना पड़ता है। मुसलमान हो जाने वाले हिन्दू को अपने भाई-बहन, और पुत्र-कलत्र को भी छोड़ देना पड़ता है। यदि जाति-भेद न हो, तो कलमा-कुरान को मानता हुआ भी वह अपने भाई बंधुओं के साथ ही रह सकता है।

हमारे राजनीतिक नेता एक बड़ी भूल करते रहे हैं। वे साम्प्रदायिक वैमनस्थ का एकमात्र कारण आर्थिक समझते रहे हैं। वे यह नहीं देख सके कि यदि रोटी के लिए ही यह छीन-झपट होती, यदि धनी और निर्धन का ही यह प्रश्न होता, तो निर्धन लोग धनियों को मारते और श्रमिक लोग पूँजी पतियों को लूटते। पर हमने देखा क्या है? निर्धन मुसलमान धनी मुसलमान को न मार कर निर्धन हिन्दू को ही मारता है और श्रमिक हिन्दू पूँजी पति हिन्दू को न लूट कर श्रमिक मुसलमान का ही घर जलाता है। आगे मैं कुछ ऐसी घटनायें उपस्थित करता हूँ जिन के प्रकाश में पाठक स्वयं देख सकेंगे कि सारे उपद्रव का मूल करण क्या है।

१. कुछ वर्ष हुए मैंने श्री मुहम्मद अली जिन्ना से पूछा था कि चीन में भी मुसलमान बसते हैं और इँग्लेंड में भी लार्ड हेडले जैसे मुसलमान हैं। पर वे लोग कभी नहीं कहते कि "अँग्रेज़ी हमारी भाषा नहीं, हमारी भाषा अरबी है; नेलसन और क्रामवेल हमारे महापुरुष नहीं, हमारे महापुरुष महमूद गज़नवी और रुस्तम-असफन्द यार हैं; हमारी संस्कृति, हमरी सभ्यता, हमारा इतिहास, हमारे सामाजिक और राजनीतीक हित सब ईसाई अँग्रेजो से भिन्न हैं।" पर क्या कारण है कि भारत में ज्यों ही कोई हिन्दू इस्लाम धर्म ग्रहण करता है वह कहने लगता है कि "हिन्दी मेरी भाषा नहीं, मेरी भाषा उर्दू-फ़ारसी है; राम-कृष्ण मेरे महापुरुष नहीं, मेरे महापुरुष रुस्तम और हारूँ हैं; मेरा इतिहास, संस्कृति, राजनीतिक और आर्थिक हित सब हिन्दुओं से अलग हैं?"

इस का उत्तर देते हुए मि. जिन्ना ने कहा था कि "इसका कारण यह है कि इंग्लेंड में जब कोई व्यक्ति इसलाम ग्रहण करता है तो उसका सामाजिक बहिष्कार नहीं कर दिया जाता, लोग उसे म्लेच्छ नहीं कहने लगते; पर भरत में तो जब से हम मुसलमान बने हैं, हमारा पूरा पूरा सामाजिक बहिष्कार है। इसी से हमारी भाषा, हमारी सभ्यता, हमारी संस्कृति, हमारा इतिहास सब कुछ हिन्दुओं से अलग हो गया है। जिस शिवाजी और प्रताप को हिन्दू अपना महापुरुष समझते हैं, हम उनको अपना शत्रु मानते है, और जिस औरङ्ज़ेब को हम अपना महापुरुष मानते हैं उसे हिन्दू अपना शत्रु समझते है। जो हिन्दुओं की हार है वह हमारी जीत है, जो हमारी हार है वह हिन्दुओं की जीत है। इस सामाजिक बहिष्कार से ही हमारे राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक हित भी हिन्दुओं से भिन्न हो गये हैं।"

२. देहरादून की बात है। मैं एक मुसलमान हलवाई की दूकान पर गया और दो आने की मिठाई माँगी। हलवाई पाँच मिनट मुझे सिर से पाँव तक देखता रहा। फिर बोला कि मैं मुसलमान हूँ। मैंने कहा, आप मुसलमान हैं तब क्या हुआ, आप साँप तो नहीं है? वह बोला, नहीं, साँप तो नहीं। मैंने कहा, तो फिर मिठाई दीजिए। वह बोला—यह बात है! मैंने कहा, हाँ यही बात है। इस पर उसने अपने नौकर को वापस बुला लिया और कहा कि तू बैठ जा, मैं आप ही मिठाई देता हूँ। तब वह उठा और कोई सेर भर मिठाई ला कर मुझे देने लगा। मैंने कहा, इतनी नहीं चाहिए, केवल दो आने की दीजिए। वह बोला अजी पैसे की बात रहने दीजिए, आप मिठाई खाइए। मैंने उसकी कृपा के लिए उसका धन्यवाद किया। वह बोला, इस विचार के क्या आप ही अकेले हिन्दू हैं या और भी हैं? मैंने कहा, और भी सैकड़ों हैं; हमारा जात-पाँत तोड़क मण्डल इस प्रकार की व्यर्थ छूत-छात को नहीं मानता। तब वह बोला कि यदि सब हिन्दू आपकी बात मानलें तो फिर हिन्दू-मुसलमान का सारा झगड़ा ही समाप्त हो जाय।

३. एक समय की बात है, मैं रेल में लाहौर से अमृतसर जा रहा था। मेरे डिब्बे में एक आर्य समाजी पण्डित, एक सिख भाई और एक मुसलमान वकील बैठे थे। वकील महाशय बड़ी क्लिष्ट उर्दू बोल रहे थे। मैंने उनसे कहा कि आप आकार-प्रकार और रंग-रूप से पंजाबी लगते हैं, आप पंजाबी

में बात क्यों नहीं करते? वे बोले, मै पंजाबी नहीं, मैं अलीगढ़ी हूँ। मैंने कहा, आपका उच्चारण अलीगढ़ का नहीं, पंजाबी है। इतने में पण्डितजी बोले "उर्दू लिपि बहुत सदोष है, इस में एक ही ध्वनि 'स' के लिए 'सीन' 'सुआद' और 'से' तीन अक्षर है।" वकील महोदय ने उत्तर दिया—"नहीं, तीनों की ध्वनि में अन्तर है; अरब और ईरान के लोग उनका ठीक उच्चारण कर सकते है; हम भारतीय नहीं।" इस पर मैंने कहा, पंजाबियों को आपस में पंजाबी भाषा में ही बात-चीत करनी चाहिए। इस पर वकील महाशय बोले—"पंजाबी गॅवारू भाषा है।" यह सुन सिख भाई क्रोध से बोल उठे, "गँवारू तुम्हारी माँ की होगी, तुम्हारी बहन की होगी, हमारी पंजाबी तो बहुत अच्छी है।" झगड़ा बढ़ते देख, उसे शान्त कराने के लिए मैंने वकील महोदय से कहा—"छोड़िए इस भाषा के प्रश्न को। मै आप से पूछता हूँ कि "यदि हिन्दू मुसलमानों से छूत-छात छोड़ दे और दोनों का खान-पान इकट्ठा हो जाय तो क्या आप समझते है कि इस से साम्प्रदायिक वैमनस्य बढेगा या कम हो जायगा?" सच जानिए कि कहाँ तो वे अरबी-फ़ारसी शब्द-मिश्रित क्लिष्ट उर्दू बोल रहे थे और कहाँ वे एकदम मेरे गले से लिपट गये और पंजाबी भाषा में प्रेम से बोले—"यह गल्ल हो जाय तो बाकी रह ही की जाय?" अर्थात् "यदि यह बात हो जाय तो फिर बाक़ी झगड़ा ही क्या रह जाय?" उस दिन मुझे ज्ञात हुआ कि मुसलमानों की ओर से हिन्दी के विरोध का मूल कारण क्या है।

४. सन् १९४६ की बात है, बहावल नगर कालिज के मुसलमान प्रिंसिपल महोदय को मैंने अपने यहाँ भोजन के लिए सपत्नीक निमंत्रित किया। जब वे आए तो मैने कहा कि "देखिए, मेरी धर्मपत्नी आप से परदा नहीं करती; आपकी पत्नी तो बुरका पहने है? क्या आपको मुझ पर विश्वास नहीं?" वे बोले—"अविश्वास की कोई बात नहीं; पर मेरी स्त्री को बुरके के बिना चलने का अभ्यास नहीं। ग़नीमत समझिए, वह आप के घर आ गई है; अगली बार आप की आपत्ति भी दूर हो जायगी।" जब हम सब इकट्ठे एक मेज़ पर खाने बैठे तो वे बडे प्रसन्न हुए और बोले कि "यह पहला अवसर है कि जब मैं किसी हिन्दू-घर में अपने को अछूत अनुभव नहीं कर रहा हूँ; नहीं तो सब कहीं हमें दूर-दूर ही किया जाता है।" वे फिर मुझसे पूछने लगे कि, पाकिस्तान के विषय में

आप का क्या मत है? मैंने कहा, " सिद्धन्त रूप से मैं इसे हानिकारक समझता हूँ, क्योंकि भारत के दो टुकड़ों में खंडित हो जाने से पाकिस्तान और हिन्दुस्तान दोनों निर्बल हो जायँगे और कोई भी शत्रु उन को सुगमता से दबा सकेगा।" इस पर वे बोले, " तो आप चाहते है कि मुसलमान आपके साथ रहें ? पर हमारे लिए आप के समाज में स्थान कहाँ है ? ब्रह्मण, क्षत्रिय वैश्य और शूद्र ये चार वर्ण और पाँचवें अछूत तो आप में पहले ही है, हमें क्या आप छठे स्थान पर म्लेच्छ बना कर रक्खेंगे ?"

५. सन् १९४७ की बात है। एक दिन रात्रि को भोजन के उपरान्त मैं लाहौर की लोअरमाल सड़क पर टहल रहा था। दो मुस्लिम युवक भी आपस में अँग्रेज़ी भाषा मे बाते करते हुए जा रहे थे। उन में से एक युवक नैशनलिस्ट अर्थात् राष्ट्रवादी मुसलमान था और दूसरा मुस्लिम लीगी था। नैशनलिस्ट, लीगी से कह रहा था, " आप कैसे कहते है कि हिन्दू और मुसलमान दो अलग अलग राष्ट्र है, क्या धर्म-भेद होने से ही राष्ट्र-भेद हो जाता है ? हाँ, आप चाहें तो पंजाबी बोलने वाले हिन्दू और मुसलमानों को दूसरा राष्ट्र कह सकते है।" इस पर लीगी युवक बोला—" मै तो हिन्दू और मुस्लिम केवल दो ही राष्ट्र कह रहा था, पर आप तो भारत को भाषा की दृष्टि से पाँच-सात राष्ट्रों मे बाँट देना चाहते है। आप जानते नहीं, आप को किस जाति से वास्ता पड़ा है। ये वे लोग है जिन्होंने छः करोड़ मनुष्यों को अछूत बना रखा है। ये हम मुसलमानों को अछूतों से भी बुरा बना देंगे। देखिए, मैं आर्य नगर में रहता हूँ। मेरे सब पड़ोसी हिन्दू हैं। पर उनका मेरे साथ कोई मेल-जोल नहीं, मेर मरने-जीने का उन को कुछ पता नहीं। क्या ऐसे लोग एक राष्ट्र कहला सकते हैं ?"

लाहौर से " ज़मज़म " नामक एक पत्र निकला करता था। वह लीगी मुसलमानों का नहीं, राष्ट्रवादी मुसलमानों का पत्र था। उसने आपने फ़रवरी १९४७ के एक अंक में लिखा था कि " पाकिस्तान मुस्लिम लीग का ध्येय इसलिए बना कि हिन्दू ने मुसलमान का सामाजिक बहिष्कार किया और शताब्दियाँ बीत जाने के बाद भी उसे होश न आया कि वह क्या कर रहा है "। भारत के मुसलमानों का भारत के हिन्दुओं की अपेक्षा विदेश के मुसलमानों को अपने अधिक निकट और भाई समझने का कारण भी स्वयं

हिन्दुओं का अपना व्यवहार ही है । हिन्दुओं की कड़ी जात-पाँत के कारण ही मुसलमान को हिन्दू अपना भाई नहीं लगता । यही बात पाकिस्तान के विदेश मंत्री सर मुहम्मद ज़फ़रुल्ला * ने लेक सकसेस की सुरक्षा समिति में और श्री जिन्ना के व्यक्तिगत प्रतिनिधि श्री इस्फ़हानी ने अमेरिका में कही थी ।

आप पूछेंगे कि जात-पाँत को मानते हुए जब हिन्दुओं की विभिन्न जातियाँ इकट्ठी रह सकती है तो मुसलमान हिन्दुओं के साथ क्यों नहीं रह सकते ? इस का कारण यह है कि जिस प्रकार सब कोढ़ी-जिन में से किसी की नाक मे कोढ़ है, किसी के पैर में, किसी के हाथ की उँगलियों में-इकट्ठे रह सकते है पर कोई निरोग व्यक्ति उन कोढ़ियों के साथ मिल कर नहीं रह सकता, उसी प्रकार हिन्दुओं की जातियाँ-जो सब की सब जात-पाँत रूपी कोढ़ से पीड़ित है-इकट्ठी रह सकती है, पर मुसलमान, जिन में जात-पाँत का रोग नहीं, इन के साथ रहना स्वीकार नहीं कर सकते । द्विज ने शूद्र की आत्म-प्रतिष्ठा को ही कुचल डाला है । वह द्विज के हाथों होने वाली मानहानि का अनुभव करने में असमर्थ हो गया है । पर मुसलमान को यह अपमान अखरता है ।

कुछ हिन्दू अपनी बड़ाई छाँटते हुए कहा करते है कि हम अध्यात्मवादी हैं और पश्चिमी लोग जड़वादी; भारत त्याग-भूमि है और युरोप भोग-भूमि । पर उनका यह कथन भी सत्य नहीं । मानव-जीवन का संगठन, धन का वितरण, जीवन के लिए जिन भौतिक पदार्थों की आवश्यकता होती है उनकी उन्नति के लिए जनता की गठित तत्परता—ये सब प्रकृति की बातें हैं, आत्मा की नहीं । भौतिक पदार्थों पर ध्यान देने से ही इन बातों की उन्नति हो सकती है । यदि प्राचीन भारत धन-धान्य से भरपूर था तो निस्सन्देह प्राचीन हिन्दू भौतिक

* He said that the real roots of the trouble in India were in the Hindu caste system which resulted in discrimination against Muslims in every walk of life:—U. N. Debate on Kashmir, Jan. 24, 1948.

बातों पर ध्यान देते थे। यह ठीक है कि प्राचीन आर्य ऋषियों ने ब्रह्मज्ञान में बहुत उन्नति की थी। उन्होंने अनिषदों जैसे आध्यात्मिक ग्रन्थ संसार को दिए। पर प्रश्न यह है कि उपनिषदों की वह शिक्षा हिन्दू जनता के दैनिक जीवन में कहाँ तक स्थान पा रही है ? वे लोभ, मोह, अहंकार, क्रोध आदि का कहाँ तक दमन कर सके है ? कितने हिन्दू यश, ख्याति और स्वार्थ को छोड़कर मानव-समाज की निष्काम सेवा कर रहे है ? पाश्चात्य लोगों में दूसरे देशों को जीतने, साम्राज्य स्थापित करने और धनोपार्जन की लालसा अवश्य देखी जाती है। परन्तु उनमें निष्काम सेवा करने वाले नर-नारियों की संख्या भी हिन्दुओं से बहुत अधिक है। उनमें सैकड़ों—सहस्रों नर-नारी ऐसे है जो कोढ़ियों की सेवा मे लगे हुए है, जो बीहड़ बनों मे बसने वाले जंगली लोगों को लिखा-पढ़ा कर उत्तम नागरिक बनाने का यत्न कर रहे है, जो भारत के अछूतों का सच्चे अर्थ मे उद्धार कर रहे है, जो मानव समाज को प्लेग एवं यक्ष्मा जैसे भयंकर रोगों से मुक्ति दिलाने के लिए अपने जीवन को जोखिम में डाला कर प्रयोग शालाओं में काम कर रहे है। उन लोगों का-सा त्याग और निष्कामभाव आधुनिक हिन्दू-समाज में देखने को नहीं मिलता। यहाँ आज रामकृष्ण मिशन, आर्य समाज और सेवा-समिति प्रभृति जो संस्थाएँ परोपकार भाव से काम करती देख पड़ती है उनको भी पाश्चात्य लोगों की प्रथाओं से ही अनुप्रेरणा मिली है।

बात्त वास्तव में यह है कि दोष हिन्दू धर्म में नहीं। आवश्यकता हिन्दू-धर्म के परिष्कार की नहीं। आवश्यकता है हिन्दू समाज के सुधार एवं परिष्कार की। सामाजिक सगठन का मूलतः धर्म के साथ कोई संबंध नहीं, यद्यपि ऐतिहासिक कारणों से इसका धर्म के साथ संबंध जोड़ दिया गया है। इसलिए धर्म से स्वतंत्र रख कर समाज का पुनः संगठन करने की आवश्यकता है। प्रसिद्ध वैदिक विद्वान मैक्स मुलर भट्ट का मत है कि मनुस्मृति का जाति-भेद वेद में बिलकुल नहीं। वेद में ब्राह्मण की श्रेष्ठता और शूद्र की नीचता का कोई उल्लेख नहीं। उस में परस्पर खान-पान और ब्याह-शादी का भी कोई निषेध नहीं।*

* "If then, with all the documents before us, we ask the question, does caste, as we find it in Manu and at the present day, form part of the ancient religious teachings of the Vedas? We can answer with a decided No.

प्रोफेसर वाडिया कहते हैं कि जाति-भेद के अत्याचार के कारण उपनिषदों का उच्च ब्रह्म ज्ञान, और गीता की आचार-नीति केवल बातें ही बातें रह गई हैं। भारत ज़ोर तो देता है समूचे जड़ और चेतन जगत की एकता पर, किन्तु उसने पोषित किया है एक ऐसी समाज-रचना को, जिसने इस के बच्चों को शताब्दियों से अलग अलग कोठरियों में बंद कर दिया है। इसी समाज-रचना के कारण इस को विदेशी आक्रमणकारियों से हारें खानी पड़ी है। इनसे यह दरिद्र और दुर्बल हो गया है। सब से बुरी बात यह है कि इस समाज-रचना ने भारत में ऐसे मनुष्य उत्पन्न कर दिए हैं जो अस्पृश्य माने जाते है, जिनको देखने से ही हिन्दू अपवित्र हो जाता है। इसने भारत में भाई को भाई का हत्यारा बना दिया है।*

There is no authority whatsoever in the hymns of the Vedas for the complicated system of castes, no authority for the offensive privileges claimed by the Brahmin, no authority for the degraded position of the shudras. There is no law to prohibit the different classes of the people from living together, from eating and drinking together, no law to prohibit the marriage of people belonging to different castes; no law to band the offspring of such marriages with an indelible stigma."—Max Muller, "Chips from a German Workshop," II (1687), pp. 307-308.

* The high metaphysics of the Upanishadas and the ethics of the Gita have been reduced to mere words by the tyranny of caste. Emphasising the unity of the whole world, animate & inanimate, India has fostered a social system which has divided her children into watertight compartments, divided them from one another, generation to generation, for endless centuries. It has exposed her to foreign conquests, which have left her poor & week. And worst of all, she has become the home of untouchability and unapproachability, which have branded her with curse of Cain,". — Contemporary Indian Philosophy. p. 368.

उन्नीसवाँ परिच्छेद

प्रजातंत्र और जाति-भेद

क्या सिद्धान्तों की दृष्टि से और क्या प्रवृत्तियों की दृष्टि से लोक राज्य और जाति-भेद मे बड़ा भारी वैपरीत्य है। दोनों पद्धतियों के आदर्शों, अन्तरों, रीतियों और सामाजिक जीवन पर उनके प्रभावों की परीक्षा करने के पूर्व यह बताना परम आवश्यक है कि लोक राज्य या प्रजातंत्र कहते किसे है। यहाँ हमारा संबंध उन आदर्शों एवं सिद्धान्तो से है जिन पर समाज की लोकतंत्र धारणा आधारित है, उन संस्थाओं से नहीं—चाहे वे पार्लिमेण्टरी फ़ासिस्ट, या सोवियत हों—जिनके द्वारा विभिन्न राष्ट्रों ने उन आदर्शो एवं सिद्धान्तों को कार्यरूप में परिणत करने का यत्न किया है।

ऐसे समाज की भावना जिस में सब मनुष्य बराबर और अपनी सरकार के लिए उत्तरदायी हों, सभी देशों में वर्तमान रही है। अब यह बात भली भाँति प्रतिष्ठित हो चुकी है कि एक समय स्वयं भारत में भी प्रजातंत्र और गणतंत्र परम्पराएँ बहुत प्रबल थीं। यूरोप में प्रजातंत्र संस्थाओं का विकास ग्रीक और रोमन परम्पराओं से हुआ था। परन्तु ग्रीक और रोमन दोनों अपने अपने शासक-वर्गों में ही प्रजातंत्री थे, जिस प्रकार कि भारत में ब्राह्मण थे। यूरोप में वर्ग-भेद धीरे धीरे अन्तर्धान हो गये और उनके राजनीतिक कार्यों के प्रतिनिधि स्वरूप प्रजातंत्री समाज एवं राष्ट्र-राज्य क्रमशः प्रधान हुए। इसके विपरीत भारत में समय के साथ साथ वर्ग-भेद अधिकाधिक बडे होते गये। यूरोप में समाज ने विशाल बनकर राज्य की समूची जनता को अपने में ले लिया। उदाहरणार्थ, इँग्लेण्ड में पहले राजनीतिक समाज केवल उन्हीं प्रधान मुज़ारों (टेनेण्टस) का था जिनको प्रत्यक्ष रूपसे राज्य से भूमि मिली हुई थी। इस समाज को विशाल बनाकर उस में सब माफ़ीदारों को भी सम्मिलित कर दिया गया। इस संस्था के लचकदार होने से समाज प्रगतिशील बना रहा। ये माफ़ीदार और उनके साथ

नगरों के अधिवासी मिलकर राष्ट्र बनाते थे। फिर कालान्तर में इस संस्था को और भी विशाल कर दिया गया, जिस से उन्नीसवीं शताब्दी में पट्टेदार, इजारेदार और अन्य भी इस के भीतर आ गये। फिर ट्रेड यूनियन और मजदूर आन्दोलन प्रकट हुए। ये राष्ट्र के निम्नतम वर्गों की दूसरों के साथ समान अधिकार की अभिकामना थी। प्रतिनिधित्व के आधार रूप मे प्राप्त-व्यस्कों को मत प्रकाश की क्षमता मिल जाने से समाज का पूर्ण प्रसार हो गया।

एक बडे विद्वान ने प्रजातंत्र का लक्षण इस प्रकार किया है—"जनता का शासन, जनता के लिए शासन, और जनता द्वारा शासन।" 'जनता' शब्द का लक्षण इतिहास के विभिन्न कालों में मौलिक रूप से परिवर्तित होता रहा है। अब से कुछ ही काल पहले तक 'जनता' में स्त्रियाँ नहीं समझी जाती थीं। दक्षिण अफ्रिका मे अब भी वहाँ के मूल अधिवासियों को 'जनता' नहीं माना जाता। सोवियत् रूस में मजदूर वर्ग के सिवा किसी दूसरे को राजनीतिक अधिकार नहीं है। यही दशा इटली की भी है। इन सब परस्पर विरोधों के रहते हुए भी इस से इंकार नहीं किया जा सकता कि कम से कम सिद्धान्त रूप में अब 'जनता' शब्द उन प्राप्त-व्यस्क लोगों के समूचे समाज को प्रकट करता है, जो अपने और दूसरों के लिए सोच सकते है। इस परिभाषा का अब और अधिक विस्तार संभव नहीं।

इसलिए प्रजातंत्र का पहला स्वतःसिद्ध मत यह है कि राज्य वास्तव में सारे समाज—जनता—की संगठित शक्ति को दिखलाता है। राजनीतिक शक्ति और सामाजिक अधिकार व्यक्तियों, परिवारों या दलो में नहीं, वरन् सामूहिक समाज मे है। तब प्रजातंत्र का अर्थ होगा समाज की एक ऐसी अवस्था, शासन का एक ऐसा संगठन, सामाजिक संबंधों की एक ऐसी पद्धति जिसमें किसी भी एक व्यक्ति को अपने दूसरे मनुष्य-बंधुओं पर कोई सहजात अधिकार नहीं। इस से स्पष्ट हो जाता है कि 'जनता' का शासन प्रजातंत्र के लक्षण के रूप में केवल आंशिक सत्य है। प्रजातंत्र इस से कुछ अधिक वस्तु है। प्रजातंत्र इस मूलभूत एंव अतर्कनीय सिद्धान्त की अनुभूति है कि मनुष्य अपने आप में एक चरम फल है और समाज के संगठन का मौलिक सिद्धन्त है मनुष्यों की समष्टि के रूप में, समाज में अधिक से अधिक गतिशक्ति को, प्रत्येक मनुष्य पर एक व्यक्ति के रूप में, कम से कम रुकावट के साथ, उत्पन्न करना।

यह सत्य प्रजातंत्र का आधार है। इसे भली भाँति स्वीकार कर लेने के बाद, मानवी समता का भाव बिलकुल स्पष्ट हो जायगा। सब मनुष्य बराबर है, यह कोई नवीन सिद्धन्त नहीं। मानवी विचार के आरम्भ से ही यह किसी न किसी रूप में सब धर्म-मतों में प्रकट होता रहा है। महान मनीषी रूसो का मत था कि मानवी विषमता सभ्यता का परिणाम है। समता का सिद्धान्त सामाजिक प्रगति के सभी विचारों का आधार है। इसे एक महान सिद्धान्त के रूप में प्रतिपादित करने का श्रेय रूसो को ही है। वास्तव में रूसो आधुनिक लोकतंत्र का जनक है।

समता के शत्रुओं का आज भी आभाव नहीं। इस के सस्ते समालोचक कहा करते है कि यह प्रबलों के विशेषाधिकार लेने के लिए दुर्बलों की चिल्लाहट है। वैज्ञानिक बताते है कि समता शारीरिक रूप से असंभव है। कारण यह कि प्रत्येक मनुष्य अपने पूर्वजों का, देश-परम्परा का, पारिवारिक अवस्थाओं और सहज गुणों का परिणाम मात्र होता है। फिर कई दूसरे कहा करते है कि व्यक्तियों, राष्ट्रों और जातियों में असमता इतनी अधिक है कि समता का विचार—यदि समता का अर्थ यह है कि मनुष्य समान योग्यता और समान चरित्र वाले हैं या उनको ऐसा होना चाहिए—स्पष्ट रूप से न्याय-विरुद्ध है। इन प्रत्यक्ष सचाइयों से किसी को इंकार नहीं। मानवी समता का विचार वंश परम्परा, चरित्र और उन सब असंख्य हेतुओं की महत्ता से इंकार नहीं करता जो मनुष्य के जीवन को ढालते है। वह तो केवल इस बात पर बल देता है कि यदि मानव समाज को अपना पूर्णतम विकास करना है, तो प्रत्येक मनुष्य का आत्मगत निर्धारित मूल्य एक-सा है अथवा एक-सा होना चाहिए। यह वर्गों, उपवर्गों और व्यवसायों की असमता को, जन्म या अपरिवर्तनीय धंधों पर आधारित असमता को, स्वीकार करने से इंकार करता है। प्रजातंत्र जिस बात को दृढ़तापूर्वक कहता है वह अधिकारों, विशेष सुविधाओं और सुयोगों की समता है, प्रतिभा या चरित्र की समता नहीं। यह कोई नहीं कहता कि सब मनुष्य एक-से मोटे-लंबे और एक-से बुद्धिमान होने चाहिएँ। लोक-तंत्र यह कहता है कि सब को उन्नति के समान अवसर मिलने चाहिएँ।

प्रजातंत्री आदर्शों का महान कूट तार्किक नेपोलियन समता का लक्षण प्रतिभा के लिए खुला अवसर या व्यवसाय बताता है। परन्तु यह केवल अर्द्ध

सत्य है। प्रजातंत्र में समता प्रतिभाशाली व्यक्तियों के लिए खुले अवसर के साथ ही समाप्त नहीं हो जाती। इस में राष्ट्रीय चरित्र पर बहुत बड़ा प्रभाव रखने वाला राजनीतिक अधिकारों और वैधानिक स्थिति का महत्पपूर्ण सिद्धान्त काम करता है। कुछ मनुष्यों के जीवन का मूल्य अधिक और कुछ का कम लगाना अनिवार्य रूप से उन लोगों को पतित कर देता है जिनके जीवन का मूल्य कम समझा जाता है। यह वह सिद्धान्त है कि प्रजातंत्र जिस के स्पष्ट रूप से विरुद्ध है।

परन्तु जाति-भेद एक ही अपराध के लिए ब्राह्मण को बहुत हलका और शूद्र को बहुत कठोर दण्ड देता है। उदाहरणार्थ, यदि द्विज किसी को गाली दे तो उसे केवल थोड़ा सा जुर्माना करना ही पर्याप्त है। पर यदि शूद्र द्विज को गाली दे तो उस की जीभ काट डालने का और उसके मुँह मे जलती हुई दस उँगली की कील ठोंकने का दण्ड है।

कोई भी व्यवसाय करने की स्वतंत्रता और फलतः व्यवसाय पर आधारित पद-मर्यादा के विचार का प्रबल प्रतिवाद समता के सिद्धान्त से उत्पन्न होने वाला प्रजातंत्री समाज का एक दूसरा नियम है।

परन्तु जाति-भेद विभिन्न जातियों के लिए विभिन्न काम निश्चित करता है और इन कामों के साथ ऊँच-नीच का भाव बड़ी दृढ़ता से चिपटाए हुए है। जाति-भेद में काम की बाँट नहीं, काम करने वालों की बाँट है। जो ब्राह्मण का बेटा है उसे वेद को पढ़ने और पढ़ाने का ही काम करना चाहिए, चाहे उस में इस काम की योग्यता न भी हो। भङ्गी के बेटे को मैला उठाने का ही काम करना होगा, चाहे उस में डाक्टर बनने की ही क्षमता क्यों न हो। इस से स्पष्ट है, जाति-भेद राष्ट्र की सारी जनता को उन्नति के समान अवसर नहीं देता। इसलिए वह लोकतंत्र का उलट है।

तब प्रजातंत्र समाजका एक ऐसा संगठन है जिसमें सारी सत्ता क्या राज-नीत्तिक और क्या दूसरी—समाज की अखण्ड समष्टि के हाथ में रहती है। समता इस का प्रधान सिद्धान्त है। इस के प्रमुख नियमों का आधार यह निश्चित नैतिक सूत्र है कि प्रत्येक मनुष्य अपने आप में चरम फल है और राज्य स्वयं वहीं तक वांछनीय है जहाँ तक वह व्यक्ति को आत्मानुभूति का सर्वोत्तम अवसर देता है। यह जन्म या संपत्ति पर आधारित किसी भेद के

सिद्धान्त को स्वीकार नहीं करता। यह सब मनुष्यों को समान अवसर देने के पक्ष में है। इसकी प्रधान सामाजिक प्रवृत्ति समूहों की रुकावटों को तोड़कर प्रगति करते हुए उनको अधिक बडे समाज में परिणत कर देना है।

प्रजातंत्र पद्धति दूसरी पद्धतियों के सदृश अपनी धर्म एवं शिक्षा संबंधी नीतियों द्वारा कार्य करती है। क्योंकि राज्य समाज की संपूर्ण समष्टि से अभिन्न होता है, इसलिए प्रजातंत्र का शिक्षा-संवंधी आदर्श जाति-भेद से पूर्णतः भिन्न है। प्रजातंत्र निः शुल्क, अनिवार्य और सार्वभौमिक शिक्षा, समान सुविधाओं, सदोष व्यक्तियों के लिए विशेष ट्रेनिंग्ड् और कम समझदारों पर अधिक मनोयोग देने के पक्ष मे है। यह किसी भी प्रकार की वर्ग-शिक्षा की किसी ऐसी पद्धति को स्वीकार नहीं करता, जो पद-मर्यादा पर आधारित आत्मीयता को उत्साहित करती हो। इसके विपरीत, वर्ण-भेद का आदर्श शिक्षा को विशेष वर्णों तक सीमित रखना और उनमें अपने वर्ण की श्रेष्ठता की चेतना को विकसित करना है। वर्ण-व्यवस्था मे शूद्रों और स्त्रियों के लिए ज्ञान का निषेध है। यह शिक्षा का इजारा केवल एक विशेष वर्ण को ही सौंपती है।

अपनी धर्म-संबंधी नीति में भी प्रजातंत्र पद्धति पुरोहित के प्रभाव के विरुद्ध है, क्योंकि सत्य केवल एक ही धर्म तक सीमित नहीं; और संसार में अनेक धर्म है और रहेंगे। इसलिए प्रजातंत्र की प्रवृति सदा लौकिक होने की ओर रहती है। इसके पुरोहित के प्रभाव के विरुद्ध आक्रमण को बहुधा धर्म पर आक्रमण समझ लिया जाता है। जहाँ प्रतिष्ठित धर्म दूसरे धर्मों के प्रति सहिष्णुता एव मत की स्वतंत्रता की अनुमति नहीं देते और जहाँ पुरोहितों ने लौकिक अधिकारो को भी हथिया रक्खा है वहाँ प्रजातंत्र को उनका विरोध करना पड़ता है। क्योंकि प्रजातंत्र का आदर्श प्रत्येक व्यक्ति को उसके स्वतंत्र विकास के लिए स्वतंत्र रखना है। इसलिए व्यक्तिगत धर्म में हस्ताक्षेप करना इस के आधारभूत सिद्धान्तों के विरुद्ध है। वर्ण-भेद अपने को धर्म पर आधारित करता है और पुरोहित शाही के प्रभाव को बढ़ाने में प्रवृत है। इसलिए यह प्रजातंत्र के सर्वथा विपरीत है।

प्रजातंत्र शासन-पद्धति में मनुष्य को दूसरे मनुष्यों के मामलों का वहाँ तक निर्णय करने का अधिकार रहता है, जहाँ तक कि दूसरों को उसके मामलों में निर्णय करने का है। इसलिए प्रजातंत्र में व्यक्ति में सामान्य कल्याण की

अधिक बुद्धि विकसित होती है। इसे अनुभव हो जाता है कि व्यक्तिगत स्वधीनता सामाजिक संगठन द्वारा ही प्राप्त हो सकती है। इस से उस के अपने सामाजिक बंधनों के सच्चे नियम सम्यक् रूप से उस की समझ में आ जाते हैं। दूसरी जगह इन बंधनों का आधार या तो धर्म–व्यवस्था अथवा भय होता है, जैसा कि जाति-भेद की दशा में, या समूहों का, जैसा कि धनिक–तंत्र शासन–पद्धति में, या राजा का, जैसा कि राजतंत्र में। इस प्रकार प्रजातंत्र शासन–पद्धति का पहला परिणाम आत्म–संमान और किसी विशेष वर्ग से भिन्न संपूर्ण जनता में उत्तरदायित्व के भाव का विकास है।

प्रजातंत्री आदर्श का दूसरा और समान रूप से महत्त्वपूर्ण परिणाम विभिन्नता की उन बाढ़ों को तोड़ डालने की प्रबल प्रवृत्ति है जिन्होंने संकीर्ण घरेलू दीवारों से संसार को टुकडे–टुकडे कर रखा है। वह अपने कार्य–क्षेत्र को सदा प्रसारित करता रहता है। इस से वंश और राष्ट्र के क्षुद्र विभाग मिटते जाते हैं। यूरोप में जिस अन्तःराष्ट्रीय भावना का विकास हुआ है वह प्रजातंत्र का ही परिणाम है।

प्रजातंत्र और जाति–भेद दो परस्पर विरुद्ध चीजें है। प्रजातंत्र का आधार समता पर है और जाति–भेद का जन्म मूलक ऊँच–नीच पर। प्रजातंत्र में दूसरों को अपने में मिलाने का सिद्धान्त काम करता है और जाति–भेद में अपने से बाहर निकालने का। प्रजातंत्र वर्ग एवं श्रेणी के बंधनों को तोड़ने का प्रयत्न करता है, पर जाति–भेद उनको स्थायी बनाता है। लोकतंत्र सब लोगों को विद्या देता है जिससे श्रेणी और वर्ग का भाव मिट जाय। पर जाति–भेद केवल ऊँचे वर्णों के लिए ही शिक्षा पाने का अधिकार मानता है। सारांश यह कि प्रजातंत्र और जाति–भेद सब बातों में एक दूसरे के विरुद्ध है। आग और पानी की भाँति इन का आपस में मिलाप असंभव है।

स्मृतियों में वर्ण–भेद का जो आदर्श उपस्थित किया गया है, उस का प्रभाव हिन्दू समाज पर बड़ा ही गिराने और चरित्र को हीन करने वाला हुआ है। इस का सार और रूप जर्मन दार्शनिक नीत्शे के सिद्धान्त का–सा है। नीत्शे के बहुत पहले मनु ने अतिमानव (Superman) के सिद्धांत का उपदेश किया था। वर्ण–भेद का उद्देश्य स्वाधीनता, समता, और बंधुता स्थापित करना नहीं। यह ऐसा वाद है, जो सब हिन्दुओं को अतिमानव—ब्रह्मण—की पूजा का

प्रत्यादेश देता है। वह कहता है कि अतिमानव और उस के वर्ण के लोग ही जीने और शासन करने के लिए उत्पन्न हुए हैं। शेष सब हिन्दू उन की सेवा करने के लिए संसार में आए हैं, और किसी काम के लिए नहीं। उन का अपना कोई जीवन नहीं, उन्हें अपने व्यक्तित्व के विकास का कोई अधिकार नहीं। वर्ण-धर्म का यही उपदेश चला आ रहा है। हिन्दू दर्शन, चाहे वह वेदान्त हो या सांख्य, न्याय हो या वैशेषिक, अपने ही वृत्त के भीतर घूमता रहा है। उसने हिन्दू समाज-रचना पर कोई प्रभाव नहीं डाला। हिन्दुओं का यह तत्वज्ञान कि सब कुछ ब्रह्म ही ही है, केवल बुद्धि की ही बात रहा है। उसने कभी सामाजिक दर्शन का रूप धारण नहीं किया। हमारे दार्शनिकों ने एक हाथ में दर्शन को थामे रखा है और दूसरे में मनु को। दायें हाथ को पता नहीं कि बायें में क्या है। हमें इस असंगति से कभी कष्ट नहीं हुआ।

अब अपनी समाज-पद्धति को लीजिए। क्या इस से भी बुरी कोई दूसरी चीज़ हो सकती है? जात-पाँत चातुर्वण्य का ही भ्रष्ट रूप है। इस चातुर्वर्ण्य को हम लोग आदर्श समझते हैं। पर क्या जन्म सिद्ध भोन्दू के सिवा कोई दूसरा मनुष्य भी कभी चातुर्वर्ण्य को समाज का आदर्श रूप स्वीकार कर सकता है? व्यक्ति एव समाज दोनों की दृष्टि से यह मूर्खता और अपराध है। एक वर्ण और केवल एक ही वर्ण को शिक्षा एवं विद्या का अधिकार है। एक वर्ण और केवल एक ही वर्ण को व्यापार का अधिकार है। एक वर्ण और केवल एक ही बर्ण को सेवा करने की आज्ञा है। व्यक्ति पर होने वाले ऐसी समाज-पद्धति के कुफल स्पष्ट हैं। ऐसा मनुष्य आपको कहाँ मिलेगा, जिसके पास आजीविका का कोई साधन न हो और वह अपनी शिक्षा को गिरा न दे? आपको ऐसा सैनिक कहाँ मिलेगा, जिस के पास न विद्या हो और न संस्कृति, फिर भी जो अपने शस्त्रों का उपयोग विनाश के लिए नहीं, रक्षा के लिए करे? आपको ऐसा वणिक कहाँ मिलेगा, जिसके पास परम्परागत सहज ज्ञान के सिवा मार्ग दिखाने वाली कोई चीज़ न हो और फिर भी जो गिरकर पशु न बन जाय? ऐसा सेवक कहाँ मिल सकता है, जिसे विद्याध्ययन का, शस्त्र धारण करने का, और आजीविका का कोई दूसरा साधन रखने का अधिककार नहीं, फिर भी जो वैसा मनुष्य हो, जैसा कि उसका स्रष्टा उसे बनाना चाहता था? यह चातुर्वर्ण्य-पद्धति जहाँ व्यक्ति के लिए हानिकारक है, वहाँ समाज को भी भेद्य बनाती है। समाज-रचना के

लिए इतना ही पर्याप्त नहीं कि वह सुदिन के लिए ही अच्छी हो। उसे आँधी–पानी का सामना करने के योग्य भी होना चाहिए। क्या यह वर्ण–व्यवस्था आक्रमण के तूफ़ान को रोक सकती है? स्पष्ट है कि कदापि नहीं।

आत्मरक्षा के लिए हो या आक्रमण के लिए, समाज इस योग्य होना चाहिए कि वह अपनी सैनिक शक्तियों को युद्ध के लिए बुला सके। जिस समाज–पद्धति में जनता को विभिन्न वर्गों में बाँट कर एक दूसरे से बिलकुल पृथक् कर दिया गया हो, जिस में प्रत्येक वर्ण के काम और कर्तव्य बिलकुल पृथक् हों, जिस में एक वर्ण का काम दूसरे वर्ण के लिए वर्जित हो, वहाँ युद्ध के लिए सब की लाम–बंदी कैसे की जा सकती है? हिन्दुओं की ९० प्रति सैकड़ा प्रजा को—ब्रह्मण, वैश्य और शूद्र को—वर्ण–व्यवस्था के अनुसार शस्त्र धारण करने का अधिकार नहीं। फिर किसी देश की रक्षा कैसे की जा सकती है, यदि विपत्ति के समय उस की सेना बढ़ नहीं सकती?

इस में कोई संदेह नहीं कि भारत के राजनीतिक नेता देश में सुशासन चाहते हैं और उनका लक्ष्य लोकराज्य स्थापित करना है। परन्तु उन्होंने क्या कभी सोचा कि सच्चे अर्थ में यहाँ लोकराज्य सभव भी है या नहीं? प्रजातंत्र शासन–पद्धति वहीं संभव हो सकती है, जहाँ पहले समाज का रुप भी प्रजातंत्री हो। यदि सामाजिक प्रजातंत्र (Social democracy) नहीं, तो प्रजातत्र शासन–प्रणाली का रिवाजी गठन कुछ मूल्य नहीं रखता और उस समाजके अयोग्य होता है। इन राजनीतिज्ञों ने कभी अनुभव ही नहीं किया कि प्रजातंत्र शासन–प्रणाली कोई शासन का रूप नहीं, वरन् मूलतः समाज का विकसित एवं संस्कृत रूप है। प्रजातंत्र समाज में आवश्यक नहीं कि एकता हो, उद्देश्य का साझा हो, परस्पर सहानुभूति हो, या सार्वजनीन चरम फल के लिए अनुराग हो। परन्तु उस में दो बाते निस्संदेह रहती हैं। पहली बात है मन का भाव, अपने दूसरे साथियों के प्रति समान एवं समता का भाव। दूसरी बात है, कड़ी सामाजिक रुकावटों से रहित एक सामाजिक संगठन। एक ओर तो समाज में वर्ण-व्यवस्था बनाकर हिन्दु समाज के विभिन्न समुदायों को अलग अलग कोठरियों में बंद कर दिया गया है, शूद्रों और ब्राह्मणों का रोटी–बेटी–व्यवहार निषिद्ध ठहरा दिया गया है, जिस का परिणाम विशेषाधिकार भोगी द्विज और अधिकार–रहित शूद्र का भेदभाव है, और

दूसरी ओर लोकतंत्र शासन-प्रणाली की दुहाई दी जा रही है। ये दो बातें सर्वथा असंगत और बे मेल हैं।

हिन्दू-समाज का विवेक रुग्ण हो गया है। इस में नवशक्ति का संचार करने की आवश्यकता है—एक सच्चा सामाजिक प्रजातंत्र उत्पन्न करने की आवश्यकता है। इसके बिना निश्चित एवं स्थिर राजनीति संभव ही नहीं। झगड़ा इस बात का है कि राष्ट्र की रक्षा के लिए राजनीतिक स्वतंत्रता अधिक महत्व रखती है या सुदृढ़ नैतिक तन्तु। इतिहास का महापण्डित लेकी कहता है—"राष्ट्र की शक्ति और समृद्धि की आधार-शिला शुद्ध गार्हस्थ्य-जीवन, वाणिज्य में पवित्रता, नैतिक गुण के उच्च आदर्श, लोक-संग्रह, सरल स्वभाव, साहस, निष्कपटता और विवेक की विशेष निर्दोषिता एवं परिमितता में रक्खी जाती है। यह विवेक जितना बुद्धि से उतना ही चरित्र से उत्पन्न होता है। यदि आप किसी राष्ट्र के भविष्य के संबंध में सुविवेचित मत बनाना चाहते हैं, तो ध्यानपूर्वक देखिए कि उपर्युक्त गुण उसमें बढ़ रहे हैं या घट रहे हैं। सावधानतापूर्वक देखिए कि सार्वजनिक जीवन में कौन गुण सब से अधिक महत्त्वपूर्ण माने जाते हैं। क्या चरित्र का महत्व बढ़ रहा है या घट रहा है। जिन लोगों को राष्ट्र में उच्चतम पद मिल रहे हैं, क्या वे ऐसे मनुष्य हैं, जिन की चर्चा, निजी जीवन में, क्षमताशाली विचारक सच्चे सम्मान के साथ करते हैं? क्या उन के विश्वास निष्कपट, जीवन स्थिर और पवित्रता निश्चित है? इस स्रोत को सावधानी के साथ देखने से आप किसी भी राष्ट्र की जन्म-पत्रिका सर्वोत्तम रीति से तैयार कर सकते हैं?"

तब प्रश्न उत्पन्न होता है कि भारतीय जनता जाति-भेद को बनाए रखना चाहती है या लोक-राज्य स्थापित करना? क्या वह शेष संसार के साथ चलना चाहती है या पीछे घिसटते रहना? यह बात निश्चित है कि हम दोनों को एक साथ नहीं रख सकते। जब तक जाति-भेद का भाव प्रबल है प्रजातंत्री संस्थाएँ सामाजिक अत्याचार का ही दूसरा नाम हो जायँगी। स्वराज्य जनता के लिए प्रभुओं का परिवर्तन मात्र ही सिद्ध होगा। अँग्रेज़ों के स्थान में अब ऊँचे वर्ण के मुट्ठीभर लोग उन के शासक बन जायँगे। उच्च वर्णों ने जो बहुत बड़े अधिकार और स्वत्व ले रखे हैं, उनकी वर्तमानता में लोक-राज्य प्रायः असंभव है। जातिगत अधिकारों को स्थायी बनाने के लिए यह लोकतंत्र

ऊँचे वर्णों को एक हथियार का काम देगा। यदि आप नहीं चाहते कि लोकतंत्र सामाजिक अत्याचार का रूप धारण करे, तो इस जाति-भेद को पूर्णतः नष्ट कर डालना होगा, नहीं तो प्रतिनिधि संस्थाओं का अर्थ उन लोगों के लिए केवल विशेषाधिकार हो जायगा जो वर्ण-व्यवस्था रूपी सीढ़ी के सब से ऊँचे पग पर खडे हुए राजनीतिक उद्देश्यों के लिए जाति-भेद की महा शक्ति का उपयोग करसकते हैं।

जाति-भेद को मानने वाले समाज में मनुष्य के चरित्र, योग्यता एवं सेवा-भाव का कुछ मूल्य नहीं। वहाँ मूल्य जाति का है। जिस प्रदेश में जाट अधिक बसते है वहाँ से कोई ब्राह्मण और जहाँ बनियों की संख्या अधिक है वहाँ से कोई जाट, चाहे वह कितना ही विद्वान्, त्यागी और देश-सेवक क्यों न हो, कभी किसी असम्बली या बोर्ड के चुनाव में सफल नहीं हो सकता, क्योंकि उसकी बिरादरी के वोट बहुत कम है। प्रजातंत्री देशों में बहुमत और अल्पमत राजनीतिक विश्वासों के आधार पर होता है, और वह बदल सकता है। जो आज बहुमत है वह कल अल्पमत हो सकता है। धर्म भी बदला जा सकता है। पर जन्ममूलक जाति पर आधारित बहुमत और अल्पमत अपरिवर्तनीय है। कुम्हारों के वोट ब्राह्मणों से और बढैइयों के वोट राजपूतों से बढ़ने की कभी सभावना नहीं हो सकती। हिन्दू-मुसलमान का उपद्रव, भूमिहार और कायस्थ का वैमनस्य, ब्राह्मण और अब्राह्मण का सिर फुटौवल सब जाति-भेद के ही विभिन्न रूप है और लोकतंत्र के लिए हलाहल विष है।

भारत के सोशलिस्ट अर्थात् समाजवादी लोग, यूरोप के समाजवादियों के अनुकरण में, कहते हैं कि मनुष्य एक आर्थिक प्राणी है, उसकी चेष्टाएँ और आकांक्षाएँ आर्थिक तथ्यों से बँधी हुई है। उन के मत से संपत्ति ही एक मात्र शक्ति है। इसलिए वे प्रचार करते हैं कि राजनीतिक और सामाजिक सुधार भारी भ्रम मात्र हैं और किसी भी दूसरे सुधार के पूर्व साम्पतिक समता द्वारा आर्थिक सुधार का होना परमावश्यक है। पर प्रश्न होता है कि क्या एक मात्र आर्थिक उद्देस्य से ही मनुष्य सब काम करता है? रुपया-पैसा ही एक मात्र

शक्ति है ? यह बात मानव-समाज का अध्ययन करने वाला कोई भी व्यक्ति मानने को तैयार नहीं।

साधु-महात्माओं का सर्वसाधारण पर जो शासन होता है, वह इस बात का स्पष्ट प्रमाण है कि व्यक्ति की सामाजिक स्थिति भी बहुधा शक्ति और अधिकार का कारण बन जाती है। भारत में करोड़ों लोग कंगाल साधुओं और फ़क़ीरों की आज्ञा क्यों मानते हैं ? भारत के करोड़ो कंगाल अपना अँगूठी-छल्ला बेचकर भी काशी और मक्का क्यों जाते हैं ? भारत में पुरोहित का शासन मजिस्ट्रेट से भी बढ़कर है। भारतीय समाजवादियों की भूल इस बात में है कि वे मान लेते हैं कि क्योंकि यूरोपीय समाज की वर्तमान अवस्था में धन एक प्रधान शक्ति है, इसलिए भारत में भी वह प्रधान शक्ति है अथवा अतीत काल में भी वह प्रधान शक्ति था। धर्म, सामाजिक स्थिति और सम्पत्ति, ये सब शक्ति एवं प्रभुता के स्रोत हैं। इनसे एक मनुष्य दूसरे की स्वतंत्रता का निग्रह करता है। इन में से एक का एक अवस्था में प्राधान्य रहता है और दूसरे का दूसरी अवस्था में। बस इतना ही अन्तर है। प्रसिद्ध समाज-शास्त्री डाक्टर मीज़ * कहता है कि पश्चिमी देशों में जैसे सारी शक्ति धन में मानी जाती है, यहाँ तक कि वहाँ धर्म भी धन से दबा हुआ है, वैसे ही भारत में प्रधान शक्ति जाति में है। यह जाति अधिकतर ब्राह्मणों और क्षत्रियों की सत्ता का परिणाम है। यदि यूरोप

---

* The art of the power may differ widely between different groups. In the West the power is largely economical (money is crystallised power) predominating even over the power of the Church. In India it is the power of caste, largely the product of the power of Brahmans and of the ruling classes.

In the west the social mind is obsessed by the idea of economical power and in India by the idea of caste power. The orthodox Brahmans are afraid of nothing but an attack on their position in relation to the lower castes and untouchables, on their social and religious privileges. If the social mind did not attach its seal to the economic power in Western society and to the power of caste in India, these different kinds of power could never tyranise society as they do by obstructing the freedom of the individuals. — Dharma and Society, by Gualtherus H. Mees, p. 145.

का समाज धन को और भारत का समाज जाति को महत्व देना छोड़ दे, तो ये दोनों चीजें समाज को पीड़ित न कर सकें।

यदि स्वाधीनता आदर्श है और यदि उस स्वाधीनता का अर्थ उस प्रभुता का नाश है जो एक मनुष्य दूसरे मनुष्य पर रखता है, तब यह स्पष्ट है कि इस बात पर आग्रह नहीं किया जा सकता कि आर्थिक सुधार ही एक मात्र ऐसा सुधार है जो करने के योग्य है। यदि किसी विशेष समय में अथवा किसी विशेष समाज में शक्ति एवं प्रभुता सामाजिक और धार्मिक हो तो सामाजिक सुधार और धार्मिक सुधार को आवश्यक सुधार मानना पडेगा।

यह बात स्पष्ट है कि जो आर्थिक क्रान्ति समाजवादी लोग लाना चाहते हैं, वह तब तक नहीं आ सकती जब तक कि किसी क्रान्ति के द्वारा शक्ति हाथ में न ले ली जाय। उस शक्ति को हथियाने वाला आवश्यक रूप से सर्वहारा (Proletariat) मनुष्य होगा। तब पहला प्रश्न यह होता है—क्या भारत की सर्वसाधारण जनता ऐसी क्रान्ति लाने के लिए इकट्ठी हो जायगी? इस काम के लिए कौन बात उसको प्रेरित करेगी? एक मात्र चीज़ जो मनुष्य को ऐसा काम करने की प्रेरणा कर सकती है, वह यह भाव है कि जिन दूसरे मनुष्यों के साथ मिलकर वह काम कर रहा है, वे समता, बंधुता, और सबसे बढ़कर न्याय के भाव से प्रेरित होकर काम कर रहे हैं। संपत्ति के समीकरण के लिए लोग किसी क्रान्ति में तब तक सम्मिलित नहीं होंगे जब तक उन्हें यह मालूम न होगा कि क्रान्ति हो चुकने के बाद उन के साथ समता का व्यवहार होगा और जात-पाँत एवं सम्प्रदाय का कोई भेद-भाव नहीं रखा जायगा। कार्ल मार्क्स स्वयं कहता है कि "राजनीतिक समता सामाजिक समता की एक दवा है, इसकी गारण्टी नहीं" * यूरोप में समाज-वाद एकदम नहीं फैल सका। वहाँ इसके पहले दो क्रान्तियों ने इसके लिए भूमि तैयार की थी। महात्मा मार्टिन लूथर की धार्मिक क्रान्ति ने पुरोहित की सत्ता को नष्ट कर दिया था। उसने सब के लिए आप बाइबिल पढ़ने का अधिकार देकर धार्मिक दृष्टि से सब को बराबरी का अधिकार दिला दिया था। जैसे हमारे यहाँ स्त्री और शूद्र को वेद पढ़ने का अधिकार नहीं, वैसे वहाँ भी, लूथर से पहले, पादरी के सिवा

---

* Political equality is a condition, not the guarantee of social equality.

साधरण मनुष्य को बायबिल बाँचने का अधिकार न था। लूथर ने पुरोहित की इस इजारादारी को तोड़ डाला। उसके बाद फ्रांस की राज्य क्रान्ति ने भूपति राजाओं और बडे बडे जागीरदारों का नाश करके सर्वसाधारण जनता को स्वतंत्र कर दिया। पहले साधारण मनुष्य की, अपनी कोई भूमि नहीं होती थी। वह किसी बडे ज़मीन्दार के यहाँ मुज़ारा (टेनेण्ट) के रूप में काम करता था। उसका कोई वोट न था। ज़मीन्दार का मत ही उस का मत होता था। वह चाहे जब मुज़ारा को अपनी भूमि से बेदख़ल करके भूखों मार सकता था। फ्रांस की राज्यक्रान्ति से सब लोग स्वसंत्र हो गये। वे बडे बडे कारखानों और फेक्टरियों में जाकर काम करने लगे। वे काम करते और अपनी मजदूरी लेकर घर आ जाते थे। इस औद्योगिक क्रान्ति से वे भूपति की दासता से मुक्त हो गये। पर इस पद्धति में भी एक दोष आ गया। सहस्रों श्रमजीवी फेक्टरी में काम करते थे। उनको तो थोड़ी थोड़ी मज़दूरी मिलती थी, पर फेक्टरी का स्वामी उन से सहस्रों गुना अधिक लाभ उढ़ाता था। वह करोड़पति हो जाता था, मज़दूर दरिद्र ही बने रहते थे। इस दोष को दूर करने के लिए कार्ल मार्क्स ने समाजवाद का प्रचार किया।

हमारे देश में अभी ब्राह्मण पुरोहित का इजारा वैसे का वैसा ही बना हुआ है, वह "भूदेव" अर्थात् पृथ्वी पर ईश्वर का एजेण्ट माना जाता है, जन्ममूलक ऊँच-नीच पूर्ववत् वर्तमान है; राजे-महाराजे उसी प्रकार "भूपति"—भूमि के मालिक—और "नरेश"—लोगों के स्वामी—बने बैठे हैं। इन पहली दो ज़रूरी मंज़िलों को तय किए बिना ही, यूरोप के अंधे अनुकरण में, भारत का समाजवादी दल तीसरी आर्थिक क्रान्ति लाना चाहता है। उसे अपने उद्देश्य में तब तक सफलता नहीं हो सकती, जब तक वह जाति-भेद का उन्मूलन नहीं कर लेता। भारत तो अभी तक भी मूलतः ग्रामों का देश है। यहाँ बडे बडे कारखाने हैं ही कितने? यहाँ पूजीवाद का रोग उतना दुःखदायक नहीं जितना जाति-भेद का है।

कुछ सज्जन कहा करते हैं कि जन्ममूलक जाति-भेद तो मान लिया कि बुरा

है पर गुण-कर्म-स्वभाव से वर्ण व्यवस्था तो अच्छी है। इस संबंध में प्रश्न यह होता है कि यदि चातुर्वर्ण्य में व्यक्ति को उसके गुणों के अनुसार ही स्थान मिलेगा, तो लोगों पर ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र के लेबिल लगाने की क्या आवश्यकता है? ब्राह्मण का लेबिल लगाए बिना भी एक विद्वान् संमान पाता रहेगा। क्षत्रिय का नाम दिए बिना भी सिपाही का आदर होगा। यदि यूरोपीय समाज अपने विद्वानों और योद्धाओं पर स्थायी लेबिल लगाए बिना भी उनका आदर-सत्कार कर सकता है तो हिन्दुओं को ही लेबिल लगाना क्यों आवश्यक जान पड़ता है? ब्राह्मण और क्षत्रिय आदि के इन लेबिलों को बनाए रखने के विरुद्ध एक और भी आपत्ति है।

यह अनुभव सिद्ध बात है कि जो भावनाएँ और संस्कार किसी नाम के साथ एक बार जोड़ दिए जाते हैं, वे हमारा एक अंश ही बन जाते हैं। वे कड़े हो कर ऐसी मनोवृत्ति का रूप धारण कर लेते हैं कि जिस से मुक्त होना सुशिक्षित व्यक्ति के लिए भी कठिन हो जाता है। प्राचीन कुसंस्कारों की मानसिक दासता से छुटकारा पाना उतना सुगम नहीं, जितना कि प्रायः समझा जाता है। आचरण में थोड़ा-बहुत परिवर्तन अवश्य हो सकता है, परन्तु यदि नाम वही रहें, तो उन नामों के साथ लगी हुई भावनाएँ, न केवकल सस्कार-रूप में, वरन् आचरण में भी, बनी रहती हैं। 'ब्राह्मण' शब्द के साथ श्रेष्ठता और 'शूद्र' शब्द के साथ निकृष्टता का जो भाव लगा दिया गया है, उसका संस्कार बड़े से बड़ा हिन्दू-सुधारक भी दूर नहीं कर सका। भारतीय इतिहास में सदा से यह चातुर्वर्ण्य-विभाग ब्राह्मण को पूज्य और शूद्र को जघन्य बताता आया है। इसे सब किसी ने लोकतंत्र का विरोधी माना है। चातुर्वर्ण्य को गुण-कर्म-स्वभाव-मूलक बताकर लोगों पर ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र के दुर्गन्ध युक्त लेबिल लगाना एक प्रकार का महा पाखण्ड-जाल फैलाना है। शूद्रों और अछूतों को चातुर्वर्ण्य शब्द से ही घृणा है, उनकी आत्मा इस के विरुद्ध विद्रोह करती है। इतना ही नहीं, सामाजिक संगठन की पद्धति के रूप में भी यह चातुर्वर्ण्य असाध्य एवं हानिकारक है और बहुत बुरी तरह से असफल हो चुका है।

विद्वद्वर डाक्टर बी. आर. अम्बेडकर अपनी पुस्तक "एनिहिलेशन ऑफ़ कास्ट" में लिखते हैं कि चातुर्वर्ण्य तभी साध्य माना जा सकता है जब पहले यह मान लिया जाय कि समूची जनता को चार निश्चित श्रेणियों में बाँटना

संभव है। इस दृष्टि से चातुर्वर्ण्य-मर्यादा प्लेटो की सामाजिक व्यवस्था से बहुत मिलती है। प्लेटो मानता था कि प्रकृति से मनुष्य-समाज तीन श्रेणियों में बँटा हुआ है। उसके विरुद्ध एक बड़ी आपत्ति यह है कि वह समझता है कि व्यक्तियों का थोड़ी-सी बिलकुल अलग अलग श्रेणियों में वर्गीकरण किया जा सकता है। उसे इस अपूर्व बात का अनुभव न था कि कोई भी दो व्यक्ति एक दूसरे के समान नहीं, अर्थात् किन्हीं भी दो व्यक्तियों को एक ही श्रेणी में इकट्ठा नहीं रखा जा सकता। एक व्यक्ति में जो प्रवृत्तियाँ काम करती हैं, वे दूसरे व्यक्ति की प्रवृत्तियों से बहुत अधिक विभिन्न है, किसी कवि ने ठीक ही कहा है—

तमाशागाहे आलम में हर इक इंसान यक्ता है।
तिलस्मा बादे कसरत में यही वहदत कहाती है॥

प्लेटो समझता था कि व्यक्ति की रचना में विशेष नमूनो की क्षमताएँ या शक्तियाँ है। पर आधुनिक विज्ञान ने यह दिखला दिया है कि स्पष्ट रूप से जुदी जुदी दो चार श्रेणियों में व्यक्तियों का वर्गीकरण करना मनुष्य के संबंध में बहुत उथले ज्ञान का प्रदर्शन करना है। व्यक्तियों को थोड़ी-सी श्रेणियों में बाँटकर उन के गुणों का उपयोग नहीं किया जा सकता। कारण यह कि व्यक्तियों के स्वभाव-गुण सदा अस्थिर एवं परिवर्तनीय होते है। जिस कारण से प्लेटो की सामाजिक व्यवस्था सफल नहीं हो सकी, चातुर्वर्नीय की विफलता का भी वही कारण है, अर्थात् मनुष्योंको श्रेणियों में स्थिर कर देना संभव नहीं। जो आज पण्डित है वह कल योद्धा हो सकता है; जो आज योद्धा है वह कल सफल व्यापरी बन सकता है। बुद्धि की तीव्रता पाणिनि-सूत्रों के रटने, खण्डन-खाद्य के घोटने, कविताओं के बनाने, लेखों एवं पुस्तकों के लिखने से ही प्रमाणित नहीं होती। रणभूमि में सेनापति को, सागर-युद्ध में एडमिरल को, व्यापार में सफल व्यापारी को और श्रमजीवियों को अपने काम को होशियारी के साथ करने में भी बुद्धि से काम लेना पड़ता है। अब भला यह कौन और कैसे निर्णय करे कि किस की बुद्धि कितनी संमान के योग्य और किस दरजे की है। बुद्धि की तौल की कौनसी तराजू है? इसी प्रकार एक सैनिक और एक मल्लाह में भी वीरता, तितिक्षा और परिश्रम की शक्ति एक समान ही मौजूद हो सकती है। केवल गोली चलाना, कवायद करना, और प्राणियों का वध ही वीरता के प्रकाशक

लक्षण नहीं कहे जा सकते। विशेष गुणों और कर्मों का वर्गीकरण स्वेच्छा से कर लेना और बात है, पर विज्ञान की कसौटी पर प्रमाणित करना दूसरी बात है। प्लेटो और मनु की दुहाई देने से ही वैज्ञानिक तर्कवाद सन्तुष्ट नहीं हो सकता।

इसके अतिरिक्त चातुर्वर्ण्य को सफल बनाने के लिए एक ऐसे दण्ड विधान का होना आवश्यक है, जो डण्डे के ज़ोर से जनता से इसका पालन करा सके। चातुर्वर्ण्य–व्यवस्था के सामने इसको तोड़ने वालों का प्रश्न सदा ही बना रहना अनिवार्य है। जब तक लोगों के सिर पर दण्ड का भय न होगा, वे अपनी अपनी श्रेणी के भीतर नहीं रहेंगे। मनुष्य–प्रकृति के विपरीत होने के कारण, यह सारी व्यवस्था खड़ी न रह सकेगी। चातुर्वर्ण्य के अपने भीतर कोई ऐसा सहज सद्गुण नहीं, जिसके बल–बूते पर वह क़ायम रह सके। इस को जीता रखने के लिए क़ानून का होना आवश्यक है। रामचन्द्र द्वारा शम्बूक शूद्र की हत्या इस बात का स्पष्ट प्रमाण है कि क़ानून के डण्डे के बिना वर्ण–व्यवस्था नहीं चल सकती। शम्बूक की हत्या के लिए राम को दोषी ठहराना सारी स्थिति को ठीक ठीक न समझना है। राम राज्य का आधार चातुर्वर्ण्य था। राजा होने के कारण चातुर्वर्ण्य–मर्यादा की रक्षा करना राम के लिए अनिवार्य था। शम्बूक ने अपने वर्ण के कर्म का व्यतिक्रम किया था, इसलिए उसे मारना राम का कर्तव्य था। इस से स्पष्ट है कि चातुर्वर्ण्य व्यवस्था को बनाए रखने के लिए न केवल राज दण्ड का होना, वरन् प्राण–दण्ड का होना भी आवश्यक है। इसी लिए राम ने शम्बूक को मृत्यु से कम दण्ड नहीं दिया। और इसी लिए वेद–मंत्र को सुनने या उसका उच्चारण करने वाले शूद्र के लिए कान में पिघला हुआ सीसा भर देने या उसकी जिह्वा काट डालने की आज्ञा दी गई है। वर्ण–व्यवस्था के पक्षपातियों को जनता को विश्वास दिलाना होगा कि वे मनुष्य–समाज की जाँच–पड़ताल करके उसे सफलता पूर्वक चार वर्णों में विभक्त कर सकते हैं और इस २० वीं शताब्दी में आधुनिक समाज को मनुस्मृति की दण्डाज्ञाएँ पुनः प्रचलित करने के लिए तैयार कर सकते हैं। ऐसी अवस्थाओं में, जन्मसिद्ध गावदी के सिवा दूसरा कोई भी समझदार मनुष्य कभी यह आशा और विश्वास नहीं कर सकता कि चातुर्वर्ण्य–व्यवस्था पुनः जीवित हो सकती है।

संसार में दूसरा कोई भी ऐसा देश नहीं, जिसने अपनी ही उत्पन्न की हुई बुराइयों से भारत के समान दुःख और हानि उठाई हो। दुःख झेलते हुए भी लोग सामाजिक बुराइयों को क्यों सहन करते रहे हैं? संसार के दूसरे देशों में सामाजिक क्रान्तियाँ होती रहीं हैं। वैसी ही क्रान्तियाँ भारत में क्यों नहीं हुई? इस का केवल एक ही उत्तर है। और वह यह कि इस राक्षसी वर्ण-व्यवस्था ने हिन्दू-जनता को क्रान्ति करने में पूर्ण रूप से असमर्थ बना दिया था। सर्वसाधारण जनता शस्त्र धारण नहीं कर सकती थी और शस्त्रों के बिना विद्रोह करना संभव न था। वे सब हलवाहे थे या उन्हें नीच ठहरा कर हलवाहा बना दिया गया था। उन्हें हल छोड़ कर तलवार पकडने की आज्ञा न थी। उन के पास संगीने न थीं। इसलिए जो कोई भी चाहता था, उनकी छाती पर बैठ सकता था और बैठ जाता था। चातुर्वर्ण्य-व्यवस्था के कारण वे शिक्षा प्राप्त नहीं कर सकते थे। वे अपने उद्धार का उपाय सोच अथवा जान न सकते थे। उनको नीच ठहराया गया था। उनको न छुटकारा पाने की रीति मालूम थी और न उनके पास उद्धार का कोई साधन ही था। इसलिए उन्होंने समझ लिया था कि परमेश्वर ने ही हमारे भाग्य में सदा की दासता बदी है।

चातुर्वर्ण्य से बढ़ कर दूसरा कोई अनादर और दुर्गति नहीं। यह एक ऐसी व्यवस्था है, जो लोगों को निर्जीव, पंगु एवं लूला बनाकर उन्हें उपकारक कार्यों के लिए असमर्थ कर देती है—इस में रत्ती भर भी अतिशयोक्ति नहीं। इतिहास में इसके पर्याप्त प्रमाण मिलते है। भारतीय इतिहास में केवल एक ही ऐसा काल-खण्ड है, जिसे स्वतंत्रता, महत्ता और कीर्ति का काल कह सकते है। वह मौर्य-साम्राज्य का काल है। शेष सब कालों में देश पराजय और अंधकार से ही पीड़ित रहा। परन्तु मौर्य-काल वह काल था, जब कि चातुर्वर्ण्य का पूर्ण विध्वंस हो चुका था, जब कि शूद्र, जो प्रजा का अधिकांश थे, होश में आ गये थे और देश के शासक बन गये थे। पराजय और अंधकार के वे काल-खण्ड थे, जब कि चातुर्वर्ण्य खूब ज़ोरों पर था और देश की अधिकांश प्रजा शूद्र के रूप में धिक्कारी जाती थी।

स्मरण रहे कि शरीर या तो सारे का सारा स्वस्थ होता है या सारे का सारा अस्वस्थ। यह नहीं हो सकता कि आधा शरीर स्वस्थ हो और आधा अस्वस्थ।

इसी प्रकार भारतीय राष्ट्र आधा स्वतंत्र और आधा परतंत्र नहीं रह सकता। कथित उच्च वर्ण के लोग नीच वर्ण के लोगों को दबाए रख कर आप भी स्वतंत्र नहीं रह सकते। मुसलमान और हिन्दुओं का मिलाप भी तभी राष्ट्र के लिए हितकर हो सकता है जब कि दोनों सामाजिक रूप से एक हो जायँ। नहीं तो दोनों की पीठें आपस में बाँध कर दोनों को इकट्ठा कर देने से राष्ट्र पहले से भी अधिक दुर्बल हो जायगा। इस प्रकार इकट्ठा बाँध देने से उनके हाथ-पैर दो के बजाय चार चार तो बेशक हो जायँगे, पर जब उनमें से एक पूर्व की ओर चलने लगेगा तो दूसरा उसे पश्चिम की ओर घसीटेगा। फलतः उनमें से कोई भी किसी ओर न बढ़ सकेगा। यह संयोग हानिकारक ही सिद्ध होगा।

बीसवाँ परिच्छेद

कुछ शंकायें और उनके समाधान

जाति-भेद को मिटाने पर प्राय: लोग जो शंकाएँ किया करते हैं उन में से कुछ उनके समाधान-सहित आगे दी जाती है। बहुत सी शंकाओं के उत्तर विस्तार के साथ पिछले परिच्छेदों में आ भी चुके हैं।

शंका—हमारे जिन पूर्वजों ने जाति-भेद बनाया था क्या वे मूर्ख थे?

समाधान—हमारे पूर्वज मूर्ख न थे। उन्होंने समाज के लिए जो व्यवस्था बनाई थी वह अपने समय और अवस्थाओं को देखकर बनाई थी। समय और अवस्था के बदलने के साथ वे अपने सामाजिक नियमों को भी बदलते रहते थे। नाना स्मृतियाँ इस बात का प्रमाण हैं। यदि वे आज जीते होते तो वे आज की परिस्थिति के अनुकूल सामाजिक प्रथाओं में अवश्य परिवर्तन कर देते। जो लोग समझते है कि हमारे पूर्वजों में काल की गति को पहचानने और उसके अनुसार अपने आपको ढालकर उन्नति करने की बुद्धि न थी, वे ही उनको मूर्ख समझते हैं। सभी पुरानी प्रथाएँ अच्छी और सभी नई बातें बुरी नहीं। हमें पुरानी बातों में से जो इस युग में हमारे लिए हितकर है रख लेनी चाहिए और जो हानिकारक बन गई हैं उनके साथ चिमटे रहकर मृत्यु को नहीं बुलाना चाहिए।

शंका—जाति-भेद मिट जाने से ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि नाम भी मिट जायँगे। यह अछी बात नहीं।

समाधान—संसार की सभी भाषाओं में फेर-फार होता रहता है। पुराने शब्दों का लोप होकर नये शब्दों की सृष्टि होती रहती है। परिवर्तन जीवन का लक्षण है। देखिए शब्दों के अर्थ संस्कृत में भी किस प्राकार बदले हैं। "असुर" आरम्भ में बहुत अच्छा अर्थ रखता था। अर्थात् सुरा न पीने वाला, परोपकार के लिए अपने प्राण तक दे देने वाला, कुशाग्र बुद्धि मनुष्य ही असुर कहलाता था। अतएव वेद में परमेश्वर को "असुर महत्" अर्थात् बड़ा असुर कहा गया है। कही असुर महत् पारसियों का "अहुर मुज़्द" बन गया है। पर आज किसी को असुर कह कर तो

देखिए। इसी प्रकार "चाण्डल" का मौलिक अर्थ था—"अत्यन्त प्रचंड तेजस्वी पुरुष" (देखिए, यजुर्वेद अध्याय ३०) और "राक्षस" शब्द का अर्थ था "रक्षा करने वाला"। पर क्या कोई आज अपने को चाण्डाल और राक्षस कहलाने को तैयार है? इस समय ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र आदि शब्दों के साथ ऊँच नीच का, बडे-छोटे का, और पवित्र-अपवित्र का भाव ऐसी बुरी तरह चिपट चुका है कि अब उसे दूर करना असंभव-सा है। इसलिए समता, बंधुता और लोकतंत्र के घातक इन शब्दों का यदि लोप हो जाय तो समाज की कोई हानि नहीं।

शंका—ऋग्वेद के पुरुष सूक्त का १२ वाँ मंत्र **ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद्**—कहता है कि ब्राह्मण उस (विराट पुरुष) का मुँह था, राजन्य (क्षत्रिय) दोनों भुजा था, वैश्य उस की रानें था, पैर से शूद्र का जन्म हुआ। फिर ब्राह्मण को ऊँचा और शूद्र को नीचा मानने में आपको संकोच क्यों होता है?

समाधान—इस मंत्र का वर्ण-व्यवस्था से कोई सबंध नहीं। यहाँ वेद न तो यह कहता है कि चार वर्ण होने ही चाहिएँ। न वह जन्म से वर्ण की व्यवस्था देता है और न कर्म से। सूक्त का पहला मंत्र कहता है कि विराट् सहस्रशीर्षा (हजार सिर वाला), सहस्राक्ष (सहस्र नेत्र वाला) और सहस्रपात (सहस्र पैरों वाला) पुरुष है। सभी जड़-चेतन उसके अन्तर्गत हैं। केवल हिन्दुओं के ही नहीं, संसार के सभी प्राणियों के शरीर, इन्द्रियाँ और अन्तःकरण उसके अंग हैं। क्या यूरोप और जपान के विद्वानों को हमारे ब्राह्मण ब्राह्मण और वहाँके योद्धाओं को हमारे क्षत्रिय क्षत्रिय मानकर उन के साथ बेटी-व्यवहार करने को तैयार है? कोई ब्राह्मण मुसलमान हो जाय तो वह विराट् शरीर में कहाँ स्थान पाता है? म्लेच्छ, राक्षस और किन्नर आदि विराट् का कौन-सा अंग है? सूक्त के पहले मंत्र के अनुसार जब सभी प्राणियों के सिर विराट् के सिर हैं, सबके हाथ उसके हाथ है, सब के पैर उस के पैर हैं, तब ब्राह्मण विराट् के किस सिर से निकला? यदि वह सभी मुँहों से निकला, तो उस में क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, चाण्डाल, म्लेच्छ, हाथी, घोड़ा, गधा, प्लेग के कीड़ाणु आदि सभी गुणावगुण आ गये होंगे। फिर कौन किसी से श्रेष्ठ रह जायगा? गीता के शब्दों में—**परस्परं भावयन्तः श्रेयः परमवाप्स्य**—एक शरीर के अंग होने के नाते सभी मनुष्य बराबर हैं, न कोई बड़ा है और

न कोई छोटा है। एक को दूसरे की आवश्यकता और समाज को सब की आवश्यकता है। नहीं तो विराट् लूला-लंगड़ा हो जायगा।

शंका—जात-पाँत प्रत्येक देश में है। इँग्लैंड में भी लार्ड और मज़दूर अलग अलग हैं। लार्ड अपनी लड़की मज़दूर को नहीं देता।

समाधान—पश्चिम में श्रेणियाँ हैं, जातियाँ नहीं। इन दोनों में बड़ा अन्तर है। जाति-भेद में जुदाई का भाव भरा हुआ है। वह एक जाति के दूसरी जाति से अलग रहने को एक अच्छी बात समझता है। श्रेणी-भेद में जुदाई तो है, पर वह इस अलगाव को न तो कोई सद्‌गुण समझता है और न सामाजिक मेल-मिलाप का निषेध करता है। यह सच है कि श्रेणी-भेद से दल उत्पन्न हो जाते है, पर ये दल जात-पाँत के दलों के समान नहीं। श्रेणी-भेद में दल केवल अ-सामाजिक (non social) है। पर जाति-भेद में वे अपने पारस्परिक संबंधों में स्पष्ट रूप से समाज-विरोधी (anti social) है। इसलिए जाति-भेद श्रेणी-भेद से भिन्न है। एक श्रमजीवी अपने पराक्रम से लार्ड बन सकता है, पर भारत में कोई भंगी कितना ही पराक्रम दिखलाने पर भी ब्राह्मण या राजपूत नहीं बन सकता।

शंका—भारत में जाति-भेद का मिटना संभव नहीं। यहाँ बहुतेरे सुधारक सिर पटक कर मर गये। वे जाति-भेद का कुछ न बिगाड़ सके। यह बहुत पुराना है। इसका संचार हिन्दुओं के रक्त में हो चुका है। इसे मिटाने का प्रयास व्यर्थ है।

समाधान—हताश होने की कोई बात नहीं। जब दास-प्रथा थी, और जब सती प्रथा थी, तब क्या कोई कह सकता था कि ये किसी दिन उठ जायँगी? जब मुग़ल राज्य था, तब कौन कहता था कि इस का किसी दिन अन्त हो जायगा? प्लेग, यक्ष्मा और विशूचिका आदि रोग बहुत पुरानी व्याधियाँ हैं। पर क्या इनको दूर करने का यत्न करना मनुष्य ने छोड़ दिया?

पुराने समय में और इस समय में बड़ा अन्तर है। पूर्व काल में हिन्दुओं की विभिन्न जातियों की शिक्षा-दीक्षा अलग अलग प्रकार की थी। ब्राह्मण संस्कृत पढ़ते थे, यज्ञ-यागादि की क्रिया सीखते थे, मांसाहार नहीं करते थे। इससे उनकी संस्कृति और रहन-सहन दूसरी जातियों से भिन्न था। इस विभिन्नता के कारण दूसरी जातियों के साथ उनका विवाह-शादी होना कठिन

था। पर अब वह बात नहीं रही। अब राष्ट्र के सभी बच्चों को एक-सी शिक्षा मिलती है। सब इकट्ठे पढ़ते हैं। रहन-सहन और खान-पान का ढंग सबका एकसा हो रहा है। इस से परस्पर ब्याह-शादी में उतनी अड़चन नहीं रही। पहले लड़कियों का विवाह उनके माता-पिता बहुत छोटी आयु में कर दिया करते थे। अब लड़के-लड़कियाँ कालेजों में इकट्ठी पढ़ती हैं। वहाँ उनको एक दूसरे के साथ प्रेम हो जाने के बहुत सुयोग हैं। प्रेम जाति-कुजाति नहीं देखता। फिर लड़कियाँ भी माता-पिता पर पूर्ववत आश्रित नहीं रहीं। वे स्वयं कमा सकती हैं। इसलिए उनको अपनी पसंद का पति पाने से रोकना उतना सरल नहीं रहा।

तीसरी बात यह है कि जाति-भेद की भावना पर आधारित हिन्दुओं का फ़ौजदारी क़ानून बिलकुल निकाल डाला गया है और उसका स्थान लोकतंत्री दण्ड-विधान ने ले लिया है। इस दण्ड-विधान का मौलिक नियम यह है कि क़ानून की दृष्टि में सब मनुष्य बराबर हैं। इसमें ब्राह्मण को कम और शूद्र को अधिक दण्ड नहीं दिया जाता। जाति-भेद के कठोर चंगुल में फँसे हुए ट्रावंकोर जैसे कुछ हिन्दू रजवाड़ों में ब्राह्मण को प्राण-दण्ड नहीं दिया जाता। परन्तु भारत-संघ-सरकार का क़ानून इस विषय में ब्राह्मण और भंगी दोनों के साथ समान व्यवहार करता है। इस बात ने जाति-भेद की आधारभूत भावना को खोखला कर दिया है।

चौथी बात यह है कि अब जाति-बिरादरी की पंचायतें किसी व्यक्ति को दण्ड नहीं दे सकतीं। काशी की पण्डित-सभा भी अब किसी का कुछ नहीं बिगाड़ सकती। अब सरकारी न्यायालय, पंचायतों और पण्डितों की व्यवस्था नहीं मानते।

पाँचवी बात यह है कि जात-पाँत तोड़कर होनेवाले विवाह अब क़ानून की दृष्टि में अवैध या नाजायज़ नहीं रहे। ईस्ट इण्डिया कम्पनी के शासन के आरम्भिक काल में केवल स्मृतियों के ज्ञाता ब्राह्मण ही हिन्दुओं के लिए क़ानून बनाया करते थे। अब धारा-सभाओं के सदस्य अधिकतर वही लोग हैं जिनकी राजनीतिक एवं व्यवस्थापक पृष्ठ भूमि निश्चित रूप से अँग्रेज़ी या लोकतंत्र परम्परा से ली गई है। परिणाम यह है कि देश के प्रत्येक प्रान्त में ऐसे क़ानून बन रहे हैं जो जाति-भेद के मूल पर कुल्हाड़ा चलाते हैं। इसके अतिरिक्त मद्रास और महाराष्ट्र में ब्राह्मणेतर आन्दोलन, आर्य समाज, ब्राह्म समाज,

जात-पाँत तोड़क मण्डल और अस्पृश्य जातियों की राजनीतिक जाग्रति और स्कूलों में लौकिक शिक्षा ने जनता के जात-पाँत-संबंधी दृष्टिकोण को बहुत कुछ बदल डाला है। ब्राह्मणों को अब कोई अलग ऐसी शिक्षा नहीं दी जाती जो उन को दूसरों से श्रेष्ठ होने का विश्वास कराती हो। स्कूल जानेवाले दूसरी जातियों के बालकों को अब यह नहीं सिखाया जाता कि ब्राह्मण की पूजा करना प्रत्येक व्यक्ति का परम धर्म है। इसके विपरीत वर्तमान शिक्षा-पद्धति एक ओर समता पर और दूसरी ओर वर्णों एवं वर्गों की श्रेष्ठता से इंकार पर आधारित है। इस से भी जाति-भेद की भावना को धक्का पहुँच रहा है।

हिन्दू-समाज के सुधार और जाति-भेद के उच्छेद के लिए पहले भी कई आन्दोलन चले हैं। पर भाषा-भेद, दूरी, प्रथाओं की विभिन्नता और राजनीतिक एकता के अभाव ने ऐसे सब प्रयासों को एक ही स्थान तक सीमित रखा था। इन्हीं कारणों से न बुद्ध, न रामानुज, न कबीर, और न नानक जाति-भेद को पूर्ण रूप से नष्ट कर सके। ब्राह्म समाज, आर्य समाज और पिछली शताब्दी के दूसरे सुधार आन्दोलन भी सारतः स्थानीय ही रहे थे। कारण यह कि राजनीतिक मशीनरी को सार्वजनिक भावना का सहयोग प्राप्त न था। परन्तु वर्तमान आन्दोलन इस प्रकार के पहले सभी प्रयासों से मूलतः भिन्न है। जात-पाँत तोड़क मण्डल ने जिस प्रकार जाति-भेद पर सीधी चोट की है, वैसी पहले किसी ने नहीं की थी। मण्डल के पहले भारत में कभी कोई ऐसी संस्था नहीं बनी जिसका एक मात्र उद्देश्य जाति-भेद को मिटाना रहा हो।

भारत में अब लोकतंत्र शासन-स्थापित होने जा रहा है। पर लोकतंत्र और जाति-भेद दो परस्पर-विरुद्ध चीजें हैं। ज्यों ही हिन्दू-समाज अपने को प्रजातंत्र-आदर्शों के अनुकूल बनाने का यत्न करेगा, जाति-भेद का नष्ट होना अनिवार्य हो जायगा। अछूतपन को दूर करना इस समय देश का एक प्रमुख प्रश्न बन गया है। पर यह अस्पृश्यता जाति-भेद का ही एक आवश्यक अंग है। वस्तुतः जाति-भेद एक क्रमबद्ध अछूतपन है। इसलिए अछूतपन तभी मिटेगा जब जाति-भेद को मिटा दिया जायगा। हिन्दू-जनता ने भली भाँति अनुभव कर लिया है कि दो बातों में से उसे एक को चुनना है। एक ओर तो जाति-भेद है, जिसके साथ सामाजिक अत्याचार एवं राजनीतिक दुर्बलता है, । और दूसरी

और प्रजातंत्री संस्थाएँ हैं, जिनके साथ सामाजिक प्रगति और राजनीतिक शक्ति की संभावना है।

नहीं कह सकते प्रजातंत्री आदर्श हिन्दू जनता में पर्याप्त रूप में व्याप्त होने में कितना लंबा समय लेगा। हिन्दुओं का सामाजिक समता के सिद्धान्त को अपनाना एक बड़ा भारी सामाजिक विप्लव होगा। परन्तु हिन्दू-समाज में जो परिवर्तन इस समय हो रहे हैं वे इतने तीव्र और इतने मौलिक हैं कि हम उन्हें क्रान्तिकारी कह सकते हैं। प्रजातंत्र ने शूद्र और अछूत जातियों में समता के आदर्श की जाग्रति उत्पन्न कर दी है। अब वे अपने को द्विजों के जन्मसिद्ध दास मानने को तैयार नहीं। एक बात निश्चित है। हिन्दू-समाज गुठली में पड़ा हुआ है। हो सकता है कि शताब्दियों की अन्याय्य वश्यता से कठिन बनी हुई धातु केवल असाधारण ताप से ही पिघले। परन्तु वह पिघल रही है। और जब पिघली हुई धातु पुनः जमकर ठोस बनेगी तो उस में जाति-भेद और प्रजातंत्र के बीच का परस्पर विरोध कहाँ मिलेगा? सामाजिक बहिष्कार और जन्ममूलक असमता अन्तर्धान हो जायगी; कोई अधिक पवित्र एवं अधिक श्रेष्ठ वस्तु उसका स्थान लेगी। और उसमें भारत का भविष्य निहित रहेगा।

शंका—हिन्दू समाज में इस समय जो चार सहस्र के लगभग जातियाँ और उपजातियाँ है उनको तोड़कर यदि केवल चार वर्ण बना दिए जायें तो आप को क्या आपत्ति है?

समाधान—क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र श्रेणियाँ, जिस प्रकार ब्राह्मण एक अलग और अखण्ड श्रेणी हैं, उस प्रकार अलग और अखंड श्रेणियाँ नहीं रह गई हैं। इस विषय में बड़ा मतभेद है कि किस जाति को इन तीनों वर्णों में से किस वर्ण में रखा जाय। यदि इसका शान्ति पूर्वक निर्णय हो भी जाय तो भी अछूतों और आदि वासियों की समस्या बराबर बनी ही रहेगी। इनको जिस भी जाति या वर्ण में मिलाने का यत्न किया जायगा उस जाति और वर्ण के लोग बहुत बिलबिलायँगे। यदि किसी व्यक्ति का असली व्यवसाय ही उसके वर्ण की कसौटी मानी जायगी तो इस चातुर्वर्ण्य की बहुत पुरानी कल्पना में अगणित नवीन व्यवसाय कहाँ रखे जायँगे? यदि किसी प्रकार इस काम में सफलता हो भी जाय

तो प्रश्न यह रह जाता है कि क्या इन श्रेणियों के परस्पर रोटी-बेटी-व्यवहार पर प्रतिबंध रहेगा? हिन्दू-समाज को पुनः चार वर्णों में बाँटना हमें तो असंभव जान पड़ता है। यदि यह संभव भी हो जाय तो इस से हमारी अतीत की बपौती की याद दिलाने के सिवा और कोई लाभ न होगा।

छोटी छोटी उपजातियों को तोड़कर धीरे धीरे एक बड़ा वर्ण बना देने से भी असली समस्या हल न होगी। बंबई में इस उपाय का बीस पच्चीस वर्ष तक प्रयोग करके देखा गया है। उसके परिणाम बडे ही घातक हुए हैं। उपजातियाँ जो इकट्ठी मिलकर एक बड़ा संगठन बनाती हैं उन में जुदाई का भीतरी भाव बडे प्रबल रूप में बना रहता है। यह नवीन संगठन दूसरी जातियों के विरुद्ध, विषेषतः उनके जिनको कि प्रायः उनकी जाति से ऊँचा या नीचा समझा जाता है, बात बात पर झगड़ा करने वाला बना देता है। इस से जाति-भाव अधिक प्रचण्ड और दृढ़ हो जाता है। जो जातियाँ राजनीतिक उद्देश्य के लिए इकट्ठी कर दी गई हैं उनमें भी जब आपस में अधिकारों की बाँट का प्रश्न आता है तो वे भी एक दूसरे से अलग होने से नहीं झिझकतीं। उनका राजनीतिक लाभ का साझा उनको एक होने में सहायता नहीं देता।

जात-पाँत का प्रश्न अधिकतर अपनी जाति-बिरादरी की भक्ति से उत्पन्न होता है। यह जाति-बिरादरी की भक्ति ही है जो दूसरी जाति-बिरादरियों से घृणा उत्पन्न करती है और राष्ट्रीय भावना के विकास के लिए प्रतिकूल वातावरण बनाती है। इस जाति-भक्ति के विरुद्ध ही हमें युद्ध करना है, इसे ही जड़ से उखाड़ना है। दूसरे, यदि सहस्रों उपजातियों को चार बडे समूहों में इकट्ठा कर देने में किसी प्रकार सफलता भी हो जाय तो जाति-भक्ति को कम करने का प्रश्न और भी कठिन हो जायगा। इस से ये समूह या वर्ण एक दूसरे को हानि पहुँचाकर अपने स्वार्थ को आगे बढ़ायँगे। इसका एक मात्र परिणाम बड़ी भयंकर मुठभेड़ होगा। जो लोग ब्राह्मण सभा और कायस्थ पाठशाला बनाते है, जो भूमिहार और जाट लड़कों के लिए छात्रवृत्तियां रखते हैं वे जाति-बिरादरी की भक्ति बढ़ाकर राष्ट्रोन्नति को रोकते हैं।

प्रत्येक सुशिक्षित हिन्दू और देश हितैषी नेता का यह कर्तव्य है कि वह किसी भी जाति-बिरादरी की सभा में भाग न ले, चाहे वह सभा उसके सदस्यों की थोड़ी-बहुत भलाई भी कर रही हो। कारण यह कि उसे स्मरण रखना चाहिए

कि किसी आधारभूत बुराई से होने वाली भलाई इतना अधिक विषक्त होती है कि उसमें भलाई की नैतिक विशेषता का अभाव हो जाता है। इन बिरादरी की सभाओं में प्रायः देखा जाता है कि लोग अपनी जाति की चर्चा तो बड़े गर्व से करते हैं और दूसरे की जाति को बड़े बुरे शब्दों में याद करते हैं।

शंका—जाति-भेद को शीघ्र से शीघ्र मिटाने के लिए क्या क्या उपाय होने चाहिएँ ?

समाधान—जाति-भेद को मिटाने के लिए निम्नलिखित उपाय उपयोगी होंगे—

१. सरकार जाति-भेद को किसी भी रूप में स्वीकार न करे, अर्थात् जाति के कारण न तो किसी को कोई रियाअत दी जाय और न किसी पर कोई रुकावट लगाई जाय। सबके लिए उन्नति के एक-से अवसर हों। भूमि का खरीदना, सेना और पुलिस में भरती होना किसी जाति-विशेष के मनुष्यों का इजारा न हो।

२. कचहरियों, स्कूलों, कालिजों, और सरकारी कागज़ों में से " जाति " का खाना निकाल दिया जाय।

३. जो मनुष्य जाति-भेद को मानता और उस पर आचरण करता है, उसे किसी सरकारी नौकरी में न रखा जाय।

४. किसी व्यक्ति की जाति का संकेत कर के उसका अपमान करना एक दण्डनीय अपराध ठहराया जाय।

५ जात-पाँत तोड़ कर विवाह करने वालों को पुरस्कार देकर प्रोत्साहित किया जाय।

६. स्कूलों और कालिजों के लिए ऐसी पाठ्य-पुस्तकें तैयार कराई जायँ जिन के पाठ से छात्र-छात्राओं में जाति-भेद के प्रति घृणा का भाव उत्पन्न हो।

७. जैसे वकील, डाक्टर और अध्यापक बननेके लिए एक विशेष परीक्षा पास करनी आवश्यक है, वैसे ही विवाहादि संस्कार कराने वाला पुरोहित बनने के लिए भी एक परीक्षा होनी चाहिए। जिसके पास उस परीक्षा को पास करने का प्रमाण-पत्र न हो वह पुरोहित न बन सके। उस का कराया हुआ विवाह आदि संस्कार जायज़ न माना जाय। और पुरोहित-परीक्षा प्रत्येक जाति के मनुष्यों के लिए खुली हो। सुना है कि बड़ोदा राज्य में ऐसी परीक्षा होती है।

८. जाट-स्कूल, कायस्थ-पाठशाला, ब्राह्मण-सभा और राजपूत-होस्टल इत्यादि जाति-मूलक संस्थाओं को अवैध ठहरा कर बंद करा दिया जाय।

९. भारत-सरकार आल इण्डिया रेडिओ और "आजकल" आदि अपने पत्र-पत्रिकाओं द्वारा जनता में जाति-भेद के विरुद्ध प्रचार करे और सरकारी कागज़ों में पण्डित, ठाकुर, लाला, चौधरी आदि जाति-सूचक शब्दों का प्रयोग निषिद्ध कर दिया जाय।

१०. जात-पाँत तोड़क मण्डल प्रभृति जो संस्थाएँ जाति-भेद को मिटाने का प्रचार करती हैं, सरकार उन को पूरी पूरी सहायता दे।

शंका— मनुष्य अपने पूर्वजन्म के अच्छे और बुरे कर्मों के अनुसार ब्राह्मण या भंगी होता है। ऐसी दशा में जाति-भेद को मिटाना कैसे उचित हो सकता है?

समाधान—कर्मवाद और पुनर्जन्म का सिद्धान्त केवल इतना ही है कि जीव को उसके पाप-पुण्य के अनुसार अगले जन्म में अच्छी या बुरी परिस्थिति मिलती है। जिसने अच्छे कर्म किए हैं उसका जन्म ऐसे स्थान और ऐसे परिवार में होगा जहाँ उसे उन्नति के सभी सुभीते होंगे। और जिसने पाप कर्म किए हैं उसे ऐसे लोगों में जन्म मिलेगा जहाँ चारों ओर मूर्खता और दरिद्रता होगी। पर कर्मवाद यह नहीं कहता कि जिसका जन्म दरिद्र पिता के घर में हुआ है उसे धन कमाने से और जिसका जन्म अपढ़ पिता के यहाँ हुआ है उसे विद्वान् बनने से रोक दिया जाय। भङ्गी और ब्राह्मण का विभाजन हिन्दुओं की अपनी कल्पना है। संसार में और भी अनेक लोग बसते हैं। वहाँ इस प्रकार का कोई जाति-भेद नहीं। क्या परमेश्वर ने भारत को ही समूचे संसार के जीवों का काला पानी बना रखा है? ईश्वर ने जिस को जैसा उत्पन्न कर दिया उसे वैसा ही रहना चाहिए, अपनी दशा को सुधारना नहीं चाहिए, ऐसा माननेवालों से पूछना पड़ेगा कि आप नंगे उत्पन्न होते हैं, तो फिर गरमी—सरदी से बचने के लिए कपड़े क्यों पहनते हैं? आप अपढ़ उत्पन्न होते हैं, तो फिर शिक्षा क्यों प्राप्त करते हैं? आप गुलाम उत्पन्न होते हैं, तो फिर स्वाधीनता लाभ करनेके लिए यत्न क्यों करते हैं? आप रुग्ण होते हैं तो फिर नीरोग होनेके लिए चिकित्सा क्यों कराते हैं? बात यह है कि मनुष्य कर्म करने में स्वतंत्र है। पूर्व जन्म के कर्मों के अनुसार जब एक बार उसे अच्छा या बुरा जन्म मिल गया तो

फिर उसकी उन्नति को, जाति-भेद के बंधन लगाकर रोकने की कुचेष्टा करना, ईश्वर की आज्ञा का उल्लंघन और पाप है। ईश्वर रूपी राजा के क़ानून को अपने हाथ में लेने का अधिकार किसी को नहीं।

शंका—हिन्दुओं में भाइयों के बच्चे आपस में विवाह नहीं करते। क्या इससे उनका आपस में प्रेम नहीं रहता? वैष्णवों में कई स्त्रियां इतनी कट्टर होती हैं कि वे परिवार के दूसरे लोगों के साथ नहीं खातीं और न सामान्य घडे से पानी ही पीती हैं। तो क्या उन में आपस में प्रेम नहीं होता? विभिन्न जातियों में रोटी-बेटी-व्यवहार की आज्ञा न देने से ही जाति-भेद को बुरा नहीं कहा जा सकता।

समाधान—आप की बात से यह सिद्ध नहीं होता कि भ्रातृ भाव स्थापित करने के लिए आपस में खान-पान और ब्याह-शादी आवश्यक नहीं। इस से केवल इतना सिद्ध होता है कि जहाँ भाईपन को बनाए रखने के लिए दूसरे साधन- जैसे कि पारिवारिक संबंध का अनुभव—वर्तमान हों, वहाँ आपस में खान-पान और ब्याह-शादी आवश्यक नहीं। किन्तु इस बात से इंकार नहीं किया जा सकता कि जहाँ—जैसे कि जात-पाँत की दशा में—लोगों को जोड़ने वाली शक्तियाँ मौजूद नहीं वहाँ आपस में खान-पान और ब्याह-शादी बहुत आवश्यक होता है। परिवार और जाति के बीच कोई सादृश्य नहीं। विभिन्न जातियों का आपस में खान-पान और ब्याह-शादी इसलिए आवश्यक है क्योंकि उनको जोड़ने वाला और कोई दूसरा तन्तु नहीं होता। परन्तु परिवार की दशा में ऐसी शक्तियाँ वर्तमान होती हैं जो परिवार के सब लोगों को मिलाए रखती हैं।

शंका—जाति-भेद संयम का दूसरा नाम है। जाति-भेद भोग-विलास का नियंत्रण करता है। जात-पाँत किसी व्यक्ति को मजे लूटने के लिए जाति की सीमा से बाहर जाने की आज्ञा नहीं देती। विभिन्न जातियों के बीच रोटी-बेटी-व्यवहार के निषेध का यही उद्देश्य है।

समाधान—इस में सदेह है कि जाति-भेद मनुष्य को दूसरी जाति की स्त्री के साथ काम-वासना की तृप्ति से रोकता है। हां, इस मे संदेह नहीं कि जाति-भेद दूसरी जाति के मनुष्य के घर में बने भोजन के लिए ललचाने का मनुष्य के लिए निषेध करता है। यदि प्रतिबंधों के अनुभव का ध्यान रखे बिना प्रतिबंधों

पर आचरण करने का नाम ही सदाचार है तो जाति-भेद को एक आचार पद्धति माना जा सकता है। पर आप यह नहीं देखते कि जाति-भेद में जो दूसरे ढंग से खान-पान और काम-वासना की तृप्ति की खुली छुटी मिली हुई है उसकी तुलना में यह सरल प्रतिबंध कुछ चीज़ नहीं। जाति-भेद अपनी जाति की सैकड़ों स्त्रियाँ ब्याहने और सैकड़ों रण्डियाँ रखने पर कोई रोक नहीं लगाता। न ही यह अपनी जाति वालों के यहाँ बहुत खाने से रोकता है।

शंका—जात-पाँत को मिटा कर यूरोपीय समाज-पद्धति को अपनाने का यह अर्थ है कि हिन्दू अवश्य ही पैतृक व्यवसाय के नियम को छोड़ दें। यह नियम ही जात-पाँत की आत्मा है। वंश परम्परा का नियम एक सनातन नियम है। उसे बदलना दूसरे शब्दों में गड़बड़ उत्पन्न करना है। यदि मैं एक ब्राह्मण को आयु पर्यन्त ब्राह्मण नहीं कह सकता तो उस ब्राह्मण का मुझे कोई लाभ नहीं। यदि प्रति दिन ब्राह्मण बदल कर शूद्र और शूद्र बदल कर ब्राह्मण बनते रहेंगे तो बड़ी अव्यवस्था फैलेगी।

समाधान—हो सकता है कि पैतृक व्यवसाय अच्छा हो और हो यह भी हो सकता है कि वह अच्छा न हो। हो सकता है कि कुछ लोगों के यह अनुकूल हो और कुछ के प्रतिकूल। पर इसे महत्त्व देकर एक राज-नियम क्यों बनाया जाय? इसे अनिवार्य क्यों ठहराया जाय? यूरोप में यह न तो राज-नियम है और न अनिवार्य ही। वहाँ लोगों को उन की इच्छा पर छोड़ दिया जाता है। उन में बहुत से अपना पैतृक व्यवसाय करते हैं और कुछ नहीं भी करते। कौन कह सकता है कि पैतृक व्यवसाय करने के परिणाम अपनी पसंद का व्यवसाय करने से अच्छे होते हैं? यदि भारत के लोगों की आर्थिक दशा की तुलना यूरोप के लोगों की आर्थिक दशा से की जाय तो बहुत थोड़े बुद्धिवादी लोग ऐसे निकलेंगे जो पैतृक व्यवसाय करने पर बाध्य करने वाले जाति-भेद का समर्थन करेंगे। व्यवसाय के साथ नाम बदलते रहने की कठिनाई एक बनावटी चीज़ है। यह कठिनाई इसलिए है क्योंकि यह मान लिया गया है कि प्रत्येक व्यक्ति पर उसके व्यवसाय के अनुसार लेबिल लगाने की आवश्यकता है। जात-पाँत के लेबिल नितान्त अनावश्यक हैं। इन्हें बिना किसी कष्ट के मिटाया जा सकता है। इसके अतिरिक्त, आज भरत में क्या हो रहा है? मनुष्य का

व्यवसाय और उसकी जाति का लेबिल दोनों आपस में अनुरूपता नहीं रखते। ब्राह्मण जूते बेचता है। पर उसके चमार न कहलाने पर किसी को भी आपत्ति नहीं होती। सारा तर्क भ्रान्ति-मूलक है। समाज के लिए काम की बात यह नहीं कि किसी व्यक्ति पर जाति का कौन लेबिल है, वरन् यह बात है कि वह व्यक्ति क्या सेवा करता है।

शंका—यदि जाति-भेद अछूतों और स्पृश्य शूद्रों के लिए इतना दुःखदायक है तो वे मुस्लिम राजत्वकाल में सब के सब मुसलमान क्यों नहीं हो गये?

समाधान—इस के दो कारण थे। एक तो यह कि जात-पाँत की भावना स्वयं स्पृश्य और अस्पृश्य शूद्रों में भी गहरी घुस गई थी। दूसरे मुस्लिम राज्य में हिन्दुओं का सामाजिक जीवन स्वाधीन था। यद्यपि ब्राह्मण इन सब जातियों को अस्पृश्य और नीच समझता था पर अछूत जातियाँ अपने को एक दूसरे से ऊँचा-नीचा समझती थीं। मानो विज्ञान की दृष्टि से यह बात कि आप किसी से ऊपर हैं आपके लिए इस बात की अपेक्ष अधिक महत्त्वपूर्ण है कि आपके ऊपर भी कुछ लोग हैं। अछूतों में जाति-भेद के प्रचार ने ब्राह्मणों को बड़ा बल दिया है। इसने अछूतों को सब के सब मुसलमान हो जाने से रोके रक्खा है। मुस्लिम राज्य में हिन्दू सामाजिक रूपसे स्वतंत्र थे। मुस्लिम शासक केवल शान्ति एवं व्यवस्था रखने और कर-संग्रह में दिलचस्पी रखते थे। जाति-पंचायतें और ब्राह्मण पण्डित ही पूर्ववत् समाज के लिए नियम बनाते थे। इस कारण हिन्दुओं के साम्प्रदायिक जीवन में बहुत कम गड़बड़ होती थी। फिर भी मुसलमान हो जाने वाले शूद्रों और अछूतों की संख्या कुछ थोड़ा नहीं है।

शंका—आप कैसे कहते है कि पाकिस्तान बनाने का मूलकारण हिन्दुओं का जाति-भेद है? पाकिस्तान बनाने का भाव उत्पन्न हुए तो अभी दस वर्ष भी नहीं हुए। जाति-भेद सहास्त्रों वर्ष का पुराना है। यह तो मुसलमानों के शासन-काल में भी खूब फैल रहा था तब पाकिस्तान की माँग क्यों नहीं थी? जाति-भेद मुसलमानों में भी है। हिन्दुओं से अलग होने के लिए वे इस का बहाना कैसे बना सकते हैं?

समाधान—जाति-भेद को छिन्न भिन्न करने वाली शक्तियाँ प्रत्येक युग में अपना कुप्रभाव डालती रही हैं। मुस्लिम काल के पूर्व जाति-भेद ने हिन्दुओं की विभिन्न जातियों और उपजातियों को खान-पान और ब्याह

शादी की दृष्टि से एक दूसरे से उतना ही अलग कर रखा था जितना कि चिड़िया-घर के पशु-पक्षी एक दूसरे से अलग होते हैं। चमार-बाड़ा, भंगी बाड़ा, ब्राह्मण टोला, बनिया बाग़ आदि अलग अलग मुहल्ले तक बन गये थे। जब तक बाहर के किसी प्रबल राष्ट्र ने भारत पर आक्रमण नहीं किया, हिन्दुओं को अपने समाज के बोदेपन का अनुभव नहीं हो सका।

मुसलमानी शासन काल में मुसलमानों को हिन्दुओं से अलग वासभूमि बनाने की आवश्यकता का अनुभव नहीं होता था। कारण यह कि उस समय उनका राज्य था। कोई हिन्दू उनका सामाजिक तिरस्कार नहीं कर सकता था। वे हिन्दुओं की बेटियाँ तक ले लेते थे।

बाहर से भारत में आने वाले मुसलमानों की संख्या तो बहुत थोड़ी थी। अधिकतर लोग हिन्दुओं से ही मुसलमान बनाए गये थे। इन बलात पतित किए गये हिन्दुओं ने बहुतेरा चाहा कि उन्हें दुबारा हिन्दू-समाज में ले लया जाय। पर जाति-भेद के मूल में काम करने वाली अतिरिक्त पावित्र्य-भावना के कारण न तो हिन्दू उन बिछुड़ गये भाइओं को रोटी-बेटी-व्यवहार द्वारा अपने में पचाने को सम्मत हुए और न उन्होंने उन बेचारों को नीच और अपवित्र मान कर उन का तिरस्कार करना ही छोड़ा। उन नव-मुस्लिमों की संख्या जब तक थोड़ी थी वे इस अपमान को सहन करते रहे। पर जब उन की संख्या पर्याप्त रूप से बढ़ गई, और राजनीतिक जाग्रति के साथ साथ उन में आत्म-संमान का भाव भी अनिवार्य रूप से जाग्रत हुआ, तो उन्होंने उस अपमान के विरुद्ध प्रतिवाद करना आरम्भ किया। जाति-भेद के कारण हिन्दू घटते और मुसलमान बढते रहे। मुसलमानों की संख्या-वृद्धि के साथ साथ उनमें हिन्दुओं के प्रति विद्वेष-भाव भी स्वभावतः बढ़ता गया। पहले तो वे केवल पृथक् प्रतिनिधित्व ही माँगते थे, धीरे धीरे बढ़कर उनका विद्वेष अलग वासभूमि या पाकिस्तान की माँग में परिणत हो गया। आज़ाद काश्मीर आन्दोलन के मुखिया सरदार मुहम्मद इब्राहीम ख़ाँ चिब जाति के राजपूत हैं। ये लोग कभी हिन्दू थे। कुछ ही वर्ष हुए कोई एक लाख चिब राजपूतों ने काश्मीर-नरेश से प्रार्थना की थी कि उन्हें दुबारा हिन्दू बना लिया जाय। सुना है कि महाराज तो मान गये थे, पर हिन्दू राजपूत इन चिबों के साथ बेटी-व्यवहार करने को सम्मत न हुए। हिन्दू राजपूतों के इस इंकार से चिबों के मन पर कितनी गहरी चोट लगी

होगी, इसका अनुमान करना कोई कठिन नहीं। यदि जाति-भेद न होता, तो भारत में न तो मुसलमानों की संख्या इतनी बढ़ती और न धर्मान्तर के साथ समाजान्तर की ही आवश्यकता होती।

यह ठीक है कि हिन्दुओं से जो लोग मुसलमान बने हैं वे जाति-भेद से पूरी तरह मुक्त नहीं हो सके, पर यह एक सचाई है कि हिन्दू जहाँ जाति-भेद को अपने धर्म का अंग समझता है वहाँ मुसलमान उसे एक बुराई कहता है। मुसलमान यदि अपनी बिरादरी से बाहर विवाह करता है तो हिन्दुओं की भाँति उसे जाति से बाहर नहीं निकाल दिया जाता।

यह बात ठीक है कि यूनान, और मिस्र और जापान आदि कुछ प्राचीन देशों में किसी न किसी प्रकार का जाति-भेद वर्तमान था। पर यह भी सचाई है कि वे देश तब तक संगठित एवं शक्तिशाली राष्ट्र नहीं बन सके जब तक उन्होंने जाति-भेद का समूल नाश नहीं कर दिया।

देश के विभाजन के लिए श्री. जिन्ना और मुसलमानों को गाली देने से कुछ लाभ नहीं। लाभ हो सकता है तो जाति-भेद के रोग को मिटाने से ही हो सकता है।

समाप्त

परिशिष्ट

श्री जिन्ना के जीवन से शिक्षा

लेखकः—श्री किशोरी लाल मशरूवाला

श्रीयुत मुहम्मदअली के जीवन और कार्यों पर हिन्दुओं को, विशेषकर नाम-धारी ऊंचे वर्ण के हिन्दुओं को, विचार करना और उनसे शिक्षा लेनी चाहिए। उनका जन्म काठियावाड़ की खोजा जाति में हुआ था। खोजा जाति का एक बहुत बड़ा भाग एक विशेष धर्म-सम्प्रदाय का पालन करता है। उस सम्प्रदाय में हिन्दू-धर्म और इस्लाम के सिद्धान्तों का एक विशेष प्रकार का मिश्रण है। शायद उसके मूल संस्थापक का उद्देश्य इन दो धर्मों को अपनी समझ के अनुसार, मिलाने का भी रहा हो। उनके धार्मिक रीति-रिवाज, सामाजिक रूढ़ियाँ, दाय के नियम आदि भी बहुत अंश में हिन्दुओं जैसे ही होते हैं। उन में से बहुतों के नाम भी हिन्दुओं जैसे ही होते है—जैसे झीना, वालजी, भग-वानजी, धर्मसी, पुरुषोत्तम, लालजी, मोतीलाल, हरजी इत्यादि। उनका गृह-जीवन और जीवन-संबंधी दृष्टिकोण आदि भी सवर्ण हिन्दुओं जैसा ही होता है। यह कहा जा सकता है कि सवर्ण हिन्दुओं के गुरुओं के स्थान में किसी दूसरे गुरु के संप्रदाय को मानने से यह एक अलग पड़ जानेवाली हिन्दू जाति है। सब जानते हैं कि हिन्दू-समाज में इस प्रकार कई जातियाँ उत्पन्न हुई हैं।

समय बीतने पर इस अलग पड़ जानेवाली जाति को अपनी दशा असुविधा-पूर्ण अवश्य प्रतीत हुई होगी। ऐसे उदाहरण भी मिलते है कि अठारहवीं और उन्नीसवीं शताब्दी में खोजा जाति के कितने ही कुटुम्ब फिर से हिन्दू-धर्म पालने लगे थे। परन्तु हिन्दुओं की जाति-पाँति-प्रथा में एक बार जिसे पृथक् किया उसे अपने में वापस मिलाने का रिवाज ही न होने से इन खोजों के पुनः वैष्णव बन जाने के पश्चात् भी, सामाजिक दृष्टि से, उन्हें कोई लाभ न हुआ। किसी हिन्दू जाति या उपजाति ने ऐसे लोगों को अपने में नहीं मिलाया। इसलिए वे धीरे-धीरे हिन्दुओं से अधिकाधिक दूर ही होते गये। इस के फल-

स्वरूप उनमें पूर्ण रूप से इस्लाम की ओर झुक जाने की और जितना हिन्दूपन शेष रहा था उस सब को निकाल फेंकने की वृत्ति उत्पन्न हुई। ऐसा करना उन के लिए बहुत सरल तो नहीं था, क्योंकि हिन्दू जाति-प्रथा और सम्मिलित कुटुम्ब प्रथा के उनके संस्कार बहुत गहरे थे, और आज भी है। परन्तु हिन्दुओं ने अपने स्वभावानुसार उनकी उपेक्षा ही की। इसलिए उनमें धीरे-धीरे इस्लाम की ओर अधिक झुकने की प्रवृत्ति अधिक बलवती होती गई।

श्री मुहम्मद अली जिन्ना के जीवन का लगभग पौन सौ वर्ष का समय इस प्रवृत्ति का जीता जागता चित्र माना जा सकता है। उनका नाम मुसलमानी ढंग से रखा जाना यह बताता है कि खोजा समाज की इस्लाम की ओर अधिक झुकने की प्रवृत्ति उन के जन्म से पहले ही आरम्भ हो चुकी होगी। किन्तु उन्होंने अपने जीवन का आधे से अधिक भाग शुद्ध हृदय से राष्ट्रीय भावना और साम्प्रदायिक एकता का समर्थन करते हुए देश-सेवा में बिताया। इससे यह प्रकट होता है कि हिन्दू-मुसलमानों को एक करने की भावना का जो संस्कार पीढ़ियों से खोजों में चला आ रहा था वह उन्हें भी दायभाग में मिला था।

परन्तु एकता एवं राष्ट्रीयता के क्षेत्र में जीवन के लगभग पैंतालीस वर्ष बिताने के पश्चात् जिन्ना महाशय के जीवन ने पलटा खाया। वे राष्ट्रवादी न रहकर संप्रदायवादी बने। इतना ही नहीं, वे पाकिस्तान के, अर्थात् जिस जिस बात में हिन्दूपन की गंध आए उसका विरोध और त्याग करने पर बल देने वाले आन्दोलन के, नेता बने। उनके जीवन में ऐसा परिवर्तन होने का कारण क्या है? मुझे नहीं लगता कि इस प्रश्न पर हमने कभी गहराई से विचार किया है। श्री जिन्ना के कट्टर से कट्टर विरोधी ने भी उन पर कभी पैसे के लालच या स्वार्थ के लिए बिक जाने वाला मनुष्य होने का आरोप नहीं लगाया। तब यह कैसे हुआ? मैं इस परिणाम पर पहुँचा हूँ कि राष्ट्रीयता और साम्प्रदायिक एकता की बातों में उन्हें कुछ खोखलापन मालूम हुआ, कुछ भ्रम मिटने जैसा लगा, और उस से वे निराशवादी बन गये। अपने पिछले राष्ट्रीय विचारों की याद दिलाने पर अनेक बार उन्होंने जो उत्तर दिये हैं उनसे इस बात का पता लगता है कि हिन्दू काँग्रेसवादी की राष्ट्रीयता पर से उनकी श्रद्धा उठ गई थी। एक बार उन्होंने कहा था—"किसी काँग्रेसवादी हिन्दू को थोड़ा कुरेदो और उसका सवर्ण हिन्दूपन प्रकट हो जायगा।" जब किसी ने उन से पूछा—"इतने वर्ष तो आप काँग्रेस में ही थे न?" तो उन्होंने उत्तर

दिया—" एक समय मैं प्रायमरी स्कूल में भी था। " इस प्रकार का परिवर्तन उनके विचारों में हो गया था।

मैंने बहुधा इस बात का पता लगाने का यत्न किया है कि कौनसी निराशा या भ्रम के निराकरण ने जिन्ना महाशय के जीवन में इतना बड़ा क्रान्तिकारी परिवर्तन कर दिया था। हिन्दू-जाति-प्रथा और हिन्दू-सगठन के आन्दोलन की पृष्ठभूमि पर पाकिस्तान रखने से कैसा चित्र दिखेगा; इस पर हमें विचार करना होगा। ऐसा करने से विदित हो जायगा कि हिन्दू जाति और जिन्ना महाशय की जन्म-जाति-खोजा-दोनों में जाति-प्रथा और सम्मिलित कुटुम्ब-प्रथा के समान रूप से रहनेवाले संस्कारों का सीधा परिणाम पाकिस्तानवाद हो सकता है।

इस प्रकार देखें तो सचमुच यह कहा जा सकता है कि जिस तरह हिन्दू मानस में जात-पाँत की प्रथा धर्म के साथ जुड़ी हुई है उसी प्रकार पाकिस्तान हिन्दू जाति-प्रथा की बड़ी से बड़ी सफलता है। भारत के मुसलमान अपने इस महान नेता के प्रभाव में जाति-प्रथा का विरोध करनेवाले न रहकर बड़े सप्रदायवादी बन गये। हिन्दू सम्मिलित कुटुम्ब-प्रथा का यह नियम है कि उस में कुटुम्ब का कोई भी मनुष्य भोजन, पूजन और सम्पत्ति का भाग माँग सकता है। इस नियम को मुसलमान समाज ने मान लिया। उसने हिन्दू जाति-प्रथा की इस विशेषता को भी पूरी तरह अपना लिया कि जिन्हें अपने से ऊँचे या बराबरी के न समझा जाय उन से बिलकुल अलग रहा जाय और जिन्हें अपने से नीचे माना जाय उन के साथ घमण्ड और घृणा का बर्ताव किया जाय।

हिन्दू ग्राम और नगर-रचना में अलग-अलग जातियाँ अपने अलग-अलग मुहल्लों, रास्तों और पोलों में रहती हैं। कभी-कभी तो गाँव के गाँव जातिवार होते हैं। दूसरों से पृथक् रहना, संपत्ति आदि का बँटवारा करना, दूसरी जातियों के साथ रोटी-बेटी-व्यवहार न रखना, ये हिन्दू समाज-जीवन के विशेष लक्षण हैं। जिन्ना ऐसे निराशावादी परिणाम पर पहुँचे कि काँग्रेस धर्म-जाति आदि के भेदभाव से अलग रहनेवाली प्रजातंत्रवादी राष्ट्रीयता के कितने ही प्रस्ताव क्यों न पास करे, परन्तु हिन्दू सदा जातिवादी ही रहेंगे, और जाति-पाँति के पीछे ऊँच-नीच की भावना और उसके कारण एक-दूसरे से पृथक रहने की प्रवृत्ति उत्पन्न होने से व्यवहार में भारत का राज्य लोकराज

नहीं वरन् जातिराजके सिद्धान्तों पर ही चलेगा। राष्ट्रीयता और लोकराज के सिद्धान्तों पर भारत में कभी आचरण नहीं होगा। इस बारे में जिन्ना महाशय ने अपना अविश्वास बारबार कह बताया है। उनकी यह पक्की सम्मति बन गई थी कि पश्चिम का लोकतंत्र भारत के लिए निष्फल है।

इसके अतिरिक्त उन्होंने हिन्दू-संगठन के आन्दोलन को, उसके खोखलेपन को और उसके अन्तिम उद्देश्य को समझ लिया था। उसका खोखलापन इस बात में था कि उसने जाति-प्रथा और अछूतपन के विरुद्ध कभी प्रबल मोरचा खड़ा नहीं किया। इसलिए वह सारे हिन्दुओं को भी भीतर से इकट्ठा नहीं कर सकता था, और उसका अन्तिम उद्देश्य इस्लाम विरोधी हिन्दू-राज्य स्थापित करना था।

श्री जिन्ना की कुशाग्र बुद्धि ने यह समझ लिया कि हिन्दुओं की इस दुर्बलतासे, उन के कुछ ऊंचे उड़नेवाले नेताओं के भ्रमों और दूसरे चतुर नेताओं की कुटिलता एवं दम्भ से लाभ उठा लेना चाहिए। उन्हें मुसलमान संस्कारों के स्थान में हिन्दू-संस्कार ही अधिक मिले थे। इसलिए उन्होंने भारत के मुसलमानों को संगठित करने में हिन्दू-मनोवृत्ति से ही काम लिया। इस्लाम के चाहे जो सिद्धान्त हों, फिर भी उन्होंने मुस्लिम मानस को हिन्दू बना डाला। यह करना कठिन नहीं था, क्योंकि भारत के मुसलमानों का एक बहुत बड़ा भाग धर्म के सिवा दूसरी सब बातों में उस जगह के हिन्दुओं जैसा ही है। जाति-गत प्रतिनिधित्व, भारत का पूरा बँटवारा और हिन्दू तथा मुसलमान बस्तियों का पूरा अलगाव आदि की माँगों में हिन्दू-मनोवृत्ति की ही परछाईं दिखाई देती है। यह हिन्दू-मनोवृत्ति है—इस बातका प्रमाण यह है कि ब्रिटिश प्रधान-मंडल की तीन प्रान्तीय समूह बनाने की योजना को स्वीकार करते ही पंजाब और बंगाल के काँग्रेसी और अकाँग्रेसी हिन्दू और सिख नेताओंने इन दो प्रान्तों का बँटवारा कराने का प्रबल आन्दोलन खड़ा कर दिया।

जिस प्रकार हिन्दुओं की सारी रूढ़ियाँ धर्म और संस्कृति के साथ जुड़ी होती हैं, उसी तरह श्री जिन्ना ने भी मुसलमानों का हृदय पलटने के लिए पाकिस्तान की माँग को धर्म के साथ जोड़ दिया। मुसलमानों में हिन्दुओं जैसे जात-पाँत के भेद नहीं हैं। इसलिए कोई आश्चर्य नहीं कि मुसलमानों को संगठित करने में हिन्दुओं की अपेक्षा उन्हें अधिक सफलता मिली।

हिन्दू नेताओं और श्री जिन्ना के बीच एक और बात में भी समानता थी। दोनों चतुर वकील थे। दोनों ने कुटिलता और वक्रता तक पहुँचनेवाली चतुराई सीख ली थी। कागज़ पर दोनों पक्षों को स्वीकार हो सकनेवाली भाषा में निर्णय लिखना, मन में उसके अर्थ के बारे में मतभेद या चोरी रखना, और जब कार्यरूप में परिणत करते समय यह पता चले कि अपने को अच्छा न लगनेवाला पग उठाना पडेगा तो एक दूसरे के साथ निर्णय के अर्थ पर झगड़ने लगना; बाद में एक दूसरे पर आरोप लगाकर और उनका उत्तर देकर वातावरण ऐसा बना डालना कि दोनों का स्वीकार किया हुआ निर्णय ही छोड़ना पडे और नये सिरे से बात चीत आरम्भ करनी पडे; यह इस वकील-बुद्धि की बुरी निशानी है। श्री जिन्ना भी इस भाषा में कुशल थे। उन्होंने हिन्दुओं पर "जिसका जूता उसका सिर" की बात आज़माई। श्री जिन्ना सदा हिन्दुओं का ही दोष प्रमाणित करने में चाहे सफल न हुए हों, फिर भी तटस्थ मनुष्य के मन में हिन्दुओं की सरलता और न्याय बुद्धि के विषय में संदेह उत्पन्न करने में उन्हें अनेक बार सफलता मिली।

इस प्रकार सोचते हुए मुझे अनेक बार लगा है कि श्री जिन्ना और पाकिस्तान हिन्दू-समाज के ही पके हुए फल हैं। हम पाकिस्तान को अपने मित्र या बंधु की भाँति फिर से भारत में मिलाने की इच्छा करें या न करें, किन्तु जिन मनोवृत्तियों, संस्कारों, रूढ़ियों आदि ने पाकिस्तान को जन्म दिया उन दोषों को अपने जीवन से निकाल देने मे ही कल्याण है। हमें यह नहीं मान लेना चाहिए कि पाकिस्तान बनने से जितना बिगाड़ हो सकता था वह हो चुका। समय बीतने पर श्री जिन्ना की चेतावनी के अनुरूप यह दोष हमें प्रत्येक घर, गली, मुहल्ले, गाँव और तअल्लुके के बँटवारे तक खींच ले जाय तो असभव नहीं। और यह बँटवारा केवल हिन्दू मुसलमानों का ही नहीं होगा, यह छूत का रोग भारत के सारे अलग-अलग सामाजिक या स्थानीय समूहों को लगेगा। यदि एक राष्ट्र के रूप में अपना विकास करना है तो हमें अपने संकीर्ण सामाजिक दृष्टि का नाश करना ही होगा।

निम्न पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं

विस्तृत परिचय पिछले सूची पत्रों में छपा है।

१ **शाह आलमकी आँखें** (ऐतिहासिक उपन्यास)
श्री. पं. इन्द्र विद्यावाचस्पति, ४)

२ **भारत की भाषा** श्री. स्वामी नाथ शर्मा, बी. ए. टी., डी. विशारद, १)

३ **दो फूल** (कहानी संग्रह) श्रीमती सत्यवती मलिक, ३।।)

४ **झुरमुट** (कहानी संग्रह) श्री. 'नलिन' बी. ए., ४।)

५ **ग्राम-स्वराज्य** श्री. रामनारायण यादवेन्दु बी. ए., ३।।।)

६ **हमारा समाज** श्री. सन्तराम, बी. ए., ६)

निम्न पुस्तकें प्रेसों में हैं:—

विस्तृत परिचय पिछले सूची पत्रों में छप चुका है।

१ **दलित समाज की स्वाधीनता।**
श्री. राम नारायण 'यादवेन्दू' बी. ए. एल-एल. बी.

२ **समाजवाद : सिद्धान्त और प्रयोग**
श्री. राम नारायण जी 'यादवेन्दू' बी. ए. एल-एल. बी.

३ **दुग्ध-विज्ञान** श्री. गंगा प्रसाद गौड़ 'नाहर' तत्वचिकित्सक।

४ **शबनम** (कहानी संग्रह) श्री. मास्टर जहूर बक्षजी 'हिन्दी कोविद'

५ **गुलामी पाप है** (कहानी संग्रह)

६ **मात्रा-बोध** (बच्चों के लिये कहानियां)

७ **कहानी-बोध** (बच्चों के लिये कहानियां)

८-११ **बाल-स्वास्थ बोध** (४ भाग) कुमारी मुबारक जहां।

१२ ??? (कहानी संग्रह) श्रीमती शान्ति देवीजी 'सहर'

निम्न पुस्तकें प्रेसों में भेजने के लिये तय्यार हैं:—

श्री० सन्तराम जी बी० ए० की अन्य तीन रचनायें

१ अमृत भोजन

जो लोग चाहते हैं कि वे कभी रुग्ण न हों, जो चाहते हैं कि रुग्ण होने पर उनको कड़वी-कसैली औषधें न खानी पड़ें; जो खान-पान में उचित सुधार करके सब रोगों को दूर करना और सदा तन्दुरुस्त बने रहना चाहते हैं, जो निर्बल से सबल और बूढ़ें से जवान बनना चाहते हैं; सारांश यह कि जो कायाकल्प करना चाहते हैं, उन्हें इस पुस्तक का पाठ अवश्य करना चाहिये। इससे उन्हे असीम लाभ होगा। यह पुस्तक एक आस्ट्रेलियन डॉक्टर की पुस्तक का भाषान्तर है। यह छोटी होने पर भी गुणों की थैली है। एक बार मंगाकर अवश्य लाभ उठाइये। :

२ विचित्र वार्ता

यह पुस्तक पाठक को एक रहस्यमय संसार में ले जाती है। इसमें वर्णित बातों को पढ़कर वह अनुभव करने लगता है कि हमारे इस दृश्यमान भौतिक जगत् के अतिरिक्त एक ऐसा सूक्ष्म जगत् और भी है; जिसका अभीतक हम—मर्त्य मानवों को बहुत कम ज्ञान है। यद्यपि इसमें वर्णित बातें किसी उपन्यास या परीकथा के सदृश कपोलकल्पनामात्र नहीं, वरन् ठोस अनुभव पर आधारित हैं, तो भी इनको पढ़ते समय परीकथा से भी बढ़कर रस मिलता है। इस पुस्तक के कुछ परिच्छेदों के शीर्षक हैं—हिन्दुओं की गुप्त विद्या, मानसिक चमत्कार, परकाया-प्रवेश, आत्म-तेज, अभिशाप का प्रभाव, रहस्यमय भारत, जादू का पानी—इत्यादि।.. पुस्तक के पाठ से मनोरंजन के साथ-साथ ज्ञान की वृद्धि भी होती है।

---

३ रति-विज्ञान

A unique book on Sex

नितान्त गोपनीय पुस्तक

(For Private Study only)

एक कहावत है—

पिङ्गल बिन जो छन्द रचे गीता बिन ज्ञान ।
कोका बिन जो रति करे, सो नर पशु समान ॥

इस का भाव यह है कि जिस प्रकार वैद्यक, चित्रकारी, बढ़ाईगिरी आदि को सीखने की आवश्यकता होती है उसी प्रकार गार्हस्थ्य-जीवन को सुखमय बनाने के लिए, पति-पत्नी-संबंध को सुखद बनाए रखने के लिए रति-विज्ञान का अध्ययन परम आवश्यक है । इस शास्त्र का अध्ययन किए बिना जो मनुष्य स्त्री समागम करता है वह पशु के समान है । रति-कला को न जानने से ही अनेक धनवान्, विद्वान्, और हृष्ट-पुष्ट शरीरवाले लोगों के भी जीवन नरकसमान दुखदायक बन गये हैं । पति-पत्नी की खटपट और तलाक का ९० प्रति सैकड़ा से भी अधिक कारण उनकी लैङ्गिक व्यवस्था (Sexual adjustment) का ठीक न होना ही होता है । इसीलिये **वात्स्तायन, कक्कोक, पद्मश्री,** आदि हमारे प्राचीन आचार्यों और **फोरल, फ्रायड, एलस** और **मेरी स्टोपस** प्रभृति पाश्चात्य विद्वानों नें इस महत्वपूर्ण विषय पर ग्रंथ लिखे है । **श्री. सन्तराम** नें इस पुस्तक में **कामसूत्र, रतिरहस्य, नागर सर्वस्व, अनंगरंग** प्रभृति कोई साठ प्रकाशित और अप्रकाशित संस्कृत ग्रन्थों और पश्चिमी विद्वानों की बहु संख्यक पुस्तकों का सारांश भर दिया है । **रति-विज्ञान** को पढ़ लेने से फिर इस विषय की किसी दूसरी पुस्तक के पढ़ने की आवश्यकता न रह जायगी । पुस्तक के अध्ययन से आप अनुभव करने लगेंगे कि आप के ज्ञान में बड़ी भारी वृद्धि हुई है और कि आप इस विषय को न जानने से भारी भूलें करते रहे हैं । जो लोग इस विषय को अश्लील समझकर इस से दूर भागते रहे हैं उन्हें इस पुस्तक को अवश्य देखना चाहिए । हमें आशा है, कि इस के पाठ से उन को अपना मत बदलना पडेगा । यह पुस्तक प्राचीन और अर्वाचीन **काम-शास्त्र** का एक सुन्दर गुटका है । यदि आप अपनी गृहस्थी को सुखधाम बनाना चाहते हैं, यदि आप दुष्टों से अपनी बहू-बेटियों की रक्षा करना चाहते हैं यदि आप गुप्त यौन व्याधियों (venereal deseases) को दूर करने की अचूक औषधियाँ जानना चाहते हैं, और सब से बढ़कर यदि आप पूर्वी और पश्चिमी आचार्यों ने मनुष्य-प्रकृति का जो गहन अध्ययन किया है उस से लाभ उठाकर जीवन संग्राम में सफल होना चाहते हैं तो इस पुस्तक का पाठ आपको अवश्य करना चाहिए । पुस्तक के गुणों को देखते हुए इस का मूल्य कुछ भी नहीं। अपनी प्रति शीघ्र मगा लीजिए, नहीं तो पीछे हताश होना पडेगा ।